उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

MAJY-104

ग्रहण, वेध-यन्त्र तथा गोल परिचय

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

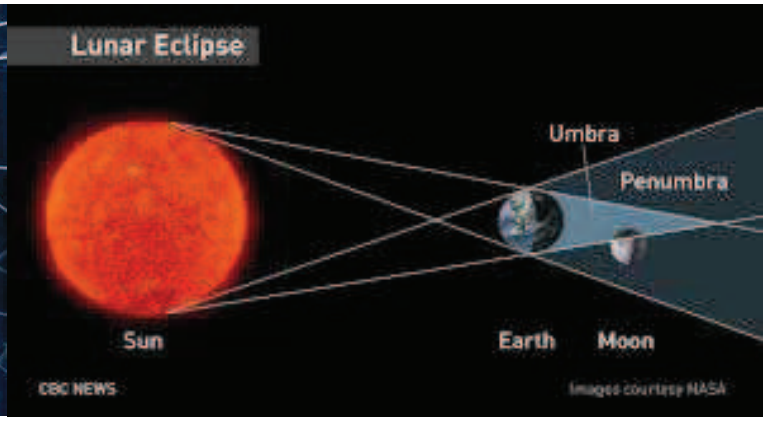

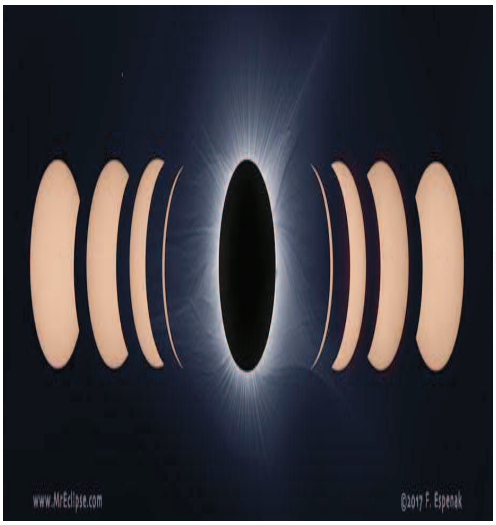

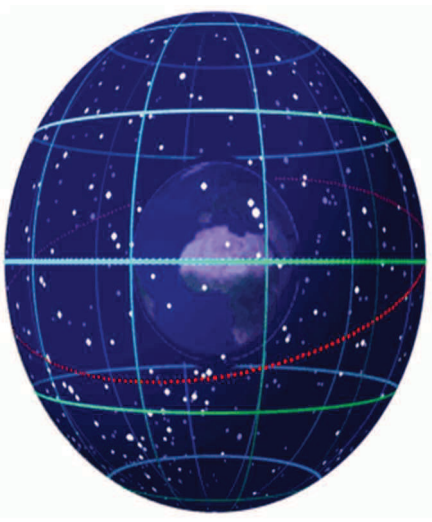

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं .05946- 261122 , 261123

टॉल फ्री न0 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति एवं अध्ययन मण्डल (सत्र 2017-18)

अध्यक्ष

कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल (संयोजक)

निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

डॉ. देवेश कुमार मिश्र

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी।

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

अध्यक्ष, वास्तुशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।

प्रोफेसर चन्द्रमा पाण्डेय

पूर्व अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रोफेसर शिवाकान्त झा

कुलपति, नालन्दा ओपेन युनिवर्सिटी, पटना

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय

राष्ट्रिय महासचिव, अखिल भारतीय विद्वत परिषद्
वाराणसी

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2**	**1,2,3,4**
डॉ. शिवाकान्त मिश्र असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग जगद्गुरू रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर	**3**	**1,2,3,4**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष - 2019

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: -

ISBN No. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

MAJY -104

ग्रहण, वेध-यन्त्र तथा गोल परिचय

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – ग्रहण विचार	**पृष्ठ -2**
इकाई 1: ग्रहण परिचय	3-18
इकाई 2: सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार	19-33
इकाई 3: भूभा, पात (राहु) एवं ग्रास विचार	34-48
इकाई 4: शर एवं बलन	49-60
इकाई 5 : लम्बन एवं नति	61-73
द्वितीय खण्ड - चन्द्रश्रृंगोन्नति एवं उदयास्तादि विचार	**पृष्ठ-74**
इकाई 1: चन्द्रश्रृंगोन्नति विचार	75-91
इकाई 2: ग्रहोदयास्त विमर्श	92-103
इकाई 3: ग्रहयुति एवं पात विचार	104-116
इकाई 4: दृक्कर्म परिचय	117-129
तृतीय खण्ड – वेध एवं यन्त्र परिचय	**पृष्ठ- 130**
इकाई 1: भारतीय वेध परम्परा एवं वेधशाला विवेचन	131-145
इकाई 2: यन्त्रों का परिचय	146-162
इकाई 3: प्रमुख यन्त्रों का नाम व उपयोग	163-182
इकाई 4: प्राच्य एवं अर्वाचीन यन्त्रों का विवेचन	183-191
चतुर्थ खण्ड - गोल परिचय	**पृष्ठ-192**
इकाई 1: गोल परिचय एवं प्रयोजन	193-206
इकाई 2: विविध आभासिक वृत्तादि की परिभाषा	207-226
इकाई 3: क्रान्ति एवं परमक्रान्ति विवेचन	227 –237
इकाई 4: द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, सूत्र, वित्रिभ, सत्रिभ आदि का विवेचन	238-246

एम0ए0 ज्योतिष

(MAJY-18)

प्रथम वर्ष – चतुर्थ पत्र

ग्रहण वेध-यन्त्र तथा गोल परिचय

MAJY-104

खण्ड - 1

ग्रहण विचार

इकाई – 1 ग्रहण परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ग्रहण परिचय

1.3.1 ग्रहण अवस्था, स्वरूप एवं प्रभाव

1.3.2 ग्रहण फल एवं शान्ति

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहण परिचय। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'ग्रहण' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहण' सिद्धान्त ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियो के साथ-साथ आम जनमानस को भी इस शास्त्र के प्रति और विश्वास बढ़ जाता है। सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहण एक खगोलीय घटना है, जो आकाश में ग्रह (सूर्य-चन्द्र एवं पृथ्वी) पिण्डों के परस्पर कारण से घटित होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहण' के बारे में उसकी गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहण को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहण के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहण' लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- ग्रहण में कृत्याकृत्य को जान लेंगे।
- ग्रहण के गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को समझ लेंगे।

1.3 ग्रहण परिचय

ज्योतिष शास्त्र को उसके अध्येताओं के साथ-साथ आम जनमानस के लिए भी श्रद्धा के शिखर पर स्थापित करने में सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत वर्णित **'ग्रहण'** का प्रमुख स्थान है। आश्चर्योत्पादित प्रतिभा के द्वारा हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विधा के अन्तर्गत इस खगोलीय घटना की परिगणना की वस्तुत: वह आज भी प्रासंगिक है, इसमें कोई संशय नहीं। हमारे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद (५/४०/५/९) में ग्रहण के विषय बताये गये है। जगत्स्रष्टा भगवान ब्रह्मा ने समस्त सृष्टि की रचना करके इस ब्रह्माण्ड को गतिमान करने के लिए भगवान सूर्य को नियुक्त किया। भगवान सूर्य के

रश्मियों से प्रकाशित समस्त ग्रह सहित ज्योतिष्मान् पिण्ड सतत् अपनी गति, स्थिति, प्रकृति तथा प्रभाव से इस समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित कर रहे हैं। पृथ्वी से कोशो दूर स्थित हमारे ग्रहमण्डल की स्थितियों का छोटे-छोटे यन्त्रों (लकड़ी, हाथी दाँत, बेंत सूत्रादि) की सहायता से जिस प्रकार ज्ञान किया गया, यह आज भी विज्ञान के लिए चुनौति बना हुआ है। आज के आधुनिक वैज्ञानिक भी हमारे सिद्धान्त ज्योतिष की सत्ता स्वीकार कर उसको आदि विज्ञान की संज्ञा देते हैं तथा प्रथम अन्तरिक्ष वैज्ञानिक आर्यभट्ट के नाम पर सर्व सहमति भी व्यक्त करते हैं। 'ग्रहण' एक खगोलीय घटना है जिसका प्रभाव ज्योतिष शास्त्र में वृहद् रूप में अंकित किया गया है। सामान्य तर्क के द्वारा हम ग्रहण प्रभाव को परिकल्पित करते हैं कि प्रतिदिन गर्मी के मौसम में सामान्य दिन हो रहा हो परन्तु यदि १ दिन तापमान २° हो जाये तो ऐसे प्राकृतिक प्रभाव का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव होगा? हाँ हमलोगों में से अधिकांश को कुछ नहीं होगा परन्तु कुछ लोग बीमार पड़ जायेंगे। यदि सामान्य सी स्थिति हमारे शारीरिक स्थिति पर इतना प्रभाव डाल सकती है तो ऐसी स्थिति जिसमें हम शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की ऊर्जा को ग्रहण करते हैं, भला कैसे प्रभावी नहीं होगी। दिन में रात्रि या उजाले में अन्धकार की प्रवृत्ति निश्चित रूप से जगत् को प्रभावित करेगी।

हमारे प्राचीन महर्षियों (ज्योतिर्विदों) ने सिद्धान्त स्कन्ध में बताया है कि सामान्यतया ग्रहण (एक ग्रह बिम्ब के द्वारा दूसरे ग्रह बिम्ब का ढका जाना) अनेकों आकाश में होते रहते हैं परन्तु रवि एवं चन्द्र का ग्रहण हमारे जगत् को विशेष रूप से प्रभावित करता है, इसलिए इनके ग्रहण की आनयन विधि तथा विविध प्रकार का क्षेत्रात्मक फल या प्रभाव भी वर्णित किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के स्कन्धत्रय में ग्रहण की परिचर्चा है। सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत ग्रहण गणना को बताया गया है तथा व्यक्ति पर ग्रहण के प्रभाव को होराशास्त्र में तथा सामूहिक एवं समष्टिगत प्रभाव की गणना संहिता ग्रन्थों में विस्तार से किया गया है।

आज का विकसित विज्ञान (खगोल) भी ग्रहण को चमत्कारिक घटना तथा दुष्प्रभाव युक्त स्वीकार किया है। कुछ समय पूर्व में ग्रहण काल में गृहीत ग्रह का दर्शन निषिद्ध था परन्तु कुछ दिन बाद ग्रहण को देखने के लिए चश्मा, दूरबीन या एक्सरे आदि उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार विज्ञान अपनी शोध की उपलब्धि के आधार पर विभिन्न तरह के शोधन- परिशोधन के साथ प्राकृतिक घटनाओं तक पहुँचने का सफल प्रयत्न करता है, परन्तु इसके गर्भ में विद्यमान गणना से परे इतने प्रश्न हैं जिनका सीधा उत्तर या परिगणना अनुपलब्ध एवं अनुत्तरित है। प्रकृति अपने अनुरूप घटनाओं को जन्म देती है तथा दार्शनिक भाषा में उसे स्वयं अपने में समेट कर उसका उपसंहार भी करती रहती है। प्रकृति को पढ़ने में जितने सहायक हमारे प्राचीन महर्षि हुए, शायद उतना सामर्थ्य

जुटाना असंभव सा प्रतीत होता है। ऐसे अनेकों प्रश्न या घटना खगोलीय अनुसन्धान के द्वारा हमारे अल्प जीवन में दिखें जिनके प्रभाव को लेकर तरह- तरह की चर्चायें संसार में होती रहीं परन्तु स्वयं उसका समाधान भी हो गया और हम देखते रह गये।

ग्रहण, ब्रह्माण्डस्थ ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के परस्पर संयोग से होने वाली एक ऐसी अद्भुत एवं विस्मयकारी आकाशीय घटना है जिसके द्वारा वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दोनों जगत् प्रभावित होते हैं। एक ओर वैज्ञानिक वर्ग जहाँ इसके द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिति को जानने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी तरफ आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत् से सम्बद्ध लोग इस काल के अतीव पुण्यदायक होने से चतुर्विधपुरूषार्थों के प्रत्येक अवयवों की पुष्टि हेतु वेद-विहित कर्मानुष्ठान-स्थान-दान एवं होम आदि करते हुए परा एवं अपरा विद्या के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय एवं समृद्ध बनाते हैं। सामान्यतया आकाश में विद्यमान सभी ग्रहर्क्षादि पिण्डों के ग्रहण होते हैं, परन्तु प्रत्यक्षतया भूपृष्ठ पर प्रभाव डालने एवं जन-सामान्य के द्वारा नग्न चक्षु से सरलतया दृष्ट होने के कारण सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रहण ही ग्रहण के रूप में जाना जाता है तथा सौरमण्डल के इस भूपृष्ठ पर विद्यमान लोगों के लिए महत्वपूर्ण होता है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा तथा सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है क्योंकि अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए सूर्य एवं चन्द्रमा का परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है तथा उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य में स्थित भूपिण्डस्थ जनों के समक्ष सूर्य किरणों के संसर्ग से प्रकाशित चन्द्रपिण्ड का उज्ज्वल भाग पूर्ण बिम्ब रूप में दिखाई पड़ता है परन्तु उक्त स्थिति में जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में पात के आसन्न होता है तब पृथ्वी द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध होने से जो भूमि की छाया बनती है वह भी स्वविरूद्ध दिशा में १८० अंश पर द्वितीय पात के आसन्न सूर्य एवं चन्द्र कक्षाओं से होकर ही आगे तक जाती है। अत: अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा उस भूभा में प्रविष्ट होकर ग्रहण ग्रस्त हो जाता है। इसलिएइसके सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए आचार्यों ने लिखा है कि सपात सूर्य का भुजांश जब १४° से न्यून होता है, तब चन्द्रग्रहण की सम्भावना होती है। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है –

'सपातसूर्यस्य भुजांशका यदा मनूनका: स्याद् ग्रहणस्थ सम्भव:।।'

आधुनिक वैज्ञानिकों के मत में चन्द्रमा की कक्षा सूर्य की कक्षा के अपेक्षा ५° अवनति के कारण संयोगवश पूर्णिमा काल में चन्द्रग्रहण की स्थिति उत्पन्न होती है। सूर्यग्रहण में सूर्य एवं चन्द्रमा एक कदम्बप्रोत वृत्तगत होकर अपनी-अपनी कक्षाओं में राश्यादि मान से समान होते हैं, क्योंकि '**दर्श: सूर्येन्दुसंगम:**' के अनुसार सूर्य एवं चन्द्रमा का राश्यादि मान से समान होना ही अमान्त का लक्षण

है। अत: उक्त स्थिति में सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य चन्द्रमा की स्थिति होने से पातासन्न सूर्यबिम्ब का चन्द्रबिम्ब से अवरोध उत्पन्न होने के कारण ग्रहण की स्थिति बनती है। सूर्यग्रहण के सम्भावना काल को प्रतिपादित करते हुए आचार्य भास्कराचार्य ने लिखा है - ''पाताढयार्कभुजांशका यदि नगोनास्स्युस्तदार्कग्रह:'' अर्थात् जब सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून होगा तो सूर्यग्रहण की स्थिति बनेगी। वास्तविक रूप में सूर्यग्रहण काल में चन्द्रपिण्ड द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध से जो चन्द्रमा की छाया सूर्य के विरूद्ध दिशा में पड़ती है। उसके द्वारा भूपिण्ड का ही ग्रहण होता है परन्तु उस छाया के अन्तर्गत स्थित वासियों के लिए ही सूर्य के अदृश्य होने से सूर्यग्रहण कहा जाता है। आचार्य कमलाकर भट्ट ने सूर्यग्रहण को पृथ्वी का ग्रहण कहा है। यह ग्रहण छादक द्वारा बिम्ब के अवरूद्ध होने से सार्वदेशिक नहीं होता है परन्तु चन्द्रग्रहण में छाद्य चन्द्रबिम्ब के स्वयं भूभा में प्रविष्ट हो जाने के कारण चन्द्रग्रहण एक कालावच्छेदेन सार्वदेशिक होता है।

1.3.1 ग्रहण की अवस्था, स्वरूप एवं प्रभाव -

ग्रहण की पाँच अवस्थाएँ होती है –

1. स्पर्श 2. सम्मीलन 3. मध्य 4. उन्मीलन 5. मोक्ष

ग्रहण स्वरूप –

ग्रहण के चार स्वरूप होते है – खण्ड, पूर्ण, खग्रास तथा वलय।

ग्रहण के प्रभाव को हम तीन वर्गों में विभाजित करके विवेचना कर सकते हैं -

क. व्यक्तिगत प्रभाव – ग्रहण के प्रभाव को प्राय: सभी शास्त्रकारों ने अशुभ माना है। यदि कोई भी व्यक्ति ग्रहण को देखता है तो उसके लिए शास्त्रकारों ने हितकर नहीं बताया है। प्रत्येक मनुष्य पर ग्रहण के दुष्प्रभाव को प्राचीन आचार्यों ने अपनी-अपनी अन्वेषण पद्धति से पृथक्-पृथक् परिगणित किया है। आचार्य हारीत ने बताया है कि जिस भी व्यक्ति के जन्मनक्षत्र में चन्द्र या सूर्य का ग्रहण होता है तो उसे हानि, शत्रुता तथा तिरस्कार प्राप्त होता है। आचार्य रामदैवज्ञ ने लिखा है कि जिसके जन्मनक्षत्र में ग्रहण होता है उसकी आयु में संकट उत्पन्न होता है तथा निम्नलिखित फल की प्राप्ति जन्म राशि के क्रम से प्राप्त होती है। यथा –

राशि	**फल**
जन्मराशि	पीड़ा
दूसरी	क्षति
तीसरी	धन लाभ

चौथी	शरीर पीड़ा
पॉचवी	पुत्रादि चिन्ता
छठी	सुख
सातवीं	पत्नी मरण
आठवी	मरण
नवीं	सम्मान नाश
दसवीं	सुख
ग्यारहवीं	लाभ
बारहवीं	मृत्यु, द्रव्यनाश

यहाँ अन्त में बताया गया है कि कुछ आचार्यों के मत में यदि हम ग्रहण न देखें तो यह अशुभ फल नहीं प्राप्त होता है। पीयूषधारा टीकाकार श्री गोविन्द दैवज्ञ ने बताया है कि दैवज्ञ मनोहर नामक ग्रन्थ में भी इस प्रकार ही फल बताया गया है, परन्तु अन्त में कहा गया है कि गर्गादि आचार्यों का मानना है कि यदि ६ मास के भीतर दूसरा ग्रहण संभव हो तो पूर्वग्रहण का दूषित फल शुभफल में परिवर्तित हो जाता है। आचार्य लल्ल ने बताया है कि ग्रहण का प्रभाव व्यक्तियों पर तीन तरह का होता है। प्रथम जिस राशि में ग्रहण हो उससे ३,८,४,११ स्व राशि होने पर शुभ तथा दूसरा ५,९ स्वराशि हो तो मध्यम तथा तीसरा १,६,२,७ स्वराशि हो तो ग्रहण का दूषित फल होता है। आचार्य गर्ग ने कुछ भिन्न प्रभाव का निरूपण किया है जिसमें स्वराशि ८,११,४,३ हो तो शुभ, १२,५,९,७ हो तो मध्यम तथा ६,२,१०,१ हो तो दूषित फल बताया है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की राशि अलग-अलग होती है अतएव ग्रहण काल का दूषित रश्मिजन्य प्रभाव भी हमारे उपर पृथक्-पृथक् अनुभव किया जाता है, जिसको हमारे प्राचीन महर्षियों ने अपने-अपने शोध के आधार पर व्यक्त किया है। ग्रहणग्रस्त राशियाँ या नक्षत्र प्राय: सभी आचार्यों की दृष्टि में निन्द्य हैं। परन्तु कुछ स्थानों में मतान्तर का कारण कालजन्य या स्थानजन्य अन्तर संभव हो सकता है, क्योंकि दोनों प्रकार के ग्रहणों का संकलन कर यहाँ व्यक्तिगत प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। जिसमें स्थान को आधार मानकर कोई विभाजन नहीं किया गया है।

2. सामूहिक प्रभाव – विशेषरूप से ग्रहण के सामुहिक का ही वर्णन प्राचीन ग्रन्थों एवं पुराणों में प्राप्त होता है। महाभारत में पाया जाता है कि –

चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तौ एकमासीं त्रयोदशीम्।

अपर्वणि ग्रहावेतावुत्पातं जनयिष्यत:।।

अर्थात् ऐसे ग्रहण काल में उत्पात अवश्य होगें। इस प्रकार के ग्रहण का आख्यान गोपथ ब्राह्मण २/३/१९ तथा शतपथ ब्राह्मण ५/३/२/२ एवं तैतरीय ब्राह्मण ४/२ में प्राप्त होता है। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में बताया है कि यदि एक ही मास में रवि एवं चन्द्र दोनों का ग्रहण हो तो राजा के सेना में विद्रोह तथा कोश एवं शस्त्र नाश होता है। इस प्रकार वशिष्ठ संहिता में बताया गया है कि यदि उत्तरायण में सूर्य या चन्द्र ग्रहण हो तो विप्र, सज्जन एवं राजा की हानि होती हैं। वशिष्ठ संहिता के ही ६ पर्वों के आधार पर पृथक्-पृथक् अशुभ फलों को बताया गया है। अद्भुतसागर के राहोर्द्भूतावर्त्त: में बताया गया है कि एक विसन्धिग्रहण या प्राकृत ग्रहण होता है जिसमें सर्वाधिक क्षति की संभावना होती है। ग्रहण के समय में उत्पात उल्कापात, दिग्दाह, भूकम्प, धूलिवर्षण आदि दिखाई दे तो पुन: ग्रहण तथा अशुभदायक माना गया है। यथा –

चन्द्रग्रहण काल में प्रबल वायु हो तो -६ मास में ग्रहण – अशुभ फल,

चन्द्रग्रहण काल में उल्कापात हो तो -१२ मास में ग्रहण – शस्य नाश,

चन्द्रग्रहण काल में धूलिवर्षण हो तो -१८ मास में ग्रहण – मृत्यु,

चन्द्रग्रहण काल में भूकम्प हो तो -२४ मास में ग्रहण – हानि,

चन्द्रग्रहण काल में अन्धकार हो तो – ३० मास में ग्रहण – राजनाश,

चन्द्रग्रहण काल में वज्रपात हो तो – २६ मास में ग्रहण – अतिवृष्टि

पूर्वोक्त सभी हो तो ६-६ अन्तर पर ग्रहण – विविध उत्पात,

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये -

1. 'ग्रहण' होरा ज्योतिष का विषय है।
2. भूसापेक्ष चाक्षुषदृष्ट्या ग्रहण मुख्यत: दो प्रकार के होते है।
3. ग्रहण की कुल पाँच अवस्थायें होती है।
4. सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून हो तो चन्द्रग्रहण की स्थिति बनती है।
5. सूर्य एवं चन्द्रमा परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है।
6. ज्योतिषशास्त्र के मुख्यत: तीन स्कन्ध हैं।
7. 'उपराग' ग्रहण का पर्याय है।

इस प्रकार ही ग्रहण के स्पर्श तथा मोक्षकालिक स्थितियों के द्वारा भी विविध प्रकार का फल बताया गया है। जिसके अन्तर्गत सामूहिक फल ही अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। आचार्य भार्गव ने लिखा है कि दृश्य आकाश को तीन भागों में विभक्त कर और दिनमान तथा रात्रिमान के द्वारा भी विभागत्रय कर दिन या रात्रि के ग्रहण का आकाश में भाग का ज्ञान कर पृथक्-पृथक् फल बताया है। इस प्रकार वृद्धगर्ग ने ७ खण्ड आकाश का किया है और निम्नलिखित फल बताया है –

प्रथम खांश- गायों की हानि,

द्वितीय खांश – विप्रों की हानि,

तृतीय खांश – क्षत्रियों की हानि,

चतुर्थ खांश – सभी लोगों का नाश,

पंचम खांश – वैश्यों का नाश,

षष्ठ खांश – शूद्र एवं स्त्रियों का नाश,

सप्तम खांश – अन्त्यज जातियों का नाश,

वरूणादि मण्डल में ग्रहण का शुभाशुभ प्रभाव का प्रतिदान वृहत्संहिता में विस्तार से किया गया है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रीय मुहूर्त्त एवं संहिता से सम्बन्धित प्राय: सभी ग्रन्थों में सामूहिक ग्रहण प्रभाव की परिचर्चा अवश्य छोटे या बड़े रूप में प्राप्त होती है।

ग. स्थानीय प्रभाव - ज्योतिषशास्त्र एक वैज्ञानिक शास्त्र है। प्रत्येक परिस्थितियों का विश्लेषण करना इसका पुनीत एवं मंगल कार्य है। काल की गणना तथा कालजन्य विकृतियों का खण्ड-खण्ड कर उसका विश्लेषण तथा दोष शमन उपाय प्रत्येक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में अवश्य प्राप्त होता ही है। भचक्र में गतिमान रवि-चन्द्र ग्रहण निश्चित रूप से अमावस्या तथा पूर्णिमा को ही होगा परन्तु मास का निश्चय नहीं है कि यह ग्रहण अमुक मास में ही पतित होगा ऐसी परिस्थिति में जिसकी नक्षत्र में यह ग्रहण होता है तो संहिता के परम्परा के अनुसार कूर्मविभाग द्वारा उस नक्षत्र से सम्बन्धित देश, स्थानादि का निर्धारण करते हैं तथा उस स्थान विशेष पर उस ग्रहण का प्रतिकूल प्रभाव की परिगणना करते हैं। अतएव इसे हम स्थानीय प्रभाव के अन्तर्गत परिगणित करते हैं। ग्रहण प्रभाव का निरूपण करते हुए आठवें अध्याय में वृहद्दैवज्ञरंजन में बताया है कि यदि श्रावण, कार्तिक या आश्विन मास में सूर्य-चन्द्र ग्रहण हो और गुरूदृष्ट हो तो उत्तर दिशा के राज्यों में सुख तथा सुन्दर वृष्टि एवं स्थान की वृद्धि होती है। जिस राज्य के नक्षत्र पर ग्रहण होता है उस राज्य, मित्र एवं राजा का मरण होता है। कुछ स्थानों पर जाति के आधार पर ग्रहण का प्रभाव बताया गया ह। साथ ही अद्भुतसागर के राद्धोद्भूतावर्त नामक अध्याय के अन्तर्गत वैशाखमास से प्रारम्भ कर चैत्र पर्यन्त द्वादश मासों में

ग्रहण के प्रभाव को भिन्न- भिन्न देशों, स्थानों के आधार पर वर्णित किया गया है जिसका सर्वाधिक प्रभाव वृहत्संहिता में भी प्राप्त होता है। आचार्य ने उसी ग्रन्थ में कहा है कि –

कूर्मविभागेन वदेत् पीडां देशस्य वीक्ष्य नक्षत्रम्।।

अर्थात् हमें ग्रहण के प्रभाव को कूर्मचक्र के आधार पर नक्षत्र विभाजन करके मूल्यांकन करना चाहिए। आजीविकाओं पर पड़ने वाले ग्रहण के प्रभावों का विवेचन भी आचार्य पराशर ने विस्तार से किया है जिसकी चर्चा भट्टोत्पल की टीका में तथा अद्भुतसागर में भी प्राप्त होता है। आचार्य कश्यप ने चतुर्दिक का भिन्न-भिन्न प्रभाव भी प्रतिपादित किया है कि उत्तर दिशा में ग्रहण हो तो विप्रों का पूर्व में क्षत्रियों का, दक्षिण में वैश्यों का तथा पश्चिम दिशा में ग्रहण हो तो शूद्रों को मारता है।

ग्रहण के विभिन्न स्वरूपों को आपको पूर्व में ही परिचित कराया जा चुका है अब आपके ज्ञानार्थ यहाँ छायाचित्र भी दर्शाया जा रहा है, जिससे आप भली-भॉति ग्रहण को समझ सके, और जान सके। चूँकि ग्रहण आकाशीय घटना है, अत: इसे आकाश में ही देखा जाना सम्भव है। अब आप पहले यहाँ ग्रहण को छायाचित्र में समझने का प्रयास कीजिये, पुनश्च उसके फलाफल का भी ज्ञान कीजिएगा।

ग्रहण का छायाचित्र -

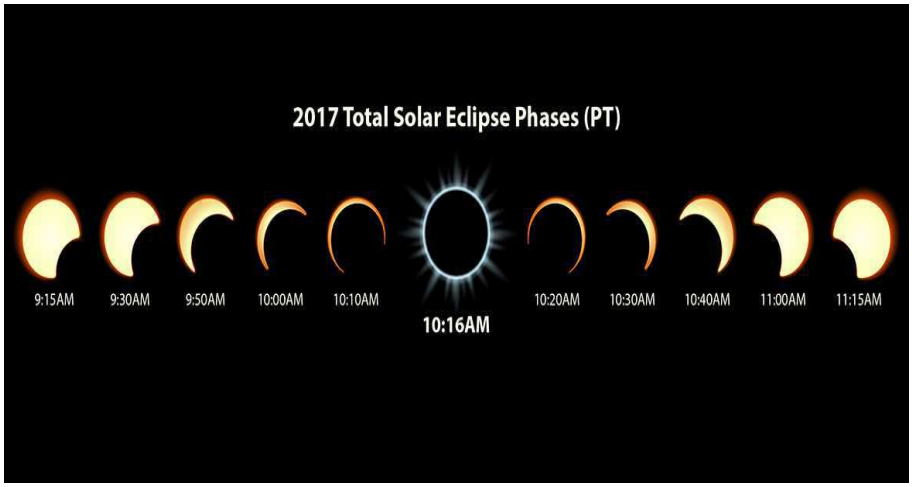

ग्रहण के विभिन्न स्थितियों को आप छायाचित्र में देखकर भी समझ सकते है। खग्रास, खण्डग्रास एवं सर्वग्रास तीनों अवस्थाओं को आप देख रहे है। उदाहरण के लिए २०१७ में लगने वाले सूर्यग्रहण को आपके ज्ञानार्थ यहाँ दिखाया गया है।

चन्द्रग्रहण के भी विभिन्न प्रकारों को आप छायाचित्र में देख सकते हैं। कैसे चन्द्रबिम्ब श्रृंगोन्नति रूप से पूर्ण बिम्ब के रूप में परिणत हो रहा है? उदाहरण के लिए आप छायाचित्र में देखकर समझ सकते है। ज्योतिष विज्ञान के अनुसार इस अद्भुत खगोलीय घटना के विश्लेषण को आधुनिक वैज्ञानिक भी सहज रूप से मानते हैं।

1.3.2 ग्रहण फल एवं शान्ति -

ग्रहण फल –

प्राय: देखा जाता है कि मुहूर्त्त प्रसंग में ग्रहण सर्वदा अशुभफलदायक ही होता है। इसीलिए ग्रहणकाल में सभी शुभकर्म वर्जित होते हैं। न केवल ग्रहण काल अपितु पूर्णग्रहण होने पर सात दिन अर्धग्रहण होने पर तीन दिन तथा पादग्रहण होने की स्थिति में एक दिन पूर्व तथा पर में शुभ कार्यों हेतु वर्जित है। इस सम्बन्ध में मतान्तर भी प्राप्त होते हैं, परन्तु सर्वाधिक आचार्यों ने उसे ही ग्रहण किया है। रामाचार्य ने लिखा है कि – ग्रहण लगे हुए ही सूर्य या चन्द्रमा के अस्त होने पर ग्रहण से तीन दिन पूर्व, ग्रस्तोदय होने की स्थिति में ग्रहण के अनन्तर तीन दिन तथा उदय एवं अस्त काल के अतिरिक्त खण्डग्रास ग्रहण में ग्रहण के पूर्व एवं बाद में तीन-तीन दिन दूषित होने से शुभकार्यों में त्याज्य होते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्णग्रहण होने पर छ: मास, अर्द्धग्रास होने पर तीन मास तथा चतुर्थांश ग्रहण होने पर एक मास तक ग्रहण नक्षत्र शुभकार्यों में वर्जित होता है। जैसा कि आचार्य ने कहा है –

नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेन्दुभासान्।

पूर्वं परस्तादुभयोस्निघस्नग्रस्तेऽस्तगे वाय्युदितेऽर्धखण्डे।।

आचार्य कमलाकर भट्ट ने सिद्धान्ततत्वविवेक में लिखा है कि किसी भी ग्रहण में ग्रहण दिन सहित पूर्व का एक तथा बाद का तीन दिन समस्त शुभकार्यों में त्याज्य है। यथा –

प्रागेकाहस्नयहं पश्चाद् तद्दिनं ग्रहणस्यच।

त्यजेद्गत्यन्तराभावे सर्वग्रासेऽपि कर्मणाम्।।

समवेत फल निर्धारण के क्रम में भी मुहूर्त्त की तरह ही अशुभ फल ग्रहण से सम्बन्धित क्षेत्र पर पड़ता है। इस प्रकार के फल निर्धारण की मुख्यत: दो विधियाँ शास्त्र में दिखाई पड़ती है। १. कूर्मचक्रद्वार २. राज्यनक्षत्र द्वारा। कूर्मचक्र के द्वारा हम भारत को मध्य में रखकर समग्रविश्व तथा तदनन्तर भारत को भी नव भागों में विभक्त कर ग्रहणादि सम्बन्धित शुभाशुभ फलों को दैवज्ञों द्वारा प्रतिपादित विधि से जानने का प्रयास करते हैं।

यथा - नरक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यै र्व्यवस्थितैर्नवधा।

भारतवर्षे मध्यप्रगादिविभाजितदेशा:।।

कूर्म चक्र निर्धारण की विस्तृत विधि संहिता ग्रन्थों में वर्णित है। द्वितीय प्रकार से फलज्ञान क्रम में जिस राज्य के राज्याभिषेक नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण होता है वहाँ राज्यनाश, सुजन नाश तथा सामूहिक मरण आदि का भय व्याप्त रहता है।

ग्रहण फल -

आचार्यों ने ज्योतिषशास्त्र के प्रमुखोद्देश्य को चिरतार्थ करते हुए न केवल शुभाशुभ फलों का निर्देश किया है अपितु अशुभता निवारणार्थ शान्ति की व्यवस्था भी दी है जिसके आचरण से समस्त अशुभफल नष्ट हो जाते है। वशिष्ठ ने ''ये नरा: शान्तिवर्जिता:'' कहकर कहा कि शान्तिवर्जित लोगों को ही अशुभफल की प्राप्ति होती है। यथा –

यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।

तज्जातानां भवेत्पीडा ये नरा: शान्तिवर्जिता:।।

शान्तिक्रम में भी औषधि स्नान, दान एवं जप –होमादि अनेक प्रकार की शान्ति शास्त्रों में वर्णित है। जिसके आचरण से ग्रहणजन्य दुष्ट फल होते हैं। कालतत्वविवेक के अनुसार स्वर्णनिर्मित नाग कांस्य पात्र में तिल, दक्षिणा एवं वस्त्रादि के साथ ब्राह्मण को दान करने से ग्रहणजन्य दुष्टफल नष्ट होते हैं-

''सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्। सौवर्णं रजतं वाऽपि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तित:। उपराग भवक्लेच्छिदे विप्राय कल्पयेत्।।''

दानमन्त्र -

तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव। विधुंतद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात्। स्कन्ध पुराण के अनुसार – गोदानं स्वर्णदानं च भूमिदानं विशेषत:। ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेत्।।

औषधि स्नान –

दूर्वांकुरोशीरसमाशिलाजित्सिद्धार्थसर्वौषधिदारूलध्रै:।
स्नानं विदध्याग्रहणे रविन्द्वो: पीडाहरं राशिगते शुभे चेत्।।
वस्त्रपट्टेलिखेन्मन्त्रं रवेराहोस्तमो विधो:।
वेदोक्तं च ततो वस्त्रमाछाद्य स्नानमाचरेत्।।

अर्थात् ग्रणजन्य अशुभ फल की निवृत्ति हेतु दूर्वांकुर, शिलाजित, हल्दी, सर्वौषधि, पीली सरसो, देवदारू एवं लोध आदि जल में डालकर राहु, सूर्य एवं चन्द्रमा का मन्त्र लिखे हुए वस्त्र से आच्छादित होकर उपर्युक्त औषधि युक्त जल से स्नान करना चाहिए। प्रकारान्तर से अन्य औषधियाँ भी स्नान हेतु वर्णित है।

पूजनादि विधि से ग्रहण शान्ति –

ब्राह्मणों द्वारा विधिवत् गणेशादि देवतओं का पूजन कर चार कलश स्थापित करें, कलशों में सप्तमृत, पंचरत्न, पंचगव्य, मोती, शंख, रोचन, पद्म, श्वेत चन्दन, तीर्थोदक, आदि का निक्षेप कर व्याहृति मन्त्र द्वारा तिलमिश्रित हवनीय द्रव्यों से १००८ बार हवन कर संकल्पपूर्वक नव मन्त्रों द्वारा कलशों को अभिमन्त्रित करके निम्नलिखित मन्त्र द्वारा स्नान करने से ग्रहणजन्य दुष्टफल नष्ट हो जाते हैं।

योसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रयत्नत:। सहस्रनयन: शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु।।

स्मृति निर्णय के अनुसार सूर्यग्रहण में सूर्य का जप, दान तथा चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा एवं राहु का जप-दान अशुभ फल के निवृत्यर्थ करना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्तोत्र पाठ तथा अन्य विधियाँ भी प्रस्तुत सन्दर्भ में वर्णित हैं।

ग्रहण में कृत्य –

ग्रहण काल वैज्ञानिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि विभिन्न ग्रहों के किरणों के परस्पर संयोग से जिस विशिष्ट किरणों का निर्माण होता है वे कुछ कार्यों के लिए निषिद्ध तथा कुछ कार्यों हेतु उत्तम वातावरण का निर्माण करती हैं। पुराणों में ग्रहण काल को अतीव उपयोगी बताते हुए इसमें किए गए स्नान-दान-जप होमादि का सामान्य की अपेक्षा कई गुणा फल बताया गया

है। प्रमाणानुसार अष्टम ग्रह के रूप में प्रतिष्ठित राहु का ग्रहण काल में किए जाने वाले दान या होमाहुति से भरण – पोषण भी होता है। यथा –

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्त:।
आव्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता।।

जिस क्षेत्र में ग्रहण होता है उस क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों को स्नानादि कृत्य करना चाहिए। जैसा कि वृद्ध वशिष्ठ ने कहा है –

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।
सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्।।

ग्रहणकालिक दानादि का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए दान खण्ड में लिखा गया है कि – सर्वं भूमि समं दानं सर्वे ब्रह्म समाद्विजा:। सर्वं गंगासमं तोयं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो:।। ग्रहणारम्भ में स्नान कर ग्रहण मध्य में जप-होमादि तथा ग्रहणान्त में मोक्ष स्नान करके दान आदि देना चाहिए। ग्रहण के मोक्ष काल में जो व्यक्ति स्नान नहीं करता है वह अगले ग्रहण तक सूतकी होता है। यथा – भार्गवार्चनदीपिकामुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके। स सूतकी भोक्तावद्यावत् स्यादपरो ग्रह:।। ग्रहणकालिक यह स्नान अमन्त्रक ही होता है। जाबालि ने इस प्रसंग में कहा है कि चक्षु, शिर, कर्ण, एवं कफ रोग से ग्रसित व्यक्ति को कण्ठ से ही स्नान करना चाहिए। यहाँ ग्रहणजन्य पुण्यकाल केवल ग्रहणारम्भ से ग्रहणान्त तक ही होता है। रविवार में सूर्यग्रहण तथा सोमवार में चन्द्रग्रहण हो तो अन्य ग्रहणों की अपेक्षा इसमें स्नान-दान से अधिक पुण्य प्राप्त होता है तथा इसे चूड़ामणि योग कहते हैं।

ग्रहणकाल में वर्ज्य -

ग्रहण काल में मुख्यतया २४ कार्यों को वर्जित किया गया है। तद्यथा –

छेद्यं न पत्रं तृणदारूपुष्पं कार्यं न केशांबरपीडनं च।
दन्ता न शोध्या: पुरूषं न वाच्यं भोज्यं च वर्ज्यं मदनो न सेव्य:।।
बाह्यं न वाजी द्विरदादि किंचिद्दोह्यं न गावो महिषीसमाजम्।
यात्रां न कुर्याच्छयनं च तद्वत् ग्रहे निशाभर्तुरर्हपतेश्च।।
निद्रायां जायते अन्ध: विण्मूत्रे ग्रामसूकर:।
मैथुने च भवेत्कुष्ठी वधूर्वध्या द्विभोजने।।

न केवल गहणकाल अपितु ग्रहण पूर्व सूतक काल में भी उक्त कार्य वर्जित है। चन्द्रग्रहण में तीन प्रहर अर्थात् ९ घंटा तथा सूर्यग्रहण में चार प्रहर अर्थात् १२ घंटा पूर्व से सूतक काल होता है। यथा-

सूर्य ग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना।।

सूतक काल में बाल, वृद्ध एवं आतुर जनों हेतु छूट प्राप्त है। परन्तु ग्रहणकाल में इन्हें भी यथा सम्भव इसका त्याग कर देना चाहिए। सारांशत: ग्रहण से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध है जिनका निर्णय यथा प्रसंग सम्बन्धित शास्त्रों से करके ही कार्य-व्यवाहारादि करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. आकाश के तृतीय खांश का फल .....होता है।
2. आचार्य कश्यप के अनुसार उत्तर दिशा में ग्रहण हो तो ..... होती है।
3. मुहूर्त्त प्रसंग में ग्रहण सर्वदा .....होता है।
4. ग्रहण काल में मुख्यतया ..... कार्य वर्जित किया गया है।
5. सर्वं भूमि समं दानं सर्वे ब्रह्म ..... ।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिष शास्त्र को उसके अध्येताओं के साथ-साथ आम जनमानस के लिए भी श्रद्धा के शिखर पर स्थापित करने में सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत वर्णित **'ग्रहण'** का प्रमुख स्थान है। आश्चर्योत्पादित प्रतिभा के द्वारा हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विधा के अन्तर्गत इस खगोलीय घटना की परिगणना की वस्तुत: वह आज भी प्रासंगिक है, इसमें संशय नहीं। हमारे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद (५/४०/५/९) में ग्रहण के विषय बताये गये है।'ग्रहण' एक खगोलीय घटना है जिसका प्रभाव ज्योतिष शास्त्र में वृहद् रूप में अंकित किया गया है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा तथा सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है क्योंकि अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए सूर्य एवं चन्द्रमा का परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है तथा उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य में स्थित भूपिण्डस्थ जनों के समक्ष सूर्य किरणों के संसर्ग से प्रकाशित चन्द्रपिण्ड का उज्ज्वल भाग पूर्ण बिम्ब रूप में दिखाई पड़ता है परन्तु उक्त स्थिति में जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में पात के आसन्न होता है तब पृथ्वी द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध होने से जो भूमि की छाया बनती है वह भी स्वविरूद्ध दिशा में १८० अंश पर द्वितीय पात के आसन्न सूर्य एवं चन्द्र कक्षाओं से होकर ही आगे तक जाती है। अत: अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा उस भूभा में प्रविष्ट होकर ग्रहण ग्रस्त हो जाता है। इसलिएइसके सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए आचार्यों ने लिखा है कि सपात सूर्य का भुजांश जब १४° से न्यून होता है, तब चन्द्रग्रहण की

सम्भावना होती है। ग्रहण, ब्रह्माण्डस्थ ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के परस्पर संयोग से होने वाली एक ऐसी अद्भुत एवं विस्मयकारी आकाशीय घटना है जिसके द्वारा वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दोनों जगत् प्रभावित होते हैं। एक ओर वैज्ञानिक वर्ग जहाँ इसके द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिति को जानने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी तरफ आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत् से सम्बद्ध लोग इस काल के अतीव पुण्यदायक होने से चतुर्विधपुरूषार्थों के प्रत्येक अवयवों की पुष्टि हेतु वेद-विहित कर्मानुष्ठान-स्थान-दान एवं होम आदि करते हुए परा एवं अपरा विद्या के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय एवं समृद्ध बनाते हैं।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहण – गृह्णाति इति ग्रहणम्। ग्रहण एक आकाशीय घटना है, जो दो बिम्बों के कारण निश्चित कालावधि में घटित होता है। मुख्यतया दो ग्रहण होते है – चन्द्रग्रण एवं सूर्यग्रहण।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

शर – शर का अर्थ होता है दूरी। ग्रह से बिम्ब की दूरी। गणित ज्योतिष में इसका व्यापक महत्व होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को अमावस्या कहते है। इसी तिथि को शराभाव में सूर्यग्रहण संभव होता है।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा संज्ञक कहा गया है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही शराभाव में होता है।

उपराग – उपराग ग्रहण का पर्याय है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. क्षत्रियों की हानि 2. विप्रों की हानि 3. अशुभफलदायक 4. २४ 5. समाद्विजा:

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तत्वविवेक – मूल लेखक- कमलाकर भट्ट, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी, पर्वसम्भवाधिकार

(ख) ऋग्वेद – ५/४०/५/९

(ग) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी,

मध्यमाधिकार -३

(घ) वृहद्दैवज्ञरंजन – प्र. ३३ श्लोक ३

(ड.) निर्णयसिन्धु - प्र. परि.- ग्रहण निर्णय।

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

वृहद्दैवज्ञरंजन – लोकमणि दहाल

निर्णयसिन्धु – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त

मुहूर्त्तचिन्तामणि – डॉ0 कमलाकान्त पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त - डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र

ज्योतिर्निबन्धसर्वस्व – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहण को परिभाषित करते हुए विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ग्रहण स्वरूप का उल्लेख कीजिये।
3. प्रमुख ग्रहण का वर्णन कीजिये।
4. ग्रहण में कृत्याकृत्य पर प्रकाश डालिये।
5. ग्रहण शान्ति का वर्णन कीजिये।

इकाई - 2 सूर्य एवं चन्द्रग्रहण विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ग्रहण विचार
2.3.1 सूर्य ग्रहण विचार
2.3.2 चन्द्रग्रहण विचार
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है –सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार। इससे पूर्व आपने ग्रहण के बारे में जान लिया है। अब आप ग्रहण से जुड़े मुख्य दो ग्रहण सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। अर्थात् सूर्य का ग्रहण सूर्यग्रहण होता है। उसी प्रकार चन्द्रमा का ग्रहण चन्द्रग्रहण कहलाता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन ये दोनों ग्रहण महत्वपूर्ण रूप में जाने जाते है।

आइए इस इकाई में हम लोग ग्रहण ज्ञान के पश्चात् 'सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- सूर्यग्रहण को परिभाषित कर सकेंगे।
- चन्द्रग्रहण के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण' लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण में विशेष को समझ लेंगे।

2.3 सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार

सामान्यतया किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है। जब कोई खगोलीय पिण्ड किसी अन्य पिण्ड के पीछे आ जाता है या किसी खगोलीय पिण्ड का प्रकाश अन्य पिण्ड के द्वारा बाधित होता है, तब ग्रहण होता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन मुख्यतया ग्रहण के दो भेद है – सूर्यग्रहण एवं दूसरा चन्द्रग्रहण। चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है और पृथ्वी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है। पृथ्वी स्वयं पर प्रकाश एवं ईषत् दीर्घ गोलाकार है, इससे इसका जो भाग सूर्यरश्मि से प्रकाशित होता है, उसके विपरीत भाग में सूच्याकार (सूची सी आकृति) इस भूच्छाया में जब चन्द्रमा प्रवेश करता है, तब वह क्रमश: अन्धकार से आच्छादित होने लगता है। इसी को 'चन्द्रग्रहण' कहते है। ऐसी घटना केवल पूर्णिमा को ही होती है इस कारण पूर्णिमा को ही 'चन्द्रग्रहण' हो सकता है।

चन्द्रमा यदि सूर्य और पृथ्वी के मध्यवर्ती हो तो सूर्यरश्मि चन्द्र से अवरूद्ध होती है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है। सूर्य और चन्द्रमा के संगमकाल में अर्थात् अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना होती है। यदि चन्द्रकक्षा और भूकक्षा समतल स्थित होती तो प्रति पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण एवं प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण होता। क्योंकि उस काल में सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सूत्र में रहने से चन्द्र द्वारा सूर्यरश्मि बाधित वा भूच्छाया द्वारा चन्द्रबिम्ब छादित होता। किन्तु चन्द्रकक्षा और पृथ्वी कक्षा समतलस्थ नहीं है। इन दो कक्षाओं के दो बिन्दुमात्र में तिर्यग्भाव से सन्धि होती है। जिन राहु, केतु को चन्द्रपात कहते हैं, इसी पातस्थान में या तदासन्न में चन्द्रमा जब आता है, तब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी समतलस्थ होती है। अतएव प्रत्येक पूर्णमासी वा अमावस्या को चन्द्रमा अपने पातस्थ वा निकटस्थ न होने से चन्द्र या सूर्यग्रहण नहीं होता।

चन्द्रग्रहण के नियम –

क. चन्द्रकक्षास्थ पृथ्वी की छाया के केन्द्र से चन्द्रबिम्ब के केन्द्र तक जो अन्तर हैं, वह भूच्छाया और चन्द्रमा के व्यासार्द्ध के योग से न्यून न होने से ग्रहण नहीं हो सकता है।

ख. चन्द्रमा बिम्ब केन्द्र से छायाकेन्द्र पर्यन्त जो अन्तर है, वह छाया और चन्द्रमा के व्यासार्द्ध वियोग फल की अपेक्षा न्यून तथा दोनों समान न होने पर पूर्ण ग्रहण नहीं हो सकता है।

ग. पृथ्वी से चन्द्रमा जितनी दूर, भूच्छाया उसके प्राय: साढ़े तीन गुणा अधिक दूर विस्तृत एवं इस छाया के जिस प्रदेश में चन्द्रमा प्रवेश करता है, वह क्षेत्र चन्द्रव्यास से प्राय: तीन गुणा अधिक होता है। चन्द्रबिम्ब जब सम्यग् रूप से छाया में प्रविष्ट होता है, उस समय 'पूर्णचन्द्रग्रहण' होता है और जिस समय उसका एक अंशमात्र छाया में आच्छन्न होता है उस समय 'आंशिकचन्द्रग्रहण' होता है।

घ. सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून न हो तब तक चन्द्रग्रहण सम्भव नहीं होता।

ङ. एक स्थान पर एक वर्ष में दो बार भी चन्द्रग्रहण हो सकता है और एक बार भी नहीं हो सकता यह भी सम्भव है। परिस्थिति के अनुसार एक वर्ष में पाँच बार सूर्यग्रहण और दो चन्द्रग्रहण का होना सम्भव है।

च. चन्द्रमा अमावस्या को १७ अंश,२१ कला पातस्थान में निकटवर्ती होने पर सूर्यग्रहण, पूर्णिमा को १९ अंश ३४ कला निकट होने पर चन्द्रग्रहण हो सकता है।

छ. चन्द्रपात यदि स्थिर रहता तो प्रतिवत्सर एक ही समय में ग्रहण होता किन्तु यह पात पूर्व से पश्चिम की ओर प्राय: १८ वर्ष २२८ दिन और ६ होरा में एक बार विलोमगति से परिक्रमा

करता है। इसी कारण इतने समय के अन्त में चन्द्रपात अपने स्थान में प्रत्यागत होता है। प्राय: प्रति १८ वर्ष २२८ दिन छ: होरा में चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण प्राय: समानरूप से होते हैं।

सूर्यग्रहण के नियम –

क. सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून न हो तब तक सूर्यग्रहण सम्भव नहीं होता।

ख. दर्शान्त में अर्थात् अमावस्यान्त में सूर्य एवं चन्द्रमा एक ही कक्षा में होने के कारण प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना नहीं हो पाती। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि –

दर्शान्तकालेऽपि समौ रविन्दु द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
क्वर्धोचिछ्रत: पश्यति नैकसूत्रं तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि।।

ग. सूर्य और चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध योगफल यदि सूर्य के केन्द्र से चन्द्रमा के केन्द्र की अपेक्षा न्यून होता है तो ग्रहण सम्भव होगा।

घ. सूर्य के दृश्यमान व्यासार्द्ध से चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो 'मध्यग्रास' होगा।

ङ. सूर्य के दृश्यमान व्यासार्द्ध को चन्द्रमा के दृश्यमान व्यासार्द्ध से अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो 'सर्वग्रास' ग्रहण होगा।

च. मानैक्यार्धाल्पशर समय में सूर्यग्रहण कहीं न कहीं प्रतिदिन होता है, परन्तु स्थान विशेष से वह ग्रहण कहीं दीखता है कहीं नहीं भी दीखता है।

चन्द्रमा द्वारा सूर्य की किरणें अवरूद्ध होने से सूर्यग्रहण होता है। चन्द्रमा वस्तुत: सूर्य की अपेक्षा बहुत छोटा है, परन्तु दूरता में वह सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी के निकटस्थ होने से उसका भी बिम्ब के समान दिख पड़ना स्वाभाविक है। सौरग्रहण तीन प्रकार के होते है:- आंशिक, मध्य, सर्वग्रास, खग्रास एवं वलय ग्रहण।

खगोल शास्त्रियों ने गणित से निश्चित किया है कि 18 वर्ष 18 दिन की समयावधि में 41 सूर्य ग्रहण और 29 चन्द्रग्रहण होते हैं। एक वर्ष में 5 सूर्यग्रहण तथा 2 चन्द्रग्रहण तक हो सकते हैं। किन्तु एक वर्ष में 2 सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिए। हाँ, यदि किसी वर्ष 2 ही ग्रहण हुए तो वो दोनों ही सूर्यग्रहण होंगे। यद्यपि वर्ष भर में 7 ग्रहण तक संभाव्य हैं, तथापि 4 से अधिक ग्रहण बहुत कम ही देखने को मिलते हैं। प्रत्येक ग्रहण 18 वर्ष 11 दिन बीत जाने पर पुन: होता है। किन्तु वह अपने पहले

के स्थान में ही हो यह निश्चित नहीं हैं, क्योंकि सम्पात बिन्दु निरन्तर चल रहे हैं।

साधारणत: सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते हैं, परन्तु सच्चाई यह है कि चन्द्र ग्रहण से कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते हैं। 3 चन्द्रग्रहण पर 4 सूर्यग्रहण का अनुपात आता है। चन्द्र ग्रहणों के अधिक देखे जाने का कारण यह होता है कि वे पृथ्वी के आधे से अधिक भाग में दिखलाई पड़ते हैं, जब कि सूर्यग्रहण पृथ्वी के बहुत बड़े भाग में प्राय: सौ मील से कम चौड़े और दो से तीन हज़ार मील लम्बे भूभाग में दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि मध्यप्रदेश में **खग्रास**, जो सम्पूर्ण सूर्य बिम्ब को ढकने वाला होता है ग्रहण हो तो गुजरात में **खण्ड सूर्य ग्रहण**, जो सूर्य बिम्ब के अंश को ही ढकता है, ही दिखलाई देगा और उत्तर भारत में वह दिखायी ही नहीं देगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

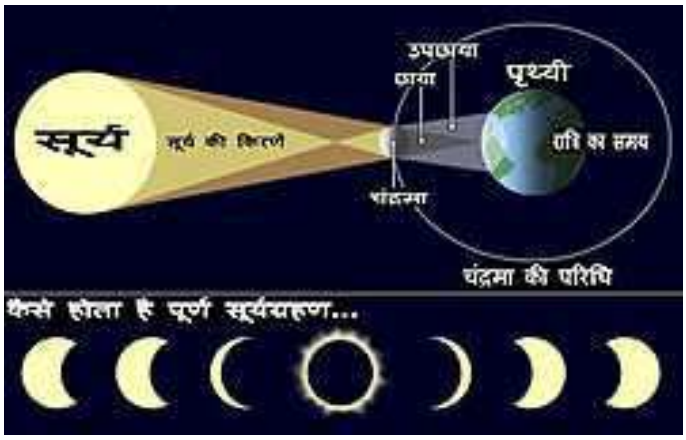

सूर्यग्रहण (Solar Eclipse)

चाहे ग्रहण का कोई आध्यात्मिक महत्त्व हो अथवा न हो किन्तु दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए यह अवसर किसी उत्सव से कम नहीं होता। बड़े-बड़े शोधकर्ता एवं खगोलविद इसकी प्रतीक्षा में पलक बिछाए रहते हैं क्योंकि ग्रहण ही वह समय होता है जब ब्रह्मांड में अनेकों विलक्षण एवं अद्भुत घटनाएं घटित होती हैं जिससे कि वैज्ञानिकों को नये-नये तथ्यों पर कार्य करने का अवसर मिलता है। 1968 में **लार्कयर** नामक वैज्ञानिक ने सूर्यग्रहण के अवसर पर की गई खोज के सहारे वर्ण मंडल में हीलियम गैस की उपस्थिति का पता लगाया था। आइंस्टाइन का यह प्रतिपादन भी सूर्य ग्रहण के अवसर पर ही सही सिद्ध हो सका, जिसमें उन्होंने अन्य पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण से प्रकाश के पड़ने की बात कही थी। चन्द्रग्रहण तो अपने संपूर्ण तत्कालीन प्रकाश क्षेत्र में देखा जा सकता है किन्तु सूर्यग्रहण अधिकतम 10 हज़ार किलोमीटर लम्बे और 250 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में ही देखा जा

सकता है। सम्पूर्ण सूर्यग्रहण की वास्तविक अवधि अधिक से अधिक 11 मिनट ही हो सकती है उससे अधिक नहीं। संसार के समस्त पदार्थों की संरचना सूर्य रश्मियों के माध्यम से ही संभव है। यदि सही प्रकार से सूर्य और उसकी रश्मियों के प्रभावों को समझ लिया जाए तो समस्त धरा पर आश्चर्यजनक परिणाम लाए जा सकते हैं। सूर्य की प्रत्येक रश्मि विशेष अणु का प्रतिनिधित्व करती है और जैसा कि स्पष्ट है, प्रत्येक पदार्थ किसी विशेष परमाणु से ही निर्मित होता है। अब यदि सूर्य की रश्मियों को पूंजीभूत कर एक ही विशेष बिन्दु पर केन्द्रित कर लिया जाए तो पदार्थ परिवर्तन की क्रिया भी संभव हो सकती है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

आचार्य भास्कराचार्य जी ने ग्रहण के आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में इस प्रकार किया है –

बहुफलं जपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदो प्रवदन्ति हि।
सदुपयोगिजने सचमत्कृतिर्ग्रहणमिन्द्विनयो: कथयाम्यत:।।

इस श्लोक में आचार्यवर सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के काल में किए गए जपदान एवं ईश्वरीय भक्ति की बात करते हुए कहते हैं कि ग्रहणकाल में जो मनुष्य उक्तानुसार (जप, तप, दान, ईश्वरीय भक्ति आदि) करता है, उसे बहुफल अर्थात् उस मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति होती है।

यह तो स्पष्ट है कि सूर्य में अद्भुत शक्तियाँ निहित हैं और ग्रहण काल में सूर्य अपनी पूर्ण क्षमता से इन शक्तियों को, इन रश्मियों को विकीर्ण करता है, जिसे ध्यान-मनन के प्रयोगों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु उतना ही जितना हमारे शरीर में क्षमता है। **ग्रहण** का शाब्दिक अर्थ ही लेना, अंगीकार या स्वीकार करना है। हमारे ऋषि मुनियों ने इतना ज्ञान हमारे सम्मुख रखा है जिसका अनुमान लगाना, अर्थात ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करना ही जीवन की सार्थकता है। अपने भीतर के अन्धकार को मिटाने के लिए दैविक आराधना, पूजा अर्चना इत्यादि विशेष पर्वों पर करते रहने का विधान है। जैसा कि ग्रहण काल में उत्तम यौगिक क्रिया, पूजा अनुष्ठान, मन्त्र सिद्धि, तीर्थ स्नान, जप दान आदि का अपना एक विशेष महत्त्व है। इसके प्रमाण शास्त्रों में विद्यमान हैं। बहुत से बुद्धिजीवी लोग कहते हैं कि ग्रहण काल में ध्यान मनन, जाप, उपवास इत्यादि निरा अन्धविश्वास है, इन सब का कोई औचित्य नहीं।

भारतीय वैदिक काल और सूर्य ग्रहण

वैदिक काल से पूर्व भी खगोलीय संरचना पर आधारित कलैन्डर बनाने की आवश्कता अनुभव की गई। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण तथा उनकी पुनरावृत्ति की पूर्व सूचना ईसा से चार हज़ार वर्ष

पूर्व ही उपलब्ध थी। **ऋग्वेद** के अनुसार **अत्रिमुनि** के परिवार के पास यह ज्ञान उपलब्ध था। वेदांग ज्योतिष का महत्त्व हमारे वैदिक पूर्वजों के इस महान् ज्ञान को प्रतिबिम्बित करता है। ग्रह नक्षत्रों की दुनिया की यह घटना भारतीय मनीषियों को अत्यन्त प्राचीन काल से ज्ञात रही है। प्राचीनकाल में ही महर्षियों ने गणना कर दी थी। इस पर धार्मिक, वैदिक, वैचारिक, वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक एवं ज्योतिषीय ग्रन्थों में होता चला आया है। महर्षि अत्रि मुनि ग्रहण के ज्ञान को देने वाले प्रथम आचार्य थे। ऋग्वेदीय प्रकाश काल अर्थात वैदिक काल से ग्रहण पर अध्ययन, मनन और परीक्षण होते चले आये हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह चमत्कारी वर्णन मिलता है कि "हे सूर्य ! असुर राहु ने आप पर आक्रमण कर अन्धकार से जो आपको विद्ध कर दिया, उससे मनुष्य आपके रूप को पूर्ण रूप से देख नहीं पाये और अपने अपने कार्यक्षेत्रों में हतप्रभ से हो गये। तब महर्षि अत्रि ने अपने अर्जित ज्ञान की सामर्थ्य से छाया का दूरीकरण कर सूर्य का उद्धार किया।"

मन्त्र -

स्वर्भानुर्वा आसुर: सूर्यं तमसा विध्यत्तदत्रिरपनुनोद तदत्रिरन्वपश्यत्।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसाऽविध्यत्तं देवा: स्वरसामानो भवन्त्यादित्यस्य स्पृत्यै:।।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा विध्यत्तं देवा न व्यजानंस्ते-
ऽत्रिमुपाधावंस्तस्यात्रिर्भासेन तमोऽपाहन्यत्।
प्राथममपाहन् सा कृष्णाविरभवद्यद्द्वितीयं सा रजता यत्तृतीयं।
सा लोहिती यया वर्णनमभ्यतृणत्सा शुक्लासीत्।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसा विध्यत् स न व्यरोचत्तसत्रिर्भासेन।
तमोऽपाहन्स व्यरोचयत यदेतदभा अभवत्तद्भासस्य भासत्वम्।।
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुर:। अत्रयसस्तमन्वविन्दन्न्ह्यन्ये अशक्नुवन्।।

अगले मन्त्र में यह आता है कि "इन्द्र ने अत्रि की सहायता से ही राहु की सीमा से सूर्य की रक्षा की थी।" इसी प्रकार ग्रहण के निरसण में समर्थ महर्षि अत्रि के तप: संधान से समुद्भुत अलौकिक प्रभावों का वर्णन वेद के अनेक मन्त्रों में प्राप्त होता है। किन्तु महर्षि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्य से इस आलौकिक कार्यों में दक्ष माने गये, इस विषय में दो मत हैं- **प्रथम** परम्परा प्राप्त यह मत है कि, वे इस कार्य में तपस्या के प्रभाव से समर्थ हुए और **दूसरा** यह कि, वे कोई नया यन्त्र बनाकर उसकी सहायता से ग्रहण से ग्रसित हुए सूर्य को दिखलाने में समर्थ हुए। अब आधुनिक युग है, लोगों की सोच भी आधुनिक होती जा रही है इसलिए तपस्या के प्रभाव जैसे किसी मत की अपेक्षा यहाँ हम

दूसरे मत को ही स्वीकार कर लेते हैं हैं। कुल मिलाकर इतना स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल में भारतीय सूर्यग्रहण के विषय में पूर्णत: जानते थे।

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये -

1. किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है।
2. चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है
3. सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून न हो तब तक चन्द्रग्रहण सम्भव नहीं होता।
4. चन्द्रग्रहण में छादक भूभा होता है।
5. जो छादन करने के योग्य हो, उसे छादक बिम्ब कहते है।
6. लम्बन का संस्कार चन्द्रग्रहण में होता है।
7. दर्शान्त काल में सूर्य एवं चन्द्रमा एक ही कक्षा में होते है।

धार्मिक विवेचन

ऋषि-मुनियों ने सूर्य ग्रहण लगने के समय भोजन के लिए मना किया है, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि ग्रहण के समय में कीटाणु बहुलता से फैल जाते हैं। खाद्य वस्तु, जल आदि में सूक्ष्म जीवाणु एकत्रित होकर उसे दूषित कर देते हैं। इसलिए ऋषियों ने पात्रों में कुश डालने को कहा है, ताकि सब कीटाणु कुश में एकत्रित हो जायें और उन्हें ग्रहण के बाद फेंका जा सके। पात्रों में अग्नि डालकर उन्हें पवित्र बनाया जाता है ताकि कीटाणु मर जायें। ग्रहण के बाद स्नान करने का विधान भी इसीलिए बनाया गया ताकि स्नान से शरीर के अंदर ऊष्मा का प्रवाह बढ़े, भीतर-बाहर के कीटाणु नष्ट हो जायें और धुल कर बह जायें।

ग्रहण के दौरान भोजन न करने के विषय में 'जीव विज्ञान' विषय के **प्रोफेसर टारिंस्टन** ने पर्याप्त अनुसंधान करके सिद्ध किया है कि सूर्य-चंद्र ग्रहण के समय मनुष्य के पेट की पाचन-शक्ति कमज़ोर हो जाती है, जिसके कारण इस समय किया गया भोजन अपच, अजीर्ण आदि शिकायतें पैदा कर शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचा सकता है। भारतीय धर्म विज्ञानवेत्ताओं का मानना है कि सूर्य-चंद्र ग्रहण लगने से दस घंटे पूर्व से ही इसका कुप्रभाव शुरू हो जाता है। अंतरिक्षीय प्रदूषण के समय को सूतक काल कहा गया है। इसलिए सूतक काल और ग्रहण के समय में भोजन तथा पेय पदार्थों के

सेवन की मनाही की गई है। चूंकि ग्रहण से हमारी जीवन शक्ति का हास होता है और तुलसी दल में विद्युत शक्ति व प्राण शक्ति सबसे अधिक होती है, इसलिए सौर मंडलीय ग्रहण काल में ग्रहण प्रदूषण को समाप्त करने के लिए भोजन तथा पेय सामग्री में तुलसी के कुछ पत्ते डाल दिए जाते हैं जिसके प्रभाव से न केवल भोज्य पदार्थ बल्कि अन्न, आटा आदि भी प्रदूषण से मुक्त बने रह सकते हैं।

पुराणों की मान्यता के अनुसार राहु चंद्रमा को तथा केतु सूर्य को ग्रसता है। ये दोनों ही छाया की संतान हैं। चंद्रमा और सूर्य की छाया के साथ-साथ चलते हैं। चंद्र ग्रहण के समय **कफ** की प्रधानता बढ़ती है और मन की शक्ति क्षीण होती है, जबकि सूर्य ग्रहण के समय जठराग्नि, नेत्र तथा पित्त की शक्ति कमज़ोर पड़ती है। गर्भवती स्त्री को सूर्य-चंद्र ग्रहण नहीं देखने चाहिए, क्योंकि उसके दुष्प्रभाव से शिशु अंगहीन होकर विकलांग बन सकता है, गर्भपात की संभावना बढ़ जाती है। इसके लिए गर्भवती के उदर भाग में गोबर और तुलसी का लेप लगा दिया जाता है, जिससे कि राहु-केतु उसका स्पर्श न करें। ग्रहण के दौरान गर्भवती महिला को कुछ भी कैंची या चाकू से काटने को मना किया जाता है और किसी वस्त्रादि को सिलने से रोका जाता है। क्योंकि ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से शिशु के अंग या तो कट जाते हैं या फिर सिल जाते हैं। ग्रहण लगने के पूर्व नदी या घर में उपलब्ध जल से स्नान करके भगवान का पूजन, यज्ञ, जप करना चाहिए। भजन-कीर्तन करके ग्रहण के समय का सदुपयोग करें। ग्रहण के दौरान कोई कार्य न करें। ग्रहण के समय में मंत्रों का जाप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। ग्रहण की अवधि में तेल लगाना, भोजन करना, जल पीना, मल-मूत्र त्याग करना, केश विन्यास बनाना, रति-क्रीड़ा करना, मंजन करना वर्जित किए गए हैं। कुछ लोग ग्रहण के दौरान भी स्नान करते हैं। ग्रहण समाप्त हो जाने पर स्नान करके ब्राह्मण को दान देने का विधान है। कहीं-कहीं वस्त्र, बर्तन धोने का भी नियम है। पुराना पानी, अन्न नष्ट कर नया भोजन पकाया जाता है और ताजा पानी भरकर पीया जाता है।

सूर्यग्रहण में ग्रहण से चार प्रहर पूर्व और चंद्र ग्रहण में तीन प्रहर पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये। बूढे बालक और रोगी एक प्रहर पूर्व तक खा सकते हैं। ग्रहण पूरा होने पर सूर्य या चंद्र, जिसका ग्रहण हो, ग्रहण के दिन पत्ते, तिनके, लकड़ी और फूल नहीं तोड़ना चाहिए। बाल तथा वस्त्र नहीं निचोड़ने चाहिये व दंत धावन नहीं करना चाहिये। ग्रहण के समय ताला खोलना, सोना, मल मूत्र का त्याग करना, मैथुन करना और भोजन करना- ये सब कार्य वर्जित हैं। ग्रहण के समय मन से सत्पात्र को उद्देश्य करके जल में जल डाल देना चाहिए। ऐसा करने से देने वाले को उसका फल प्राप्त होता है और लेने वाले को उसका दोष भी नहीं लगता। ग्रहण के समय गायों को घास, पक्षियों को अन्न, ज़रुरतमंदों को वस्त्र दान से अनेक गुना पुण्य प्राप्त होता है। 'देवी भागवत' में आता है कि भूकंप एवं

ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी को खोदना नहीं चाहिये।

आधुनिक विज्ञान द्वारा विश्लेषण

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से जब सूर्य व पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा आ जाता है तो चन्द्रमा के पीछे सूर्य का बिम्ब कुछ समय के लिए ढ़क जाता है, उसी घटना को 'सूर्यग्रहण' कहा जाता है। पृथ्वी सूरज की परिक्रमा करती है और चन्द्रमा पृथ्वी की। कभी-कभी चन्द्रमा, सूर्य और धरती के बीच आ जाता है। फिर वह सूर्य की आंशिक या समस्त प्रकाश को रोक लेता है जिससे धरती पर छाया फैल जाता है। इस घटना को 'सूर्य ग्रहण' कहा जाता है। यह घटना प्रत्येक अमावस्या को ही होती है। अक्सर चन्द्रमा, सूर्य के सिर्फ़ कुछ हिस्से को ही ढ़कता है। यह स्थिति खण्ड-ग्रहण कहलाती है। कभी-कभी ही ऐसा होता है कि चन्द्रमा, सूर्य को पूरी तरह ढँक लेता है। इसे पूर्ण-ग्रहण कहते हैं। पूर्ण-ग्रहण धरती के बहुत कम क्षेत्र में ही देखा जा सकता है। ज़्यादा से ज़्यादा दो सौ पचास (250) किलोमीटर के सम्पर्क में। इस क्षेत्र के बाहर केवल खंड-ग्रहण दिखाई देता है। पूर्ण-ग्रहण के समय चन्द्रमा को सूरज के सामने से गुजरने में दो घण्टे लगते हैं। चन्द्रमा सूरज को पूरी तरह से, ज़्यादा से ज़्यादा, सात मिनट तक ढँकता है। इन कुछ क्षणों के लिए आसमान में अंधेरा हो जाता है, या यूँ कहें कि दिन में रात हो जाती है।चन्द्रमा द्वारा सूर्य के बिम्ब के पूरे या कम भाग के ढ़के जाने की वजह से सूर्य ग्रहण तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें पूर्ण सूर्य ग्रहण, आंशिक सूर्य ग्रहण व वलयाकार सूर्य ग्रहण कहते हैं।

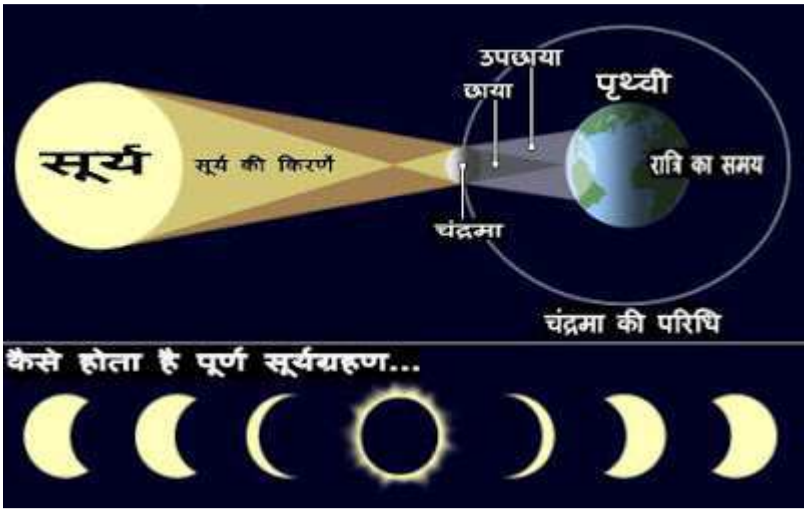

1. पूर्ण सूर्यग्रहण -

पूर्ण सूर्य ग्रहण उस समय होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी के काफ़ी पास रहते हुए पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है और चन्द्रमा पूरी तरह से पृथ्वी को अपने छाया क्षेत्र में ले लेता है। इसके फलस्वरूप सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक पहुँच नहीं पाता है और पृथ्वी पर अंधकार जैसी स्थिति

उत्पन्न हो जाती है तब पृथ्वी पर पूरा सूर्य दिखाई नहीं देता। इस प्रकार बनने वाला ग्रहण पूर्ण सूर्य ग्रहण कहलाता है।

2. आंशिक सूर्य ग्रहण -

आंशिक सूर्यग्रहण में जब चन्द्रमा सूर्य व पृथ्वी के बीच में इस प्रकार आए कि सूर्य का कुछ ही भाग पृथ्वी से दिखाई नहीं देता है अर्थात चन्दमा, सूर्य के केवल कुछ भाग को ही अपनी छाया में ले पाता है। इससे सूर्य का कुछ भाग ग्रहण ग्रास में तथा कुछ भाग ग्रहण से अप्रभावित रहता है तो पृथ्वी के उस भाग विशेष में लगा ग्रहण आंशिक सूर्य ग्रहण कहलाता है।

3. वलयाकार सूर्य ग्रहण -

वलयाकार सूर्य ग्रहण में जब चन्द्रमा पृथ्वी के काफ़ी दूर रहते हुए पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है अर्थात चन्द्र सूर्य को इस प्रकार से ढकता है, कि सूर्य का केवल मध्य भाग ही छाया क्षेत्र में आता है और पृथ्वी से देखने पर चन्द्रमा द्वारा सूर्य पूरी तरह ढका दिखाई नहीं देता बल्कि सूर्य के बाहर का क्षेत्र प्रकाशित होने के कारण कंगन या वलय के रूप में चमकता दिखाई देता है। कंगन आकार में बने सूर्यग्रहण को ही वलयाकार सूर्य ग्रहण कहलाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

चाहें ग्रहण का कोई आध्यात्मिक महत्त्व हो अथवा न हो किन्तु दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए यह अवसर किसी उत्सव से कम नहीं होता। क्यों कि ग्रहण ही वह समय होता है जब ब्रह्माण्ड में अनेकों विलक्षण एवं अद्भुत घटनाएं घटित होतीं हैं जिससे कि वैज्ञानिकों को नये नये तथ्यों पर कार्य करने का अवसर मिलता है। 1968 में लार्कयर नामक वैज्ञानिक नें सूर्य ग्रहण के अवसर पर की गई खोज के सहारे वर्ण मंडल में हीलियम गैस की उपस्थिति का पता लगाया था। आईन्स्टीन का यह प्रतिपादन भी सूर्य ग्रहण के अवसर पर ही सही सिद्ध हो सका, जिसमें उन्होंने अन्य पिण्डों के गुरुत्वकर्षण से प्रकाश के पडने की बात कही थी। चन्द्रग्रहण तो अपने सम्पूर्ण तत्कालीन प्रकाश क्षेत्र में देखा जा सकता है किन्तु सूर्यग्रहण अधिकतम 10 हजार किलोमीटर लम्बे और 250 किलोमीटर चौडे क्षेत्र में ही देखा जा सकता है। सम्पूर्ण सूर्यग्रहण की वास्तविक अवधि अधिक से अधिक 11 मिनट ही हो सकती है उससे अधिक नहीं। संसार के समस्त पदार्थों की संरचना सूर्य रश्मियों के माध्यम से ही संभव है। यदि सही प्रकार से सूर्य और उसकी रश्मियों के प्रभावों को समझ लिया जाए तो समस्त धरा पर आश्चर्यजनक परिणाम लाए जा सकते हैं। सूर्य की प्रत्येक रश्मि विशेष अणु का प्रतिनिधित्व करती है और जैसा कि स्पष्ट है, प्रत्येक पदार्थ किसी विशेष परमाणु से ही निर्मित होता है। अब यदि सूर्य की रश्मियों को पूंजीभूत कर एक ही विशेष बिन्दु पर केन्द्रित कर लिया जाए तो पदार्थ परिवर्तन की क्रिया भी संभव हो सकती है।

चंद्रग्रहण (lunar eclipse)

चंद्रग्रहण उस खगोलीय स्थिति को कहते है जब चंद्रमा पृथ्वी के ठीक पीछे उसकी प्रच्छाया में आ जाता है। ऐसा तभी हो सकता है जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा इस क्रम में लगभग एक सीधी रेखा में अवस्थित हों। इस ज्यामितीय प्रतिबंध के कारण चंद्रग्रहण केवल पूर्णिमा को घटित हो सकता है। चंद्रग्रहण का प्रकार एवं अवधि चंद्र आसंधियों के सापेक्ष चंद्रमा की स्थिति पर निर्भर करते हैं। किसी सूर्यग्रहण के विपरीत, जो कि पृथ्वी के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग से ही दिख पाता है, चंद्रग्रहण को पृथ्वी के रात्रि पक्ष के किसी भी भाग से देखा जा सकता है। जहाँ चंद्रमा की छाया की लघुता के कारण सूर्यग्रहण किसी भी स्थान से केवल कुछ मिनटों तक ही दिखता है, वहीं चंद्रग्रहण की अवधि कुछ घंटों की होती है। इसके अतिरिक्त चंद्रग्रहण को, सूर्यग्रहण के विपरीत, आँखों के लिए बिना किसी विशेष सुरक्षा के देखा जा सकता है, क्योंकि चंद्रग्रहण की उज्ज्वलता पूर्ण चंद्र से भी कम होती है।

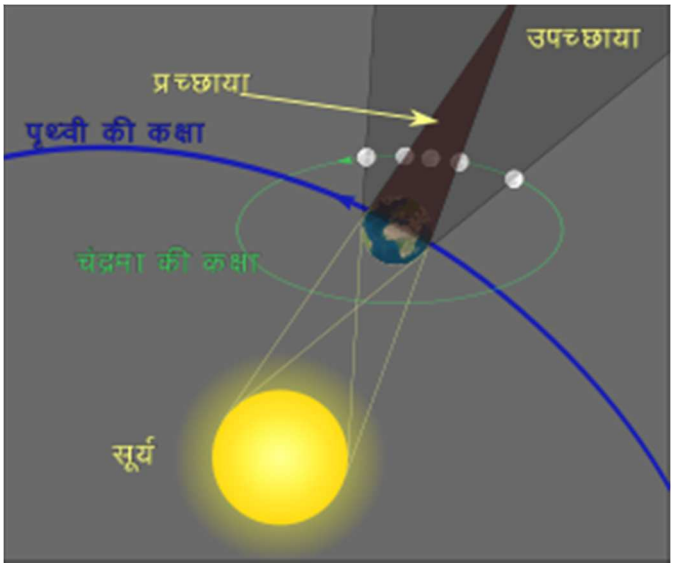

चन्द्र ग्रहण का प्रकार एवं अवधि चन्द्र आसंधियों के सापेक्ष चन्द्रमा की स्थिति पर निर्भर करते हैं। चन्द्र ग्रहण दो प्रकार का नज़र आता है -

1. पूरा चन्द्रमा ढक जाने पर 'सर्वग्रास चन्द्रग्रहण'
2. आंशिक रूप से ढक जाने पर 'खण्डग्रास (उपच्छाया) चन्द्रग्रहण'

पृथ्वी की छाया सूर्य से 6 राशि के अन्तर पर भ्रमण करती है तथा पूर्णमासी को चन्द्रमा की छाया सूर्य

से 6 राशि के अन्तर होते हुए जिस पूर्णमासी को सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों के अंश, कला एवं विकला पृथ्वी के समान होते हैं अर्थात एक सीध में होते हैं, उसी पूर्णमासी को चन्द्र ग्रहण लगता है। विश्व में किसी सूर्य ग्रहण के विपरीत, जो कि पृथ्वी के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग से ही दिख पाता है, चन्द्र ग्रहण को पृथ्वी के रात्रि पक्ष के किसी भी भाग से देखा जा सकता है। जहाँ चन्द्रमा की छाया की लघुता के कारण सूर्य ग्रहण किसी भी स्थान से केवल कुछ मिनटों तक ही दिखता है, वहीं चन्द्र ग्रहण की अवधि कुछ घंटो की होती है। इसके अतिरिक्त चन्द्र ग्रहण को सूर्य ग्रहण के विपरीत किसी विशेष सुरक्षा उपकरण के बिना नंगी आँखों से भी देखा जा सकता है, क्योंकि चन्द्र ग्रहण की उज्ज्वलता पूर्ण चन्द्र से भी कम होती है।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. पुराणों की मान्यता के अनुसार सूर्य का ग्रास.....करता है।
2. पूर्ण चन्द्र ढ़क जाने के पश्चात् .....ग्रहण होता है।
3. पृथ्वी और सूर्य के बीच चन्द्रमा के आने से ..... ग्रहण होता है।
4. पृथ्वी की छाया सूर्य से …….. के अन्तर पर भ्रमण करती है।
5. जब चन्द्रमा सूर्य व पृथ्वी के बीच में इस प्रकार आए कि सूर्य का कुछ ही भाग पृथ्वी से दिखाई नहीं देता है, उसे ..... ग्रहण कहते है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सामान्यतया किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है। जब कोई खगोलीय पिण्ड किसी अन्य पिण्ड के पीछे आ जाता है या किसी खगोलीय पिण्ड का प्रकाश अन्य पिण्ड के द्वारा बाधित होता है, तब ग्रहण होता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन मुख्यतया ग्रहण के दो भेद है – सूर्यग्रहण एवं दूसरा चन्द्रग्रहण। चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है और पृथ्वी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है। पृथ्वी स्वयं परप्रकाश एवं ईषत् दीर्घ गोलाकार है, इससे इसका जो भाग सूर्यरश्मि से प्रकाशित होता है, उसके विपरीत भाग में सूच्याकार (सूची सी आकृति) इस भूच्छाया में

जब चन्द्रमा प्रवेश करता है, तब वह क्रमश: अन्धकार से आच्छादित होने लगता है। इसी

को 'चन्द्रग्रहण' कहते है। ऐसी घटना केवल पूर्णिमा को ही होती है इस कारण पूर्णिमा को ही चन्द्रग्रहण हो सकता है।

चन्द्रमा यदि सूर्य और पृथ्वी के मध्यवर्ती हो तो सूर्यरश्मि चन्द्र से अवरूद्ध होती है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है। सूर्य और चन्द्रमा के संगमकाल में अर्थात् अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना होती है। यदि चन्द्रकक्षा और भूकक्षा समतल स्थित होती तो प्रति पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण एवं प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण होता। क्योंकि उस काल में सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सूत्र में रहने से चन्द्र द्वारा सूर्यरश्मि बाधित वा भूच्छाया द्वारा चन्द्रबिम्ब छादित होता। किन्तु चन्द्रकक्षा और पृथ्वी कक्षा समतलस्थ नहीं है। इन दो कक्षाओं के दो बिन्दुमात्र में तिर्यग्भाव से सन्धि होती है। जिन राहु, केतु को चन्द्रपात कहते हैं, इसी पातस्थान में या तदासन्न में चन्द्रमा जब आता है, तब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी समतलस्थ होती है। अतएव प्रत्येक पूर्णमासी वा अमावस्या को चन्द्रमा अपने पातस्थ वा निकटस्थ न होने से चन्द्र या सूर्यग्रहण नहीं होता।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहण – गृह्णाति इति ग्रहणम्। ग्रहण एक आकाशीय घटना है, जो दो बिम्बों के कारण निश्चित कालावधि में घटित होता है। मुख्यतया दो ग्रहण होते है – चन्द्रग्रण एवं सूर्यग्रहण।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

शर – शर का अर्थ होता है दूरी। ग्रह से बिम्ब की दूरी। गणित ज्योतिष में इसका व्यापक महत्व होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को अमावस्या कहते है। इसी तिथि को शराभाव में सूर्यग्रहण संभव होता है।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा संज्ञक कहा गया है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही शराभाव में होता है।

उपराग – उपराग ग्रहण का पर्याय है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 7. सत्य

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. केतु 2. पूर्णचन्द्रग्रहण 3. सूर्यग्रहण 4. 6 राशि 5. आंशिक सूर्यग्रहण

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - कमलाकर भट्ट, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी, पर्वसम्भवाधिकार

(ख) ऋग्वेद – ५/४०/५/९

(ग) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी,

मध्यमाधिकार -३

(घ) वृहद्दैवज्ञरंजन – प्र. ३३ श्लोक ३

(ड.) निर्णयसिन्धु - प्र. परि.- ग्रहण निर्णय।

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

वृहद्दैवज्ञरंजन – मूल लेखक:- रामदीन दैवज्ञ, टिकाकार – मुरलीधर चतुर्वेदी

निर्णयसिन्धु – कमलाकर

मुहूर्त्तचिन्तामणि – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – आचार्य कमलाकर भट्ट

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चन्द्रग्रहण का वर्णन कीजिये।
2. सूर्यग्रहण का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. चन्द्र एवं सूर्यग्रहण सम्भवासम्भव को अपने शब्दों में लिखिये।
4. ग्रहण में शुभाशुभ कृत्य का उल्लेख कीजिये।
5. ग्रहण में धार्मिक तत्वों का विवेचन कीजिये।

इकाई - 3 भूभा, पात (राहु) एवं ग्रास विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भूभा परिचय
3.3.1 पात (राहु) विचार
3.3.2 ग्रास विचार
3.4 विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित ग्रास विचार
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्यसामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – भूभा पात (राहु) एवं ग्रास विचार। इससे पूर्व आपने सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहण से सम्बन्धित भूभा पात (राहु) एवं ग्रास का अध्ययन करने जा रहे है।

सामान्यतया भूभा '**पृथ्वी की छाया**' को कहते है, और पात राहुसंज्ञक होता है। ग्रास ग्रहण का अभिन्न अंग है, जिसके बिना ग्रहण को समझा नहीं जा सकता।

आइए इस इकाई में अब हम लोग भूभा पात (राहु) एवं ग्रास के बारे में जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भूभा को समझ लेंगे।
- पात को परिभाषित कर सकेंगे।
- राहु को बता सकेंगे।
- ग्रहण में ग्रास के महत्व को समझा सकेंगे ।
- भूभा, पात एवं ग्रास की गणितीय विधा को जान लेंगे।

3.3 भूभा परिचय

'भू' अर्थात् पृथ्वी तथा 'भा' नाम छाया इस प्रकार पृथ्वी की छाया को 'भूभा' कहते है। ग्रहण में इसका ज्ञान परमावश्यक होता है। भूभा, पात एवं ग्रास का सम्बन्ध ग्रहण से है। सर्वप्रथम भूभा को यहाँ समझते है -

रविकर्ण को भूव्यास से गुणाकर भूव्यासोन रविव्यास से (भाग देने से भूकेन्द्र से भूछाया का दीर्घत्व (लम्बाई) होता है। उस दीर्घत्व में से चन्द्रकर्ण को घटाकर जो शेष रहता है उसको भूव्यास से गुणाकर दीर्घत्व से भाग देने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। उसको त्रिज्या से गुणाकर चन्द्रकर्ण से भाग देने से 'भूभामान' कला होती है। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वी की छाया (भूभा) में होकर गुजरता है, तब चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी की वह छाया

चन्द्रमण्डल को ढक लेती है, जिससे चन्द्रमा में काला मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही 'चन्द्रग्रहण' कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच से गुजरने वाली पृथ्वी की बायीं ओर आधे भाग पर रहने वाले मनुष्यों को चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है।

सूर्यबिम्ब के बहुत बड़ा होने तथा पृथ्वी के छोटे होने के कारण पृथ्वी की छाया हमारी छाया की भाँति न होकर काले ठोस शंकु के समान सूच्याकार होती है और चन्द्र कक्षा को पारकर बहुत दूर तक निकल जाती है। अर्थात् भूभा (पृथ्वी की छाया) सूच्याकार होती है। इसका वर्णन आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में इस प्रकार किया है –

भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुत्वात्पृथिव्या: प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शक्तिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता।।

आकाश में फैली हुई पृथ्वी की यह छाया (भूभा) लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी पर निर्भर होती है, अत: यह छाया घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए यह छाया कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शंकु सदृश इस प्रच्छाया के साथ ही शंकु के ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने भ्रमण पथ पर चलते हुए जब पृथ्वी की उपच्छाया में पहुँचते हैं, तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छाया के समीप आ जाते हैं, त्यों ही उन पर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब वह उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छाया के भीतर आ जाता है, तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णमास चन्द्रग्रहण लग जाता है।

रात्रि में दिखलायी देने वाला अन्धकार पृथ्वी की छाया है। यह छाया जब चन्द्रमा पर पड़ जाती है, तब चन्द्रमा पर ग्रहण लगा कहा जाता है। चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह, अत: वे पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी जैसे सूर्य की परिक्रमा करती है, अत: पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनों के भ्रमण क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमा को पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच हो जाती है। उसकी छाया शंकुवत् होती हैं। जब वह छाया चन्द्रमा पर पड़ जाती है अथवा कहा जाय कि चन्द्रमा अपनी गति के कारण पृथ्वी की छाया शंकु में प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाता है और कभी उसका कुछ अंश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्र के ढकने की अवस्था में सर्वग्रास चन्द्रग्रहण और अंशत: ढकने पर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी और चन्द्रमा के मार्ग एक सतह में नहीं है। वे एक दूसरे के साथ ५ अंश का कोण बनाते हैं,जिससे ग्रहण का अवसर प्रतिपूर्णिमान्त को नहीं होता है। एक सतह में दोनों बिम्बों का यदि भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावस्या को चन्द्र-सूर्यग्रहण होते। यहाँ ध्यातव्य है कि चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी की कक्षा से ५८ अंश के कोण पर झुकी हुई है और यह भी है

कि चन्द्रमा की पातरेखा चल है। पातरेखा की परिक्रमा का समय प्राय: १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधि के बाद ग्रहणों के क्रम की पुनरावृत्ति होती है।

भूभार्द्ध ज्ञान -

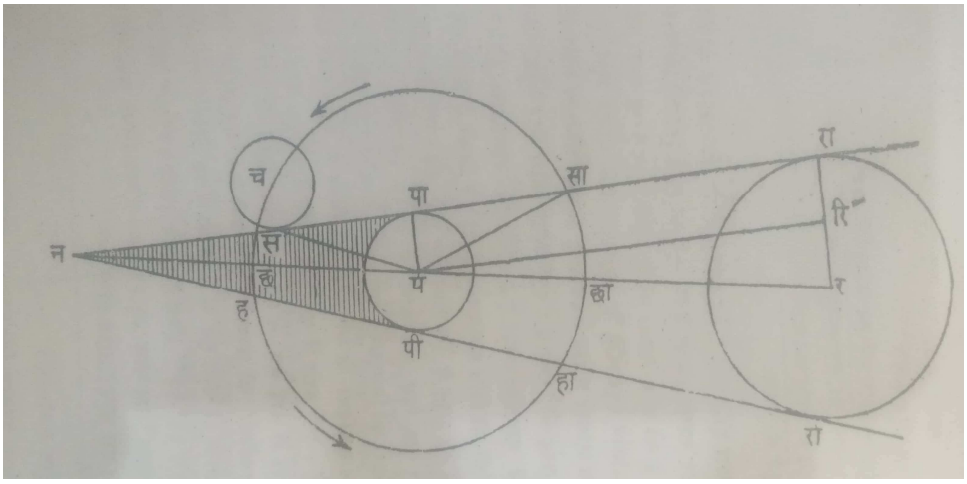

माना कि उपर के क्षेत्र में च चन्द्रमा है जो पृथ्वी की छाया में स बिन्दु पर प्रवेश कर रहा है, इसलिए यह रा पा स्पर्श रेखा को छू रहा है क्योंकि सूर्य और पृथ्वी की सामान्य स्पर्शरेखाओं रा पा और री पी से ही पृथ्वी की छाया बनती है, जिसकी नोक न है। सूर्य और पृथ्वी की त्रिज्यायें र रा और प पा स्पर्शरेखा रा पा के समकोण पर है। प रि रेखा पा रा के समानान्तर है।

पहले यह जानना आवश्यक है कि कोण स प छ किसके समान है क्योंकि यह कोण पृथ्वी के केन्द्र पर छाया की उस त्रिज्या से बनता है जो चन्द्रमा की कक्षा में है इसलिए इससे चन्द्रकक्षा में भूभा के आकार का पता चलेगा।

$$< \text{रि प र} = \frac{\text{रि र}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{रा रि}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{पा प}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र}}{\text{प र}} - \frac{\text{पा प}}{\text{प र}}$$

= सूर्य की त्रिज्या – सूर्य का लम्बन = त्र – ल

त्र और ल से सूर्य की त्रिज्या और लम्बन सूचित किये गये है।

< स प छ = < प स पा - < प न पा

= < प स पा - < रि प र

क्योंकि प रि और न पा रा समान्तर है और न प र दोनों को काटता है।

यहाँ < प स पा = प पा = चन्द्रमा का लम्बन = ला

ला को चन्द्रमा का परम लम्बन या क्षितिज लम्बन मान लेने में बहुत अन्तर नहीं पड़ेगा। इसलिए –

< स प छ = ला – (त्र – ल) = ल + ला – त्र

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा के क्षितिज लम्बनों के योगफल से सूर्य की त्रिज्या का कोणात्मक मान यदि घटा दिया जाय तो जो कुछ शेष रहता है उसी के समान चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया की त्रिज्या का कोणात्मक मान होता है। इसी को भूभार्द्ध कहते है।

सूर्यसिद्धान्त में कथित भूभा के व्यास का परिमाण –

शशाङ्ककक्ष्यागुणितो भाजितो वाऽर्ककक्ष्यया।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्ष्यायां तिथ्याप्तो मानलिप्तिका:।।
स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्यासगुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची महीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरम्।।
मध्येन्दुव्यासगुणितं मध्यार्कव्यासभाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यास्तु तमो लिप्ताश्च पूर्ववत्।।

अर्थात् चन्द्रमा की स्पष्ट गति को पृथ्वी के व्यास से गुणा करके गुणनफल को चन्द्रमा की मध्यम गति से भाग देने पर जो लब्धि आती है, उसे सूची कहते है। सूर्य के स्फुट व्यास से पृथ्वी के व्यास को घटाकर शेष को चन्द्रमा के मध्यम व्यास से गुणा करके और गुणनफल को सूर्य के मध्यम व्यास से भाग दे दो। लब्धि को सूची से घटा देने पर जो शेष आयेगा वह चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का व्यास योजनों में आ जायेगा। चूँकि चन्द्रकक्षा का १५ योजन एक कला के समान होता है। अत: इसको १५ से भाग देने पर भूभा का व्यास कलाओं में ज्ञात हो जायेगा।

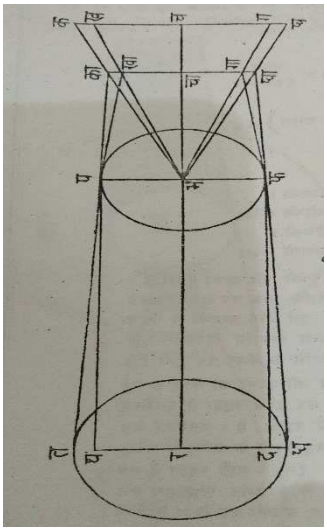

प्रस्तुत क्षेत्र में चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियों को का और रा अक्षरों से सूचित किया जायेगा। यदि चन्द्रमा और सूर्य के महायुगीन भगणों को महायुगीन सावन दिनों से भाग दे दिया जाय और

लब्धि की कलायें बनायी जायें तो चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक गतियाँ क्रमानुसार ७९० कला ५६ विकला और ५९. १३६२ होती है। पृथ्वी का व्यास १६०० योजन माना गया है (योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतो दशगुणात् पदं भूपरिधि र्भवेत्।।) इन मानों के आधार पर उपर्युक्त श्लोक को इस प्रकार समझा जा सकता है –

$$\text{सूची} = \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०.५६}$$

$$\text{सूर्य का स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९.१३६२}$$

चन्द्रकक्षा में भूभा का योजनात्मक व्यास

$$= \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०.५६} - \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९.१३६२} - १६०० \times \frac{४८०}{६५००}$$

यदि इसका १५ से भाग दे दिया जाय तो चन्द्रकक्षा में भूछाया का कलात्मक व्यास

$$= १०६\frac{२}{३} \times \frac{\text{चा}}{७९०.५६} - ३२ \times \frac{\text{रा}}{५९.१३६२} + ७.८८$$

जिस समय चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियाँ इनकी मध्यम गतियों के समान होंगी उस समय $\frac{\text{चा}}{७९०.५६}$ और $\frac{\text{रा}}{५९.१३६२}$ एक के समान होंगे। ऐसी दशा में भूभा का कलात्मक व्यास

$१०६.६७ - ३२ + ७.८८ = ८२.५५।$

भूभार्द्ध वाली क्षेत्र की सहायता से पूर्व में कहा जा चुका है कि भूभार्द्ध अर्थात् चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का अर्धव्यास ४१ कला ५७ विकला होता है, जिससे पृथ्वी की छाया का व्यास ८४ कला के लगभग आता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सूर्यसिद्धान्त के नियम से पृथ्वी की छाया का व्यास जितना आता है वह नवीन रीति से निकाले हुए व्यास के प्राय: समान ही होता है। यद्यपि उसके उपकरण स्थूल और अशुद्ध है। भारतीय रीति से भूभा के व्यास का जो परिमाण आता है वह तीन पदों १०६.६७,३२ और ७.८८ के योग वियोग से सिद्ध होता है।

सिद्धान्तशिरामणि में कथित भूभा व्यास –

मूल श्लोक:-

बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तु संख्यानीन्दो: खनागाम्बुधि योजनानि।

भूव्यासहीनं रविबिम्बमिन्दुकर्णाहतं भास्करकर्णभक्तम्।।

भूविस्तृतिर्लब्धफलेन हीना भवेत् कुभाविस्तृतिरिन्दुमार्गे।।

अर्थात् सूर्यबिम्ब का व्यास ६५२२ योजन तथा चन्द्रबिम्ब का व्यास मान ४८० योजन होता है। भूव्यास को रवि बिम्ब व्यास में से घटाकर चन्द्र के कर्ण से गुणा करके सूर्य कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल को भूव्यास में से घटाने से चन्द्रमार्ग (चन्द्रस्थान) पर कुभा (भूभा) का विस्तार (व्यास) होता है। ये योजनात्मक बिम्ब हैं। कुभा के मान को राहु का योजनात्मक मान कहा है।

इसकी उपपत्ति बतलाते हुए आचार्य का कथन है कि जिस दिन सूर्य की स्फुट गति मध्यगति तुल्य हो उस दिन सूर्योदय काल पर चक्रकला व्यासार्ध तुल्य दो यष्टि केदृ तथा दृस्प के मूल के मिलान बिन्दु दृ से ग्रह के वेध से जो केस्प का मान होता है वह रविबिम्ब कला होता है।

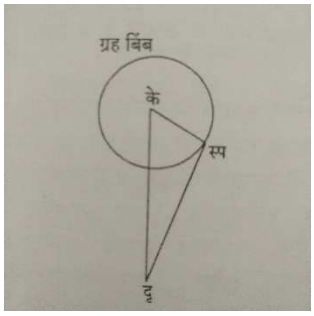

चित्र में के = ग्रहबिम्ब का केन्द्र है। दृ = दृष्टि स्थान है। दृके = दृष्टिसूत्र है। दृष्टि स्थान दृ से ग्रह बिम्ब की स्पर्श रेखा = दृस्प है। के स्प= ग्रह बिम्ब व्यासार्ध है। ग्रह बिम्ब व्यासार्ध के सम्मुख दृष्टि स्थान गत कोण = स्फुट बिम्बार्धकला < दृस्प के = ९०°। उच्च स्थान में ग्रहबिम्ब छोटा तथा नीच स्थान में बड़ा होता है तथा वहाँ गति भी क्रमश: छोटी तथा अधिक होती है। अत: बिम्बों की निष्पत्ति गति की निष्पत्ति के तुल्य होती है। रविबम्ब कला ३२।३१।३३ कलादि होता है तथा पूर्णिमा को चन्द्रमा की मध्यमगति स्पष्ट ३२।०।९ कला प्राप्त होती है। बिम्ब कला को योजनात्मक करने के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना मान का बिम्ब होता है तो पठित कर्ण योजन में कितना होगा? इस प्रकार करने से ६५२२ योजन प्राप्त होता है, यह सूर्यबिम्ब मान है तथा चन्द्रबिम्ब मान ४८० तुल्य प्राप्त होता है। सूर्य के व्यास से भूमि के व्यास अल्प होने पर ही उसकी छाया सूचिकार होगी तथा दूर तक चन्द्रमा कक्षा से आगे तक जाती है। रविकर्ण में रविभूमि व्यासान्तर योजन ४९४१ प्राप्त होते हैं तो चन्द्र कर्ण में कितने होंगे? फल भूव्यास के अपचय योजन होते है। इसमें से भूव्यास घटाने से चन्द्र कक्षा में भूभा का व्यास होता है।

3.3.1 पात (राहु) विचार –

गणित ज्योतिष के अन्तर्गत पात के सन्दर्भ में 'गोल' में यह कथन है कि –

नाडिका क्रान्तिवृत्तेत्थ योगौतु यौ।
गोलसन्धी तथा क्रान्ति पातो स्मृतौ।।

अपि च –

एवं चन्द्रस्य यौ पातौ तत्राद्यो राहुसंज्ञक:।
द्वितीय: केतु संज्ञस्तौ ग्राहकौ चन्द्रसूर्ययो:।।

अर्थात् नाड़ी-क्रान्तिवृत्त दो स्थानों पर मिलते हैं जिन्हें पात, सम्पात तथा गोलसन्धि के नामों से जानते हैं।

चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु (पात) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं।

चन्द्रविमण्डलार्धमुत्तरदिगस्थपात: राहुसंज्ञकस्तथा दक्षिणदिगस्थपात: केतु: संज्ञकश्च।।

पर्वान्त काल में सूर्य, चन्द्रमा और पात को स्पष्ट करने की रीति –

गतैष्यपर्वनाडीनां स्ववफलेनोन संयुतौ।
समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा।।

जिस समय के सूर्य और चन्द्रमा स्पष्ट किये गये हों उस समय के पर्वान्त काल अर्थात् पूर्णमासी या अमावस्या के अन्त काल का जो अन्तर हो उतने समय की सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियाँ जानकर उनको सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट भोगांशों से क्रमश: घटाने या जोड़ने से जो आवें उन्हीं को पर्वान्तकालिक स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्र समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल के पीछे हो तो घटाना चाहिये और पहले हो तो जोड़ना चाहिये।

परन्तु पात (राहु) का स्पष्ट स्थान जानने के लिए इसकी विलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल से पीछे हो तो उतने समय की पात की गति बढ़ानी चाहिये और पहले हो तो घटानी चाहिये क्योंकि पात की गति उल्टी होती है।

सूर्यसिद्धान्त में पात के नाम से एक 'पाताधिकार' का ही उल्लेख किया गया है। वहाँ मुख्यत: वैधृति और व्यतिपात नाम के पात की चर्चा की गयी है। पातों के स्वरूप और स्वभाव का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

तुल्यांशुजालसम्पर्कात् तयोस्तु प्रवाहाहत:।
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते।।
विनाशयति पातोऽस्मिन् लोकानामसकृद्यत:।
व्यतीपात: प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृत:।।
स कृष्णो दारूणवपुर्लोहिताक्षो महोदर:।

सर्वानिष्टकरो रौद्रो भूयो भूय: प्रजायते।।

अर्थात् क्रान्तिसाम्य कालिक सूर्य और चन्द्र के किरणों के सम्पर्क से तथा परस्पर दृष्टियों के क्रोध से उत्पन्न अग्नि, जो प्रवहवायु के वेग से आहत होकर प्रज्वलित होती है, वह लोक के लिए अशुभफलदायक होती है। जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती है तब यह पातरूप अग्नि बार-बार लोक के मंगलों का नाश करती है इसलिए यह व्यतीपातसंज्ञक पात प्रसिद्ध है। यही व्यतीपातसंज्ञक अग्नि नाम भेद से वैधृतिपात संज्ञक होती है।

यह पात कृष्णवर्ण वाला, कठोर एवं भयंकर शरीरवाला, लाल नेत्रों से युक्त, विशाल उदरवाला, सबका अनिष्ट करने वाला भयानक वह (अग्निपुरूप रूपी पात) बार-बार उत्पन्न होता है। प्राय: एक मास में दो बार पात की स्थिति आती है। यह उपर वर्णित पात (राहु) से भिन्न है। नीचे दिए गए चित्र में छ प क्रान्विृत्त, च प चन्द्र कक्षा, प चन्द्रमा का पात, छ भूच्छाया (भूभा) का केन्द्र, च स्पर्श काल के समय चन्द्र का केन्द्र, चा सम्मीलन काल के समय चन्द्रमा के केन्द्र, चि उन्मीलन के समय चन्द्रकेन्द्र, ची मोक्षकाल के समय चन्द्रकेन्द्र और फ ग्रहण के मध्यकाल के समय चन्द्र केन्द्र हैं।

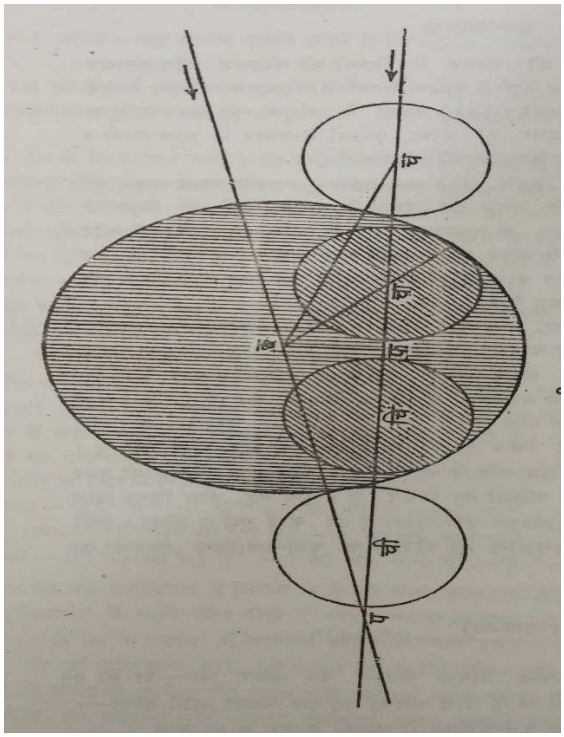

3.3.2 ग्रास विचार –

सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रास मान –

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयो:।
योगार्धात् प्रोज्झय यच्छेषं तावच्छनं तदुच्यते।।
ग्राह्यमानाधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा।

योगार्धादधिके न स्याद् विक्षेपे ग्राससम्भव:।।

अर्थात् छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है। ग्राह्यमान से ग्रासमान अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण और न्यून हो तो न्यून (खण्ड) ग्रहण होता है। मानैक्यार्ध से शर अधिक होने पर ग्रहण सम्भव नहीं होता।

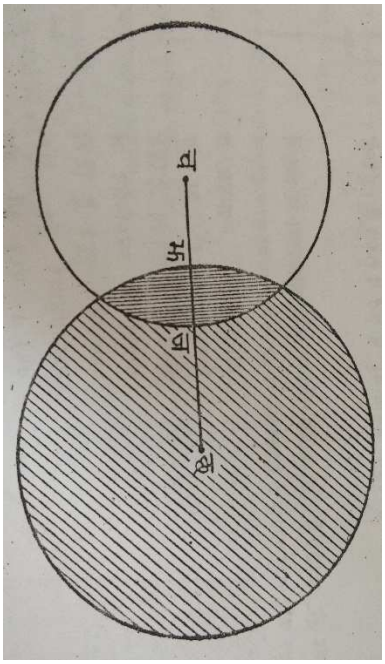

ग्रहणे छादयितुं योग्य: स: छाद्य:। छादयति य: स: छादक:। अर्थात् ग्रहण में जिसके द्वारा छादन होता है, उसे छादक बिम्ब तथा जिसका छादन होता है वह छाद्य बिम्ब कहलाता है। चन्द्रग्रहण में सूर्य से नीचे रहने के कारण चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा भूभा (भूच्छाया) में प्रवेश कर जाता है इसलिए चन्द्रमा को भूभा ढक लेती है। चन्द्रग्रहण में भूभा छादक होती है। चन्द्रमा छाद्य होता है। और सूर्यग्रहण में चन्द्रमा छादक होती है सूर्य छाद्य। सामान्यतया ऐसे समझ सकते है कि जिसका ग्रहण होता है, वह छाद्य जिसके द्वारा ग्रहण होता है उसे छादक बिम्ब कहते हैं। उपर के चित्र में चन्द्रग्रहण में छ छादक और च छाद्य है और सूर्यग्रहण में यदि छ सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो छ छाद्य और च छादक हो जायेगा। ग्रास का अर्थ छादक द्वारा छाद्य का जितना भाग ढक लिया जाता है, उसी से है।

अभ्यास प्रश्न -

1. निम्न में भूभा क्या है?

क. भूच्छाया ख. पृथ्वी की छाया ग. महीच्छाया घ. उपर्युक्त सभी

2. चन्द्रग्रहण में छादक बिम्ब कौन होता है?

   क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. पृथ्वी घ. भूभा

3. चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्या कहलाता है?

   क. पात (राहु) ख. केतु ग. विक्षेप घ. शर

4. ग्रासमान का सम्बन्ध किससे है?

   क. छाद्य बिम्ब से ख. छाद्य-छादक बिम्ब से ग. विक्षेप से घ. ग्रह से

5. छादयति य: स: .....।

   क. छाद्य ख. छादक: ग. विक्षेप: घ. पात

6. चन्द्रग्रहण कब होता है?

   क. अमावस्या को ख. पूर्णिमा को ग. पूर्णिमायां शराभाव में घ. कोई नहीं

3.4 अन्य ग्रन्थों में कथित ग्रासमान विचार

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रासमान -

यच्छाद्यसंछादकमण्डलैक्यखण्डं शरोनं स्थगितप्रमाणम्।
तच्छाद्यबिम्बाधिकं यदा स्याज्ज्ञेयं च सर्वग्रहणं तदानीम्।।

अर्थात् छाद्य तथा छादक के मानैक्यार्ध में से शर को घटाने से प्राप्तफल स्थगित का प्रमाण होता है। यदि इसका मान छाद्य के बिम्ब से अधिक हो तो पूर्ण ग्रहण होता है।

इसकी उपपत्ति इस प्रकार कही गयी है कि सूर्य से छ: राशि अन्तर पर क्रान्तिवृत्त में भूच्छाया भ्रमण करती है। अत: पूर्णमास्यन्त पर भूच्छाया तथा चन्द्रमा की समान स्थिति होती है, किन्तु याम्योत्तर अन्तर शर (विक्षेप) तुल्य होता है। यह शर छाद्य तथा छादक के बिम्ब के मध्य अन्तर तुल्य होता है। यह यदि बिम्बैक्य अर्ध तुल्य हो तो इनके बिम्ब प्रान्तों का मात्र संयोग (स्पर्श) होता है। यदि शर बिंबमानैक्यार्ध से अल्प हो तो छाद्य बिम्ब छादक बिम्ब में प्रवेश करता है। अत: इस प्रकार स्थगित प्रमाण आचार्य ने कहा है। यह स्थगित मान यदि छाद्य बिम्ब से अधिक हो तो सर्व अर्थात् सम्पूर्ण ग्रहण होता है।

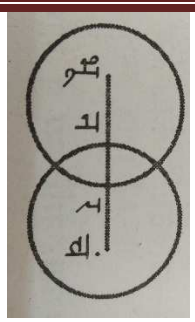

चित्र में भू = पृथ्वी की छाया का केन्द्र है। चं = चंद्रबिम्ब केन्द्र है। चं न = चन्द्रबिम्ब व्यासार्ध है। भू र = भूच्छायाबिंब व्यासार्ध है। न र = ग्रास मान है।

चित्र के अनुसार – भूर + चं न = भू र + र चं + न र

= भू चं + न र

भूभा बिम्बार्ध + चन्द्र बिम्बार्ध = चन्द्र शर + ग्रास

मानैक्यार्ध = चन्द्रशर + ग्रास

अत: मानैक्यार्ध - चन्द्र शर = ग्रास मान। स्पष्ट हुआ। चन्द्र बिम्ब अर्थात् ग्राह्य बिम्ब से ग्रास मान अधिक होने पर पूर्ण ग्रहण होगा।

ग्रहलाघव में कथित ग्रासानयन –

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा। छादकच्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरू।
तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यदा। ग्राह्यहीनावशिष्टं तु खच्छन्नकम्।।

सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को आच्छादित करता है तथा चन्द्रग्रहण में भूमि की छाया चन्द्रमा को आच्छादित करती है। छाद्य और छादक के बिम्बों का योग कर उसके आधे (मानैक्य खण्ड) में शर घटाने से शेष ग्रासमान होता है। ग्रासमान से छाद्य बिम्ब घटाने पर शेष खग्रास होता है।

उदाहरण –

कल्पना किया कि - छादक (भूभा) बिम्ब का मान = २७।२४ है, छाद्य (चन्द्रमा) बिम्ब का मान -१०।४९ है। अत: इन दोनों का योग किया तो ३८।१३ मानैक्य हुआ इसका आधा १९।६ मानैक्यार्ध या मानैक्यखण्ड कहलाता है। इसमें शर ५।३५ घटाने से १३।३१ ग्रासमान हुआ। यह छाद्य बिम्ब १०।४९ से अधिक है। अत: ग्रासमान १३।३१ से १०।४९ को घटाने से शेष २।४२ खग्रास हुआ।

इष्टग्रासानयनम्-

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयो:।
भुक्त्यरन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ता: कोटिलिप्तिका:।।

अर्थात् इष्ट घटयादिमान को स्पर्शस्थितयर्ध घटयादि में घटाने से जो शेष रहें, उनको सूर्य-चन्द्र के गत्यन्तर से गुणाकर ६० का भाग देने पर, फल कोटिकला होती है। यहाँ ग्रहण के आरम्भ से मध्यग्रहणपर्यन्त इष्टग्रास घटिका होती है।

मानैक्यखण्ड में इष्टग्रास को घटाकर शेष के वर्ग में तात्कालिक शर का वर्ग घटाकर, शेष का वर्गमूल लेने से चन्द्रग्रहण में कोटिलिप्ता होती है। सूर्यग्रहण में इस प्रकार से प्राप्त लब्धि स्पष्ट कोटिकला होती है। इन कोटिकलाओं को ६० से गुणाकर सूर्य-चन्द्र के गत्यन्तर का भाग देने से प्राप्त घटिकादि लब्धि स्वकीय स्थित्यर्ध में घटा देने से इष्टग्रास घटिका होती है।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि 'भू' अर्थात् पृथ्वी तथा 'भा' नाम छाया इस प्रकार पृथ्वी की छाया को 'भूभा' कहते है। ग्रहण में इसका ज्ञान परमावश्यक होता है। रविकर्ण को भूव्यास से गुणाकर भूव्यासोन रविव्यास से (भाग देने से भूकेन्द्र से भूछाया का दीर्घत्व (लम्बाई) होता है। उस दीर्घत्व में से चन्द्रकर्ण को घटाकर जो शेष रहता है उसको भूव्यास से गुणाकर दीर्घत्व से भाग देने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। उसको त्रिज्या से गुणाकर चन्द्रकर्ण से भाग देने से 'भूभामान' कला होती है। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वी की छाया (भूभा) में होकर गुजरता है, तब चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी की वह छाया चन्द्रमण्डल को ढक लेती है, जिससे चन्द्रमा में काला मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही 'चन्द्रग्रहण' कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच से गुजरने वाली पृथ्वी की बायीं ओर आधे भाग पर रहने वाले मनुष्यों को चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है। सूर्यबिम्ब के बहुत बड़ा होने तथा पृथ्वी के छोटे होने के कारण पृथ्वी की छाया हमारी छाया की भाँति न होकर काले ठोस शंकु के समान सूच्याकार होती है और चन्द्र कक्षा को पारकर बहुत दूर तक निकल जाती है। अर्थात् भूभा (पृथ्वी की छाया) सूच्याकार होती है। आकाश में फैली हुई पृथ्वी की यह छाया (भूभा) लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी पर निर्भर होती है, अत: यह छाया घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए यह छाया कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शंकु सदृश इस प्रच्छाया के साथ ही शंकु के ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने भ्रमण पथ पर चलते हुए जब पृथ्वी की उपच्छाया में पहुँचते हैं, तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छाया के समीप आ जाते हैं, त्यों ही उन पर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब वह उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छाया के भीतर आ जाता है, तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णमास चन्द्रग्रहण लग जाता है। अर्थात् नाड़ी-क्रान्तिवृत्त दो स्थानों पर मिलते हैं जिन्हें पात, सम्पात तथा

गोलसन्धि के नामों से जानते हैं। चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु (पात) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं। छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है। ग्राह्यमान से ग्रासमान अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण और न्यून हो तो न्यून (खण्ड) ग्रहण होता है। मानैक्यार्ध से शर अधिक होने पर ग्रहण सम्भव नहीं होता।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

भूभा – भू का अर्थ पृथ्वी और भा का अर्थ छाया होता है। इस प्रकार भूभा का अर्थ भूमि की छाया हुआ।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

पात – चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त का सम्पात दो स्थानों पर होता है। प्रथम सम्पात को पात (राहु) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते है।

ग्रास – ग्रास से तात्पर्य छादक बिम्ब द्वारा छाद्य बिम्ब को ढकने से है। ग्रहणकाल में जितना भाग ढकता है, उतना ही ग्रासमान माना जाता है। यह सामान्य बात है। विशेषत: सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. घ 2. घ 3. क 4. ख 5. ख 6. ग

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूभा से आप क्या समझते है।
2. भूभा साधन कीजिये।
3. चन्द्रग्रहण में पात (राहु) क्या है। लिखिये।
4. विभिन्न सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्णित ग्रास का उल्लेख कीजिये।
5. सिद्धान्तशिरोमणि एवं सूर्यसिद्धान्त के अनुसार भूभा का वर्णन कीजिये।
6. ग्रहण में 'भूभा' की क्या भूमिका है।
7. ग्रहण में पात एवं ग्रास का महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई - 4 शर एवं वलन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शर एवं बलन परिचय

4.3.1 शर एवं बलन का गणितीय पक्ष

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – शर एवं बलन। इससे पूर्व आपने भूभा, पात, एवं ग्रास से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहण से जुड़े कुछ और महत्वपूर्ण विषय शर एवं बलन के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

शर का शाब्दिक अर्थ होता है – दूरी। इसे विक्षेप भी कहा जाता है। वलतीति वलनम्। सूर्य एवं चन्द्रग्रहण में ये दोनों मुख्य तत्व माने जाते है।

आइए इस इकाई में अब हम लोग सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण से जुड़ी महत्वपूर्ण तत्व शर एवं बलन के बारे में जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- शर को परिभाषित कर सकेंगे।
- बलन को समझा सकेंगे।
- ग्रहण में शर एवं बलन के उपयोगिता को समझ लेंगे।
- शर एवं बलन संस्कार से परिचित हो जायेंगे।
- ग्रहण में शर एवं बलन के महत्व को समझा सकेंगे।।

4.3 शर एवं बलन परिचय

गणित ज्योतिष में ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का अध्ययन किया जाता है। सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का आवश्यक है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं। ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है। यथा –

ग्रहबिम्बकदम्बर्क्षगतं वृत्तं भमण्डले।
यत्र बिन्दौ युतं तत्र तद्ग्रहस्थानमुच्यते।।
बिम्बस्थानान्तरं तत्र मण्डले मध्यम: शर:।
स्थानबिम्बद्युरात्रात्रान्तध्रुर्वप्रोते स्फुट: शर:।।

बलनम् - बलतीतिबलनम्। बलनं त्रिविधम्। ग्रहक्षितिजे नाड़ीक्रान्तिवृत्तयोरन्तरमायनबलनम्। तत्रैव ग्रहक्षितिजे नाड़ीपूर्वापरवृत्तयोरन्तरमाक्षबलनम्। अनयोसंस्कारेण स्फुटबलनं जायते। अर्थात् ग्रहक्षितिजे पूर्वापरक्रान्तिवृत्तान्तस्पष्टबलनम्।।

जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धित क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे।

ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं। इस तरह बलन तीन प्रकार का होता है।

मूल श्लोक -

यस्मात् खांकैस्तु यद् वृत्तं तस्य तत् क्षितिजं स्मृतम्।
ग्रहात् खांकाशकैर्यद्वद् ग्रहक्षितिजमुच्यते।।
आयनं बलनं ज्ञेयं ग्रहक्षितिजेऽन्तरम्।
ग्रहोपरि ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोतवृत्तयो:।।
नाडी-भवृत्तयोरेवमन्तरं तावदेव हि।
अक्षजं बलनं तद्वन नाडिका –समवृत्तयो:।।
अन्तरं तु ग्रहोत्पन्नक्षितिजे वा ग्रहोपरि।
समप्रोतध्रुवप्रोत-वृत्तयोरन्तरं च तत्।।
स्पष्टं तत्रान्तरं ज्ञेयं पूर्वापर-भवृत्तयो:।
ग्रहोरपरि समप्रोत कदम्ब प्रोतयोस्तथा।।

सूत्र - आयनबलन ± आक्षबलन = स्पष्टबलन।

4.3.1 शर एवं बलन का गणितीय पक्ष

चन्द्र (विक्षेप) शरानयन -

सपाततात्कालिकचन्द्रदोर्ज्या खभै: हता व्यादलेन भक्ता।
सपातशीतद्युतिगोलदिक् स्याद्विक्षेप: इन्दो: स च बाणसंज्ञ:।।

अर्थात् जिस समय पर विक्षेप ज्ञात करना हो उस समय तात्कालिक चन्द्र तथा पात का योग करे। चन्द्रग्रहण के समय भी समकल काल पर चन्द्रमा तथा तात्कालिक पात का योग करना चाहिए। उसकी ज्या को 270 से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने प्राप्तफल कलात्मक चन्द्र विक्षेप होता है जिसकी बाण संज्ञा होती है। यदि सपात चन्द्र छः राषि से अल्प हो तो इस विक्षेप कला की दिषा उत्तर होती है तथा अधिक हो तो विक्षेप कक्षा की दिषा दक्षिण होती है।

उपपत्ति - चन्द्रमा अपने विमण्डल में भ्रमण करता है। क्रान्तिवृत्त तथा चन्द्र विमण्डल का सम्पात पात संज्ञक होता है। यह पात मीनान्त से विलोम दिषा में भ्रमण करता है। पात से आगे तीन राषि अन्तर पर चन्द्र विमण्डल ४।३० अंश क्रान्तिवृत्त से दूर उत्तर की ओर होता है और पात से दक्षिण की ओर पीछे की तरफ विमण्डल तथा क्रान्तिवृत्त का अन्तर ४।३० अंश होता है। विमण्डल गत चन्द्र का क्रान्तिवृत्त से जो अन्तर होता है वह दक्षिणोत्तर विक्षेप होता है। उसको ज्ञात करने के लिए चन्द्र तथा पात का अन्तर ज्ञात करते हैं जिसके लिए चन्द्र तथा पात का योग करते हैं, क्योंकि पात की विलोम गति होती है। इस सपात चन्द्र की ज्या अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य ज्या में परम २७० कला तुल्य विक्षेप होता है तो प्राप्त सपात चन्द्र में कितना होगा। प्राप्त फजल चन्द्रमा का विक्षेप होता है।

सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में भी चन्द्रमा का परम विक्षेप इस प्रकार कहा है -

भचक्रलिप्ताशीत्यंशैः परमं दक्षिणोत्तरम्।
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यंशदनुष्णगुः।।

अर्थात् अपने पात के कारण चन्द्रमा अपने पासवाले क्रान्तिवृत्त के बिन्दु से २७० कला उत्तर या दक्षिण हट जाता है।

शरस्य स्पष्टीकरण -

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नस्त्रिज्योद्धृतः शरः।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दक्कर्मण्यक्षजे तथा।।

विषुवदवृत्त से स्पष्ट क्रान्ति ध्रुवाभिमुख होती है। क्रातिंग्र पर शर कदम्बाभिमुख होता है। अतः इनके संस्कार करने के लिए क्रान्तिग्र पर जो द्युज्यावृत्त है उसके और शराग्र का जो ऋजु अन्तर है उससे संस्कृत करने से स्फुट होता है। अर्थात् शर और मध्यम क्रान्ति एक वृत्ती धरातल में नहीं होते। अतः उसका अन्तर कोटिरूप में है। शर कर्ण रूप है। इनके वर्गान्तर का मूल द्युज्यावृत्त में भुज है। इस प्रकार

तीन राशि युक्त ग्रह क्रान्तिध्रुव कदम्ब के सूत्रों का अन्तर होता है। इसकी ज्या भुज है। इसकी द्युज्या कोटि है तथा त्रिज्या कर्ण है। अतः यदि त्रिज्या में इतनी कोटि होती है तो शर में कितनी होगी?

$$\frac{\text{कोटि} \times \text{शर}}{\text{त्रिज्या}}$$

अतः कोटि रूप शर की ध्रुवोन्मुख ज्या से अक्षकर्म तथा दक्क करते हैं।

शर को निम्न क्षेत्र द्वारा भी समझ सकते है -

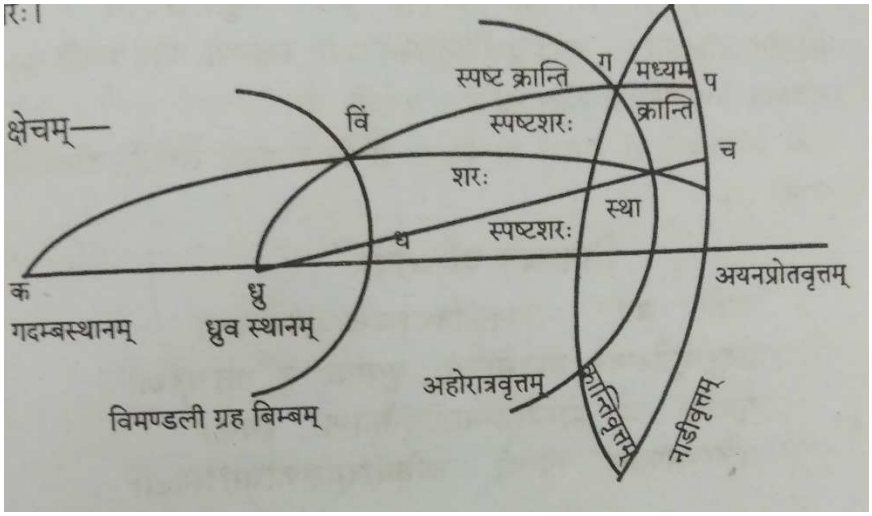

क्षेत्र में वि = विमण्डलीय ग्रहबिम्बम्। स्था = क्रान्तिवृत्त में ग्रहस्थान, विंस्था = विमण्डलीय ग्रह बिम्ब तथा क्रान्तिवृत्तीय ग्रह स्थान का अन्तर शर है। धस्था = विमण्डलीय ग्रह बिम्ब अहोरात्रवृत्त का अन्तर स्पष्टशर है, अथवा विंग = ध्रुवप्रोत्तवृत्त में विमण्डलीय ग्रह स्थान से क्रान्तिवृत्त एवं अहोरात्रवृत्त का अन्तर स्पष्ट शर है, गप = अहोरात्र तथा क्रान्तिवृत्त का सम्पात स्थान से नाड़ीवृत्त का अन्तर मध्यमाक्रान्ति, विं प = विमण्डलीय ग्रहस्थान से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त एवं नाड़ीवृत्त का अन्तर = स्पष्ट शर + मध्यम क्रान्ति = स्पष्ट क्रान्ति होती है।

ग्रह बिम्ब पर गये हुए ध्रुवप्रोत्त वृत्त एवं अहोरात्र वृत्त का अन्तर जो ध्रुव प्रोतवृत्त में होता है वह स्पष्ट शर होता है। विमण्डलीय ग्रह बिम्ब एवं क्रान्तिवृत्त में ग्रह के स्थान के बीच जो कदम्ब प्रातवृत्त का भाग होता है वह शर होता है।

वलन -

खांका हतं स्वद्युदलेन भक्तं स्पर्शादिकालोत्थनतं लवाः स्युः।
तेषां क्रमज्या पलशिञ्जिनीघ्नी भक्ता द्युमौर्व्या यदवाप्तचापम्।।
प्रजायते प्रागपरे नते क्रमादुदग्यमाशं वलनं पलभोद्भवम्।।

जिस समय का बलन साधन करना हो उस समय जो नतघटी हो उसको ९० से गुणा करके चन्द्रग्रहण होने पर रात्रिर्ध से तथा सूर्य ग्रह होने पर दिनार्ध से विभक्त करने से प्राप्तफल अंशादि करते हैं। इनकी क्रमज्या को अक्षज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप अक्षबलन होता है। नत पूर्व होने पर यह उत्तर होता है तथा पश्चिम नत होने पर यह दक्षिण बलन होता है।

विषुववृत्त तथा क्रान्तिवृत्त का सम्पात मेशारम्भ तथा तुलारम्भ बिन्दुओं पर होता है तथा उनके बीच याम्योत्तर अन्तर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है तथ यह परम अन्तर परम क्रान्ति तुल्य होता है। इन पर परम अयनबलन २४ अंश की ज्या तुल्य होता है। वहॉ एक अयन संधि तो दक्षिणोत्तर है और उसके कारण एक पूर्व दिषा में है। वहॉ पर वलन नहीं होता। उसके बाद अनुपात से ग्रह की कोटिक्रमज्या को २४ अंश (जिनांश) की ज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से बलन दिग्बलन ज्या होती है। इसी प्रकार विषुवद्वृत्त से दक्षिणोत्तर क्षितिज में समवृत्त की अक्षांश ज्या तुल्य अन्तर होता है। क्षितिज में अक्षज्या के तुल्य अक्षबलन होता है। इन दोनों, अक्षबलन तथा अयनबलन का योग याम्योत्तर मध्य (स्फुट) बलन होता है। नतक्रमज्या साधित करके उसका अनुपात करने से नत को 90 से गुणा करके (सूर्य या चन्द्र के जिसका ग्रहण हो) दिनार्ध से विभक्त करने से नतांश ज्या होती है। नतांश क्रमज्या को अक्षक्रमज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से स्थूल अक्ष बलन ज्या होती है। पूर्वनत में उत्तर, पश्चिम नत में दक्षिण अक्षबलन चापों का योगान्तर करने से स्फुट अक्षबलन होता है।

इसी प्रकार क्रान्तिवृत्त और समवृत्त का जहॉ सम्पात परम होता है वहॉ तात्कालिक बलन का योगान्तर स्फुट बलन होता है। उसके आगे तथा पीछे क्रान्तिवृत्त में तीन राशि अन्तर पर उनका याम्योत्तर अन्तर एक ही हो जाने से वहॉ बलन स्फुट नहीं होता। स्पश्ट बलन का वहॉ अभाव होने से वहॉ क्रमज्या, उत्क्रमज्या नहीं होती। वहॉ उन्हें ज्ञात करने के लिए पुनः कहते हैं। सब ओर क्षेत्र सूत्र सभी ध्रुव से 24 अंष अन्तर पर योग करे तो वह बिन्दु कदम्ब संज्ञक होता है और वह बलन का बोध कराता है। अपमण्डल के पूर्व से उत्तर व दक्षिण दिषा में कदम्ब भ्रमण वृत्त सदा ध्रुवों के चारों ओर बंधे हुए घूमते है। गोल में जहॉ 24 अंष के तुल्य ज्या क्रान्तिज्या होती है। सभी जगह पर समवृत्त से

क्षितिज याम्योत्तर में मिलता है। उसके लम्बवत् सूत्र जहॉ योग करते हैं वह सम संज्ञक स्थान है। सम, ध्रुव और कदम्ब के उपर के अतिरिक्त अन्य स्थान पर ग्रह भ्रमण करते हैं। वृत्तरूप सूत्रों के बलनों के अन्तर पर अक्षबलन तथा अयनबलन के मध्य समध्रुव सूत्र होता है।

कदम्ब ध्रुव सूत्रों के अन्तर आनयन करके उससे तीन राशि दूरी पर कदम्ब सम सूत्रान्त पर वे सभी दिशाओं में स्फुट होते हैं। अथवा क्रान्ति वृत्तस्थ ग्रह के चारों ओर 90 अंश दूरी पर एक त्रिज्यावृत्त न्यास करके वहॉ विषुवद्समवृत्त के मध्य अन्तर के द्वारा अयन बलन ज्ञात करके विषुवद और क्रान्तिवृत्त का अन्तर ज्ञात करके क्रान्तिवृत्त समवृत्त का अन्तर स्फुट बलन होता है। अपमण्डल के पूर्व में उसका याम्योत्तर षर होता है उसको बलन आनयन के लिए क्रान्ति में योग करने के लिए कुबुद्धि लोग कहते हैं।

मकरादि से याम्योत्तर वृत्त यदि कदम्ब से होकर जाय तो विषुवद और क्रान्तिवृत्त के एक हो जाने से ऐसा होता है। वहॉ अयन बलन नहीं होता तथा वहॉ कदम्ब और ध्रुवप्रोत वृत्तों का अन्तर नहीं रहता है।

गोल अर्थात् क्रान्तिवृत्त में मकर के आदि स्थान उपलक्षण द्वारा अयन संधि कही है। वह जैसे -जैसे स्वअहोरात्रवृत्त में भ्रमण करती है वैसे-वैसे पूर्व प्रतिपादित प्रकार से कदम्ब अपने मण्डल में भ्रमण करता है। याम्योत्तर वृत्त जो ध्रुवप्रोत में स्थित कुम्भादि तथा मीनादि से होकर जाता है उसमें बलन होता है क्योंकि सौम्य सूत्र का कदम्ब से अन्तर षिंजनी रूप में कदम्ब भ्रमण मण्डल में अयन गत कालांश क्रम क्रान्तिज्या ही बलन होता है। उत्क्रमज्या बाण रूप होती है तथा त्रिज्या क्रमज्या होती है। सत्रिम सूर्य की क्रान्ति क्रमज्या से बलन आनयन करना चाहिये।

जिन आचार्यों ने जो उत्क्रमज्या से क्रान्तिज्या तुल्य कहा है व भ्रमवश कहा है। उस भ्रान्ति के निवारण के लिए ही आचार्य ने नतकाल की क्रमज्या ज्ञात करने के लिए कहा है न कि उत्क्रमज्या। और इसी युक्ति से विक्षेप तथा अक्षांश क्रमज्य से ज्ञात करने के लिए कहा है।

अयन तथा अक्षांश (रवि तथा चन्द्र) का के कारण रवि और चन्द्रग्रहण में वलन संस्कार कला प्रभावों के कारण आकाश के पूर्व पश्चिम कपाल में ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मोक्ष की दिशा ज्ञान होता है। जिस दिशा में पूर्व कपाल या पश्चिम कपाल में ग्रहण होता है उसी दिशा में यह बलन होता है। सूर्य तथा चन्द्र, सूर्य ग्रहण में समान होने के कारण केवल चन्द्रमा द्वारा दोनों ग्रहों का आयनबलन निकाला जा सकता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्र दिनार्ध से नत और सूर्यग्रहण में सूर्य दिनार्ध से नत निकाल

कर उसका पल बनायें। उसको 90 से गुणा करके अपने दिनार्ध पल से भाग देने पर अंशादि फल प्राप्त होता है। यह पूर्व पश्चिम दिनार्ध के अनुसार उसी दिशा में नत होता है। नत को अपने देश के अक्षांश से गुणा करके 90 से भाग देकर जो प्राप्त होता होगा वह पूर्वनत में उत्तर और पष्चिम नत में दक्षिण बलन होता है। अक्षबलन तथा अयन बलन की एक ही दिशा होने पर दोनों का योग तथा भिन्न दिशा होने पर अन्तर किया जाता है। प्राप्तफल चन्दग्रहण में चन्द्र का और सूर्यग्रहण में सूर्य का अंशादि दिग्बलन होता है। यह स्पष्ट बलन प्राप्त होता है । स्पर्श, मोक्ष आदि किस दिशा में किस प्रकार होगा इससे यह ज्ञात होता है।

स्पष्टबलन, ग्रसितग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम बिन्दु का क्रान्तिवृत्त से कोण होता है वह होता है। इस कोण के दो भाग होते है। स्वस्थान के अक्षांश के कारण अर्थात् विषुवत् वृत्त से दूरी के कारण क्रान्तिवृत्त, क्षितिज को पूर्व कपाल में पूर्व बिन्दु से उत्तर की दिशा में काटता है। अतः क्रान्तिवृत्त ग्रहगोल के पूर्व बिन्दु से पूर्वकपाल में उत्तर की ओर है तथा पश्चिम कपाल में दक्षिण की ओर है। यह अक्ष बलन कहलाता है।

क्रान्तिवृत्त तथा विषुवत वृत्त के मध्य कोण के कारण क्रान्तिवृत्त जब सायन मकर याम्योत्तर पर होता है तब उत्तर की ओर और भी अधिक झुका होता है। जब सायन कर्क याम्योत्तर वृत्त पर 90 होता है। तब यह पूर्व कपाल में दक्षिण की ओर खिसक जाता है। पष्चिम कपाल के लिए दिशायें विपरीत होती है। बलन का यह भाग अयन बलन कहलाता है।

अब आप क्षेत्र द्वारा भी अयन बलन को समझ सकते हैं -

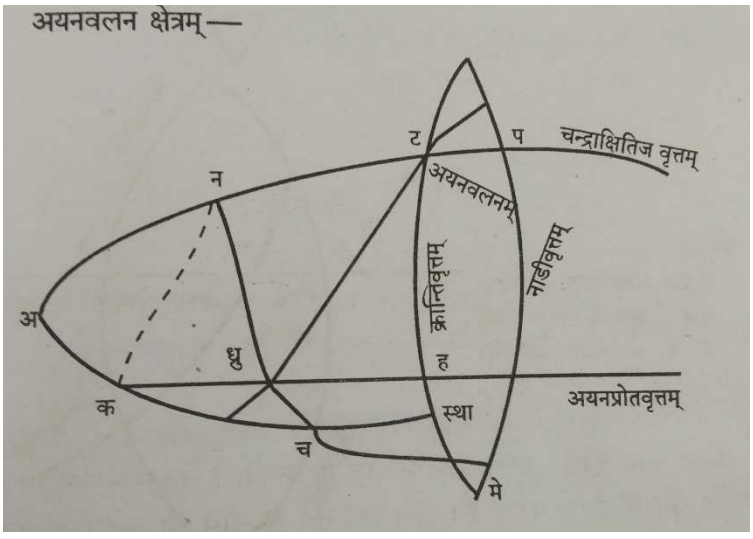

इस क्षेत्र में –'ट प' अयन बलन है। ग्रह बिम्ब एवं क्षितिज वृत्त के बीच नाड़ीवृत्त एवं क्रान्तिवृत्त का अन्तर अयन बलन होता है। यहॉ क्षेत्र में 'टप' अयनबलन है। अथवा ग्रह त्रिज्यावृत्त में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त के बीच में जो अंश हैं वे अयनबलनांश हैं।

निम्न क्षेत्र द्वारा अक्षबलन एंव स्फुट बलन को इस प्रकार समझ सकते हैं -

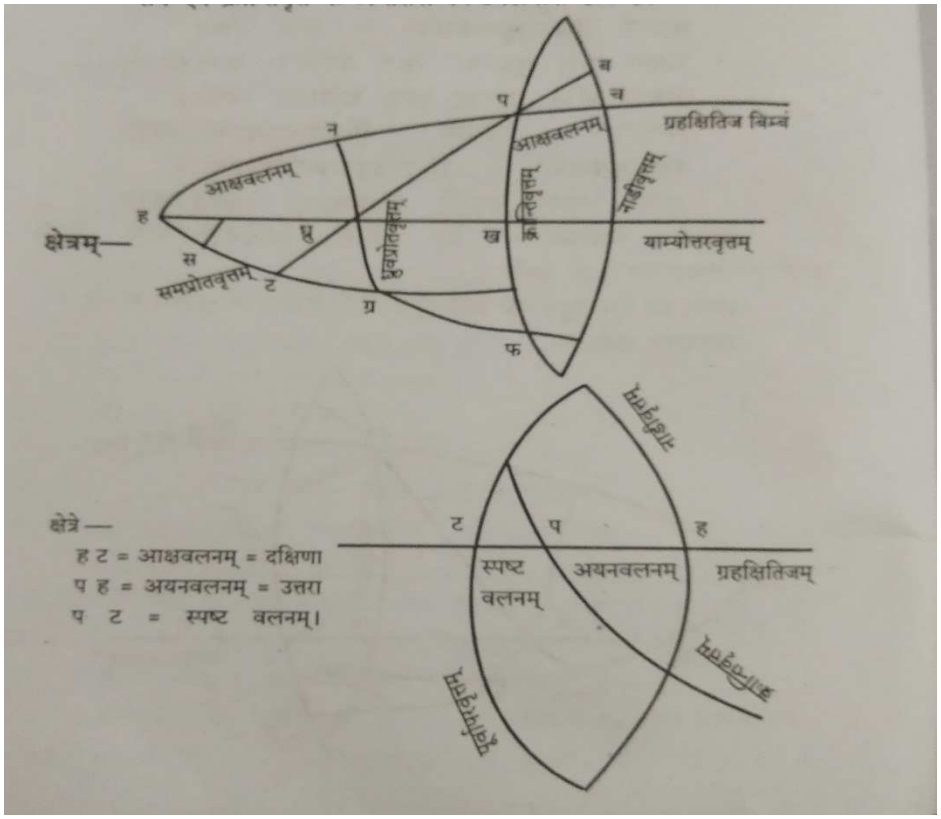

समप्रोत एवं ध्रुवप्रोतवृत्त दोनों के बीच में ग्रह पर लगने वाला कोण आक्षबलन होता है। सम एवं क्रान्तिवृत्त के अन्तरांश स्पष्टबलनांश होते हैं।

क्षेत्र में हट = आक्षबलन = दक्षिणा

प ह= अयनबलन = उत्तरा।

प ट = स्पष्ट बलन।

अभ्यास प्रश्न –

1. निम्न में शर का अर्थ है –

   क. बलन ख. दूरी या अन्तर ग. लम्बन घ. अक्षांश

2. गोलीय रीति के अनुसार स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर को क्या कहते है?

   क. मध्यम शर ख. स्पष्ट शर ग. बलन घ. नति

3. स्पष्ट शर किस वृत्त में होता है?

   क. अहोरात्र वृत्त में ख. ध्रुवप्रोतवृत्त में ग. नाड़ीवृत्त में घ. क्रान्तिवृत्त में

4. ग्रहक्षितिज में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त का अन्तर क्या कहलाता है?

   क. अयन बलन ख. आक्ष बलन ग. स्फुट बलन घ. कोई नहीं

5. आयनबलन ± आक्षबलन = ?

   क. अयन बलन ख. आक्षबलन ग. स्फुट बलन घ. बलन

6. ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को

   क. ग्रहक्षितिज वृत्त ख. क्रान्तिवृत्त ग. नाड़ीवृत्त घ. अहोरात्रवृत्त में

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि गणित ज्योतिष में ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का अध्ययन किया जाता है। सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं। ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है। जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धित क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे।

ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं। इस तरह बलन तीन प्रकार का होता है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

शर – सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है।

स्पष्टशर – स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं।

ग्रहस्थान – ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है।

बलन – बलतीति बलनम्। यह तीन प्रकार का होता है। अयनबलन, आक्षबलन एवं स्फुट बलन।

अयन बलन – ग्रहक्षितिज में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त का अन्तर अयन बलन कहलाता है।

आक्षबलन - ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं।

स्पष्टबलन - पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं।

4.6 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ख 3. ख 4. क 5. ग 6. क

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव।

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी।

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शर क्या है।
2. बलन किसे कहते है।
3. शर को क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।
4. बलन का साधन कीजिये।
5. ग्रहण में शर एवं बलन का क्या महत्व है।

इकाई - 5 लम्बन एवं नति

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 लम्बन एवं नति परिचय
5.4 लम्बन एवं नति का गणितीय पक्ष
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक पाठ्यसामग्री
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के प्रथम खण्ड की पंचम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – लम्बन एवं नति। इससे पूर्व आपने शर एवं बलन से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप लम्बन एवं नति के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहण' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों का इस शास्त्र के प्रति और विश्वास बढ़ जाता है। सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहण एक खगोलीय घटना है, जो आकाश में दो पिण्डों के कारण होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहण' के बारे में उसकी गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- लम्बन को परिभाषित कर सकेंगे।
- नति को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहण' में लम्बन एवं नति की उपयोगिता को जान लेंगे।
- ग्रहण में लम्बन एवं नति के महत्व को समझा सकेंगे।

5.3 लम्बन एवं नति परिचय

लम्बन नति का प्रयोजन -

अमावस्यान्तकाल पर समकल चन्द्र-सूर्य को द्रष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत (झुका हुआ) देखता है उनको वह भूकेन्द्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देख पाता है क्योंकि सूर्य चन्द्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चन्द्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चन्द्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चन्द्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से उपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही द्रष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण द्रष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से लम्बन नति को कहा गया है, जिनके कारण सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते हैं। यथा भास्कराचार्य जी ने लम्बन नति के प्रयोजन को अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है -

दर्शान्तकालेऽपि समौ रवीन्दू द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
क्वर्धोच्छ्रितः पश्यति नैकसूत्रे तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि।।

नति-लम्बन का कारण -

पर्वान्तेऽर्कं नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्।
भूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।।
तदृकसूत्राद्धिमरूचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः।
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्।।
समकलकाले भूभा लगति मृगांके यतस्तयाम्लानम्।।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती।
पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति।।
तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः।
भानोर्बिम्बपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता।।
अनुपातात् तदैर्घ्यं शशिकक्षायां च तद्बिम्बम्।
भूभेन्दोरन्यदिशि व्यस्तः क्षेपः शशिग्रहे तस्मात्।।

भूमध्य में स्थित द्रष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते है। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित द्रष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ दिखाई देता है। अतः सूर्य चन्द्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के उपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छादक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्रग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बडा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैर्घ्यता अनुपात से साधित करते है। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिम्ब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

अनुपात द्वारा लम्बन ज्ञान -

त्रिभोनलग्नं तरणिं प्रकल्प्य तल्लग्नयोर्यः समयोऽन्तरेऽसौ।
त्रिभोनलग्नस्य भवेद्द्युयातः शङ्क्वाद्यतस्तस्य चरान्तकाद्यैः।।
त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिंजनी कृताहता व्यासदलेन भाजिता।
हतात् फलाद्वित्रिभलग्नशंकुना त्रिजीवयाप्तं घटकादि लम्बनम्।।

दर्शान्त काल पर लग्न ज्ञात करके उसको वित्रिभ करके, उस वित्रिभ के भुक्त भोग्य के अन्तर को लग्न के उदय काल में जोड़ देने से वित्रिभ का उदय काल प्राप्त होता है। इस काल से वित्रिभ लग्न जनित कुज्या, द्युज्या, अन्त्या तथा पूर्व में पठितानुसार शंकु का साधन करे। शंकु से दृग्ज्या तथा उसका छायाकर्ण साधित करे। फिर त्रिभोन लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या का साधन करे।

पुनः लम्बन ज्ञात करने के लिए अनुपात करना चाहिए कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभ लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या से चार घटी लम्बन (परम लम्बन) प्राप्त होता है तो अभीष्ट में क्या? प्राप्तफल मध्यम लग्न होगा। इसको स्फुट करने के लिए दूसरा अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभलग्न शंकु का इतना लम्बन होता है तो इतने नत अन्तर में क्या? प्राप्त फल स्फुट लम्बन होगा। त्रिभोन लग्न में से सूर्य के अन्तर की ज्या को चार से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल को वित्रिभ लग्नशंकु से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से घटकादि लम्बन स्फुट होता है।

लम्बन नति को यहाँ क्षेत्र में देखकर आप समझ सकते हैं -

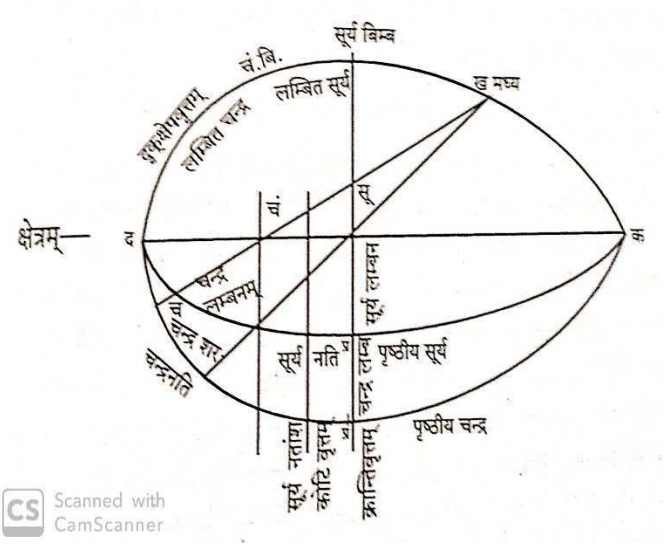

Scanned with CamScanner

क्षेत्र में - सू पृ = सूर्य लम्बन, चं पृ = चन्द्र लम्बन, सू पृ – चं पृ = चन्द्रस्पष्ट लम्बन – सूर्य स्पष्ट लम्बन = गर्भीय दर्शान्त में स्पष्ट लम्बन = पृ पृ।

सूर्यग्रहण में लम्बन होता है। दर्शक भूमि पर खड़ा होकर सूर्य से चन्द्रमा को कुछ लम्बित देखता है तो दोनों बिम्बों का पूर्वापरान्तर को लम्बन दक्षिण से उत्तर का अन्तर नति कहलाता है।

भास्कराचार्य जी के अनुसार –

1. जिस समय ग्रह खस्वस्तिक पर रहता है उस समय उसमें किसी प्रकार का लम्बन नहीं होता क्योंकि पृथ्वी के केन्द्र से ओर द्रष्टा से ग्रह तक खींची गयी रेखायें एक ही होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भास्कराचार्य ने पृथ्वी को पूर्ण गोल माना था क्योंकि तभी यह बात स्पष्ट होती है।
2. जिस समय ग्रह त्रिभोन लग्न पर होता है अर्थात् जिस समय ग्रह क्रान्तिवृत्त के उस बिन्दु पर होता है जो उदय लग्न से तीन राशि कम होता है तब ग्रह में भोगांश लम्बन नहीं होता, केवल नति होती है।
3. जिस समय क्रान्तिवृत्त खस्वस्तिक से होता हुआ उर्ध्ववृत्त बनाता है और ग्रह क्रान्तिवृत्त पर होता है उस समय उसमें शरलम्बन नहीं होता, केवल भोगांश लम्बन होता है।
4. किसी समय का भोगांश लम्बन जानने के लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि उस समय के त्रिभोन लग्न का नतांश या उन्नतांश क्या है, क्योंकि त्रिभोन लग्न के उन्नतांश की ज्या सूत्र का एक अंग है। त्रिभोन लग्न के नतांश की ज्या को दृक्क्षेप और उन्नतांश की ज्या को अथवा नतांश की कोटिज्या को दृग्गति कहा गया है।

ग्रहों के मध्यम, परम लम्बन मान

ग्रह	भास्कराचार्य के अनुसार मध्यम परम लम्बन	आजकल के वेधों से प्राप्त परम लम्बन		आधुनिक वेधों से प्राप्त स्पष्ट बिम्ब	
		लघुत्तम	महत्तम	लघुत्तम	महत्तम
	विकला मान	विकला	विकला	विकला	विकला
सूर्य	२३६.५	८.७	९.०	१८९०	१९५६
चन्द्रमा	.३१६२.३	३१८६	३७२०	१७४०	२०२८
मंगल	१२५.७	३.५	१६.९	४.४	२१.२
बुध	९८२.१	६.४	१४.४	४.८	१०.९
गुरु	२०.०	१.४	२.१	३१.६	४६.७
शुक्र	३८४.५	५.०	३१.४	९.६	६०.०
शनि	८.०	०.८	१.०	१५.८	१९.५

दृष्टि स्थान के भेद अथवा कारण से ग्रह आकाश में अलग देखे जाते हैं। गर्भस्थान की दृष्टि से गर्भीय एवं पृष्ठ स्थान की दृष्टि से देखे जाने पर पृष्ठीय ग्रह दिखाई पड़ता है। चन्द्र एवं सूर्य कक्षा के गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों के अन्तर को दृग्वृत्त में दृग्लम्बन और गर्भीय पृष्ठीय ग्रहगतकदम्बप्रोतवृत्त के अन्तर को क्रान्तिवृत्त में स्फुट लम्बन कहते हैं। तथा गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों (सूर्य-चन्द्र) के शरान्तर को कदम्बप्रोत वृत्त में नति कहते हैं।

नति का परमत्व – वित्रिभ में **परमाल्पिका** – पृष्ठ क्षितिज में

नति का अभाव – खमध्य में

लम्बन का परमत्व – पृष्ठ क्षितिज में **अभाव** – वित्रिभ तथा खमध्य में।

दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्।

लम्बन का भावाभाव एवं धनर्ण विचार –

मूल श्लोक –

दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय न लम्बनं वित्रिभलग्नतुल्ये।
रवौ तदूनेऽभयधिके च तत् स्यादेवं धनर्णं क्रमतश्च वेद्यम्।।

अर्थात् अमावस्या का लग्न ज्ञात कर उसका त्रिभोन लग्न ज्ञात करें। प्राप्त त्रिभोन लग्न के समय रवि का लम्बन नहीं होता। सूर्य यदि इससे न्यून अथवा अधिक हो तब इसका लम्बन होता है तथा वह क्रमश: धन एवं ऋण होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य रवि के रहने पर लम्बन नहीं होता है।

यहाँ सर्वप्रथम स्पष्ट करते हैं कि लम्बन क्या होता है? चन्द्रग्रहण में क्योंकि चन्द्रमा भूच्छाया द्वारा आच्छादित होता है अत: वह द्रष्टा की पृथ्वी पर किसी भी स्थिति से दृश्यमान होने में प्रभावित नहीं होता। लेकिन चन्द्रमा जब सूर्यग्रहण में सूर्य को आच्छादित करता है तब उसकी दृश्यस्थिति द्रष्टा के पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर से प्रभावित होती है। यह लम्बन के कारण होता है। यथा -

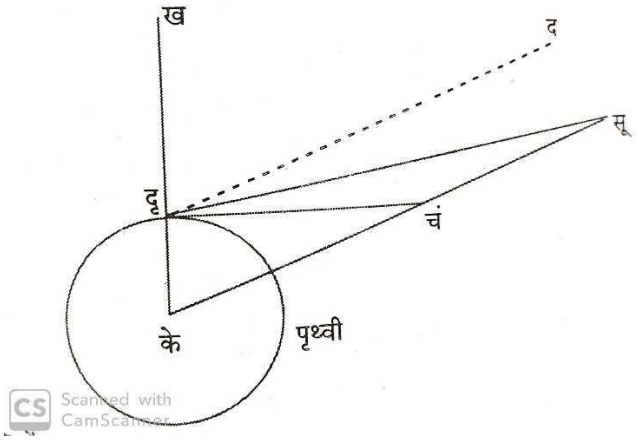

Scanned with CamScanner

क्षेत्र में,

के = भू केन्द्र है।

दृ = द्रष्टा की पृथ्वी के उपर की स्थिति है।

ख = खमध्य है।

चं = चन्द्रमा है।

सू = सूर्य है।

दृ द = रेखा के चं सू के समानांतर खींची गई है।

द्रष्टा भूकेन्द्र (के) से चन्द्रमा को (के चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख के चं = ख दृ द है। लेकिन दृ स्थान पर बैठा हुआ द्रष्टा चन्द्रमा को (दृ चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख दृ चं है तथा –

< ख दृ चं = < ख के चं + < के चं दृ = < ख दृ द + < द दृ चं तथा < दृ चं के, < ख के चं के लिए लम्बन शुद्धि है।

सूर्य के लिए लम्बन शुद्धि < दृ सू के है। यह चन्द्र की लम्बन शुद्धि से अल्प है। < दृ चं के लम्बन का मान होता है।

लग्न से प्राप्त ९० अंश का वृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है वहीं वित्रिभ लग्न होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त रवि के उपर से तथा दूसरा कदम्बप्रोतवृत्त लंबित रवि के उपर से क्रान्तिवृत्त में जहाँ-जहाँ लगता है उनके बीच का क्रान्तिवृत्त पर चाप रवि का स्पष्ट लम्बन होता है। लेकिन जब सूर्य वित्रिभ लग्न में रहता है तब उसके ऊपर दृग्वृत्त तथा रवि और लम्बित रवि के ऊपर से कदम्ब प्रोत वृत्त एक ही दृक्क्षेप वृत्त होता है। अत: वहाँ पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है।

गर्भीय अमान्तकाल में स्थानाभिप्रायिक रवि और चन्द्रमा एक ही बिन्दु रेखा में होते हैं अत: एक ही दृग्वृत्त में लंबित रवि और लंबित चन्द्र होते हैं। लंबित रवि से लंबित चन्द्र पृष्ठ में लंबित होता है। अत: वित्रिभ से रवि अल्प होने पर लंबित रवि के ऊपरीगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है उससे अधोभाग में लम्बित चन्द्र परिगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में लगेगा। अत: यहाँ शीघ्रगति ग्रह (लंबित चन्द्र स्थान) से मन्दगति (लंबित सूर्य स्थान) के आगे रहने के कारण युति गम्य होती है। अत: गर्भीय अमान्त से पृष्ठीय अमान्त स्पष्ट लम्बान्तर के पश्चात् होता है। इसलिए गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लम्बान्तर के जोड़ने से पृष्ठीय अमान्तकाल होता है। वित्रिभ से रवि अधिक रहने पर लंबित रवि से लंबित चन्द्रमा अधोभाग में होता है। अत: लंबित रवि ऊपर गत कदम्ब प्रोत

वृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात ऊपर होता है अत: मध्यगति ग्रह से शीघ्रगति ग्रह के आगे रहने के कारण युति गत होती है। अत: गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लम्बान्तर को ऋण करने से पृष्ठीय अमान्तकाल होता है।

5.4 लम्बन नति का गणितीय पक्ष –

सूत्र रूप में -

$$\text{लम्बन} = \frac{4 \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ आचार्य द्वारा दो अनुपात किये गये हैं प्रथम यह कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य हो जाय अर्थात् वित्रिभलग्नऽर्क अन्तर ज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जाय तो क्षितिज पर परमलम्बन का मान 4 नाडी होता है, तब प्राप्त वित्रिभ लग्नार्क अन्तर ज्या में कितना लम्बन होगा? दूसरा अनुपात यह किया है कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य पर न हो तब यदि वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जाय तो तब मध्यम लम्बन $\frac{4 \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों (सूर्य-चन्द्र) के अन्तर को क्या कहते है?
   क. नति ख. लम्बन ग. वित्रिभ घ. सत्रिभ
2. निम्न में गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों का शरान्तर क्या है –
   क. लम्बन ख. वित्रिभ ग. नति घ. विक्षेप
3. सूर्य एवं चन्द्रमा किस काल में एक ही कक्षा में होते हैं?
   क. पूर्णिमा में ख.अमान्त काल में ग. दशमी तिथि को घ. त्रयोदशी तिथि को
4. लम्बन का अभाव कहाँ होता है?
   क. पृष्ठ क्षितिज में ख. खमध्य में ग. वित्रिभ में घ. सत्रिभ में
5. नति का परमत्व कहाँ होता है?
   क. वित्रिभ में ख. खमध्य में ग. पृष्ठ क्षितिज में घ. दृग्वृत्त में
6. लम्बन एवं नति दोनों का अभाव कहाँ होता है?
   क. वित्रिभ में ख. खमध्य में ग. दृग्वृत्त में घ. कहीं नहीं

नति उपपत्ति -

अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत्।
ये कक्षामण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले।।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि।
तच्चापांशैर्नतो बिन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः।।
कक्षयोरन्तरं यत् स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत्।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात् साध्यते ततः।।

गर्भीय पृष्ठीय सूर्यचन्द्रग्रह के शरान्तर का नाम नति है। अतः याम्योत्तर दिशा में नति को दर्शायें। जहाँ पहले कक्षामण्डल बताया गया वहॉ दृक्क्षेप मण्डल जानना चाहिए। दर्शान्त में सूर्य तथा चन्द्र के त्रिभोनलग्न की जो दृग्ज्या है वह दृक्क्षेप है। ब्रह्मगुप्त मतानुसार उसके चापांश के वित्रिभ लग्न का शर संस्कार करने से चन्द्र का दृक्क्षेप चापांश होता है। उनके वृत्तों में खमध्य से स्वस्व दृक्क्षेप चापांश तुल्य सूर्य तथा चन्द्र के नत बिन्दु बनाये, इनकी वित्रिभ संज्ञा है। फिर पूर्ववत् जैसे सूर्यचन्द्र का लम्बन कहा गया है। उसको ही यहाँ पर याम्योत्तर अन्तर नति के नाम से समझना चाहिये। अर्थात् जैसे पूर्व में भूमध्य और भूपृष्ठ से जो सूत्र बनाये गये हैं उनसे जैसे लम्बन कला कही है उसको यहॉ नतिकला कहते हैं। नति का अर्थ चन्द्रसूर्य का अपनी कक्षा में याम्योत्तर अन्तर होता है। वित्रिभ लग्न स्थान पर जो याम्योत्तर अन्तर चन्द्र-सूर्य में होता है वही अन्तर सर्वत्र होता है। इस अन्तर को दृक्क्षेप के द्वारा साधित करने से नति का मान ज्ञात होता है।

दृक्क्षेपमण्डल, त्रिभोन लग्न दृग्मण्डल को कहते है। ब्रह्मगुप्त ने त्रिभोन लग्न से लम्बन तथा नति साधन करने में त्रिभोन लग्न की दृग्ज्या को दृक्क्षेप चन्द्र तथा सूर्य दोनों के लिए कहा गया है। उसके चापांश के लिए यहॉ आचार्य ने कहा है।

स्फुट लम्बन का अर्थ - जहॉ कही सूर्य से नीचे चन्द्रमा जितना नत दिखाई देता है वह वहॉ पर दोनों दृग्वृत्तों गर्भीय सूत्र तथा भूपृष्ठीय सूत्र का अन्तर चन्द्र-सूर्य का पूर्वापर अन्तर होता है।

पूर्वापर तथा दक्षिणोत्तर में ये दोनों अन्तर अपमण्डल में पूर्व दिशा में तथा उसके लम्बवत् दक्षिणोत्तर में क्रमश: होते हैं।

पूर्वापर में होने वाले अन्तर को लम्बन कहा है तथा दक्षिणोत्तर में होने वाले अन्तर को नति के नाम

से जानते हैं। नति लिप्ता तुल्य भुज, दृग्लम्बन कला तुल्य कर्ण तथा इनके वर्गो के अन्तर का मूल कोटि रूप स्पष्ट लम्बन लिप्तिका होता है।

परमलम्बन लिप्ता 48/46 को रविदृग्ज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से दृग्लम्बन कला प्राप्त होते हैं और दृक्क्षेप के द्वारा इसी प्रकार नति का मान प्राप्त होता है।

सूर्य चन्द्र की गति के अन्तर का पन्द्रहवॉं भाग परमलम्बन लिप्ता 48/46 होता है और गति योजन 118,58/45 का पन्द्रहवॉं भाग भूव्यासार्ध 790/35 तुल्य होता है। जो लम्बकला प्राप्त होती है उनको सूर्य, चन्द्र के गति अन्तर से विभक्त करने से लम्बन काल घटियॉं प्राप्त होती है उनको सूर्य, चन्द्र के गति अन्तर से विभक्त करने से लम्बन काल घटियॉं प्राप्त होती है। अर्थात् लम्बनकला × 60 लम्बन काल होती हैं।

गति अन्तर

पूर्वकपाल में सूर्य से चन्द्रमा आगे रहता है तथा पश्चिम कपाल में लम्बित पीछे रहता है।

अतः पूर्वकपाल में लम्बन काल ऋण तथा पश्चिम कपाल में धन होता है क्योंकि शीघ्रगति ग्रह यदि मन्दगति ग्रह से आगे रहता है तो इसका अर्थ है दोनों की युति हो चुँकि तथा यदि पीछे रहता है तो इसका अर्थ है कि गति अब आगे होगी।

याम्योत्तर में जो शर है वह सूर्य-चन्द्र का अन्तर है और नति भी वही है। अतः शर में नति का संस्कार धन-ऋण करने से स्फुट शर प्राप्त होता है।

लम्बन साधन का उदाहरण –

कल्पना किया कि – स्पष्टसूर्य = १०।०३।१५।३६, स्पष्ट चन्द्र = १०।०३।१५।३६ तथा स्पष्ट लग्न = २।१८।७।५७।

पर्वान्तकालीन स्पष्ट लग्न में ३ राशि घटाने से या कम करने से वित्रिभ लग्न = ०७।०३।१५।३६ हुआ। वित्रिभ लग्न की उत्तरा क्रान्ति ४।४० होती है। सायन सूर्य या वित्रिभ के उत्तर गोल में होने से यह ४।४० उत्तरा क्रान्ति हुआ। काशी में दक्षिण अक्षांश = २५।२६, उत्तरा क्रान्ति = ४।४० का भिन्न दिशा से अन्तर = २०।४६ यह नतांश हुआ।

नतांश = २०।४६ का २२ वाँ भाग = ०।५६ हुआ, ०।५६ का वर्ग १।१ यह वर्ग संख्या २ से कम होने से विशेष संस्कार की आवश्यकता नहीं है। इस वर्ग को १२ में जोड़ देने से १२ + १।१ = १३।१

इसका नाम हार है। सूर्य व वित्रिभ के अन्तरांश ७४।५२।२१ का दशमांश = ७/२९ को १४ में घटाने से ६।३१ होता है। दशमांश × १० – दशमांश = ७/२९ × ६।३१ = ४८।४० हुआ। ४८।४० में हार १३।१ का भाग देने से स्वल्पान्तर से घटी =३, पल = ४४ यह लम्बन का घटिकादिक मान गणित से सिद्ध होता है। स्पष्ट सूर्य से स्पष्ट वित्रिभ लग्न अधिक होने से लम्बन धन सिद्ध होता है।

5.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि अमावस्यान्तकाल पर समकल चन्द्र-सूर्य को द्रष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत (झुका हुआ) देखता है उनको वह भूकेन्द्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देख पाता है क्योंकि सूर्य चन्द्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चन्द्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चन्द्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चन्द्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से उपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही द्रष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण द्रष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से लम्बन नति को कहा गया है, जिनके कारण सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते। भूमध्य में स्थित द्रष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते है। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित द्रष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ दिखाई देता है। अतः सूर्य चन्द्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के उपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छादक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्रग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बडा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैर्घ्यता अनुपात से साधित करते है। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिम्ब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

लम्बन – गर्भीय एवं पृष्ठीय (सूर्य एवं चन्द्र) ग्रह का अन्तर 'लम्बन' कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है।

नति – गर्भीय एवं पृष्ठीय (सूर्य एवं चन्द्र) ग्रहों का शरान्तर 'नति' कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है।

दृग्लम्बन – दृग्वृत्त में स्थित लम्बन दृग्लम्बन कहलाता है।

दर्शान्तकाल – अमावस्यान्त काल।

त्रिभोन – तीन राशि से कम को त्रिभोन कहते है।

दृक्क्षेप – लग्न बिन्दु से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को दृक्क्षेप कहते हैं।

वित्रिभ - दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा उर्ध्वसम्पात को वित्रिभ कहते हैं।

सत्रिभ - दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा अध: सम्पात को सत्रिभ कहते हैं।

तरणि – सूर्य।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ग 3. ख 4. ख 5. क 6. ख

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लम्बन से आप क्या समझते है।
2. नति क्या है?
3. भास्कराचार्य जी के अनुसार लम्बन-नति का प्रयोजन लिखिये।
4. ग्रहण में लम्बन-नति का कारण स्पष्ट कीजिये।
5. लम्बन एवं नति को परिभाषित करते हुए उसका गणितीय साधन कीजिये।
6. लम्बन एवं नति को क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।
7. ग्रहण में लम्बन एवं नति का क्या महत्व है। स्पष्ट रूप से लिखिये।

खण्ड - 2

चन्द्रश्रृंगोन्नति एवं उदयास्तादि विचार

इकाई - 1 चन्द्रश्रृंगोन्नति विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 श्रृंगोन्नति परिचय
1.4 श्रृंगोन्नति में विशेष
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के द्वितीय खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – चन्द्रश्रृंगोन्नति परिचय। इससे पूर्व आपने ग्रहण में प्रयुक्त लम्बन एवं नति से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप चन्द्रश्रृंगोन्नति के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'चन्द्रश्रृंगोन्नति' का सम्बन्ध ग्रहण के अन्तर्गत चन्द्रमा की स्थिति से है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहण एवं चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'चन्द्रश्रृंगोन्नति' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- चन्द्रश्रृंगोन्नति को परिभाषित कर सकेंगे।
- चन्द्रश्रृंगोन्नति को समझा सकेंगे।
- 'चन्द्रश्रृंगोन्नति' में चन्द्रमा की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- ग्रहण में चन्दश्रृंगोन्नति का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

1.3 चन्द्रश्रृंगोन्नति परिचय

चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्बन्ध आकाशस्थ चन्द्रमा की स्थिति से है। श्रृंग का अर्थ यहाँ सींघ के समान से लिया गया है। आकाश में शुक्ल पक्ष के अन्तर्गत चन्द्रमा का बिम्ब बढ़ते हुए दिखलाई पड़ता है तथा अन्तिम तिथि पूर्णिमा को पूर्णबिम्ब दिखाई देता है। वहीं कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कला घटते हुए दिखलाई पड़ता है और अन्तिम तिथि अमावस्या को चन्द्रमा कलाहीन होकर अदृश्य हो जाता है अर्थात् हमें भूसापेक्ष उसके दर्शन नहीं हो पाते। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से सार्द्धसप्तमी तिथि तक चन्द्रमा हमें श्रृंगवत् दिखलाई पड़ता है। फिर उसका आकार अर्धगोलमेव हो जाता है। इसी तरह पूर्णिमा तिथि को वह हमें बिल्कुल गोल दिखलाई पड़ता है।

शुक्ल पक्ष के आरम्भ में अथवा कृष्ण पक्ष के अन्त में चन्द्रमा के प्रकाशित या शुक्ल भाग का आकार श्रृंग (सींघ) की तरह होता है और उत्तर या दक्षिण की तरफ उठा रहता है। चन्द्रमा के आधे से अल्प शुक्ल (श्वेत) भाग की कोटी (उपरी भाग) श्रृंगाकार होता है, तब वहाँ इष्टकाल पर कितनी श्रृंगोन्नति होगी? यह ज्ञान का विषय है। चन्द्रमा का श्रृंगाकार भाग शुक्ल भाग के आधे से

अल्प भाग में होता है। यह मासान्तपाद व प्रथम पाद में चन्द्र के आधे से अल्प शुक्ल भाग में संभव होता है। द्वितीय तथा तृतीय (चरण) पाद में ब्रह्मगुप्तादि ने कृष्ण श्रृंगोन्नति साधित की है, उससे आचार्य भास्कराचार्य सहमत नहीं है। वे कहते हैं कि कृष्ण श्रृंगोन्नति मनुष्यों के नेत्रों से दृश्य नहीं होती अत: शुक्ल श्रृंगोन्नति ही प्रसिद्ध है। अत: आचार्य ने मासान्त पाद व प्रथम पाद के लिए कहा है। द्वितीय तृतीय पाद में चन्द्र बिम्बार्ध कृष्ण होने से वहाँ कृष्ण श्रृंगोन्नति होती है। सूर्यास्त के पश्चात् जितनी घटी में चन्द्र अस्त होता है वह गत घटी है तथा सूर्यास्त से जितनी घटी पहले चन्द्रास्त होता है वह ऐष्य घटी है। इसी प्रकार पूर्व क्षितिज में सूर्योदय से गत एवं ऐष्य घटी होती है।

चन्द्रशङ्क्वर्थम् –

मासान्तपादे प्रथमेऽथवेन्दो: श्रृंगोन्नतिर्यद्दिवसेऽवगम्या।
तदोदयेऽस्ते निशि वा प्रसाध्य: शंकुर्विधो: स्वोदितनाडिकाद्यै:।।

अर्थात् मासान्त पाद अर्थात् चतुर्थ पाद (अर्थात् कृष्णपक्ष की अष्टमी से आगे) अथवा प्रथम पाद (अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आगे अष्टमी तिथि तक) में से किसी भी अभीष्ट दिवस को जब चन्द्र श्रृंगोन्नति ज्ञात करनी हो तब उस मास पाद के उस अभीष्ट दिवस की रात्रि में सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय अथवा रात्रि के किसी भी समय पर चन्द्र स्पष्ट करें। प्रथम चरण में उनसे अस्त काल में श्रृंगोन्नति ज्ञात करें, इसी प्रकार रात्रि में किसी समय पर तथा मासान्त पाद के उदयकाल पर चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन करना चाहिये। उदय से अभीष्ट घटी तुल्य काल अथवा जब अस्त हो वहाँ से उपर इष्ट घटी काल पर श्रृंगोन्नति साधित करना चाहिये।

चन्द्रमा के शुक्लत्व व कृष्णत्व के कारण –

तरणिकिरणसंगादेष पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति।
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थ:।।
सूर्यादध: स्थस्य विधोरध:स्थमर्धं नृदृश्यं सकलासितं स्यात्।
दर्शेऽथ भार्धान्तरितस्य शुक्लं तत् पौर्णमास्यां परिवर्तनेन।।
कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्रकर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात्।
पादोनषट्काष्ट लवान्तरेऽतो दलं नृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम्।।
उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिन्दोस्त्यज्त इनं व्रजतश्च मेचकत्वम्।
जलमयजलजस्य गोलकत्वात् प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपतास्य।।
यद्याम्योदक् तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहु:।
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक् स कर्ण:।।

दोर्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्चकोटिस्तदग्रे।
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम्।।

अर्थात् सूर्य की किरणों के संयोग से धवलकान्ति अमृतमय चन्द्रमा का सूर्य की तरफ का भाग चन्द्र की चान्दिनी (प्रकाश) से जगमगाता है। उसके (चन्द्र) इससे विपरीत दिशा में रमणीय रमणी के शिर के श्याम वर्ण के केशों की श्यामलता के सदृश्य चन्द्रमा श्याम रंग का दिखाई देता है। यहाँ रमणी के शिर की छाया को श्यामलता भी कही है। सूर्य के नीचे (कक्षा में) स्थित चन्द्रमा का आधा भाग मनुष्यों को अदश्य होता है क्योंकि वहाँ अंधेरा रहता है और चन्द्रमा का आधा भाग ही दृश्य होता है जो पूर्णिमा से परिवर्तित होने लगता है। सूर्य से जब चन्द्रमा अपनी कक्षा के चतुर्थ भाग तुल्य स्थान पर चन्द्र कर्णान्तर दूरी पर होता है तब सूर्य से लम्बवत् होता है। उस समय चन्द्र गोल के आधे भाग का आधा भाग अर्थात् दृश्य चतुर्थांश भाग (८५/४५) भाग मनुष्यों को शुक्ल दिखाई देता है।

जलज होने से जलमय चन्द्रमा के बिम्ब की सूर्य के सामने होकर दूर आगे जाते हुए सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से शुक्लता तथा समीप जाते हुए कृष्णता में वृद्धि होती है। सूर्य तथा चन्द्रमा का याम्योत्तर अन्तर यहाँ बाहु है, उनका उर्ध्वाधर अन्तर कोटि है इनका जो तिर्यक अन्तर है वह कर्ण है। भुज के मूल में सूर्य चन्द्र दिशा में भुजाग्र और कोटि के अग्रभाग (तक) के कर्ण मार्ग से शुक्लता देता है।

मृदातत्व एवं जलतत्व के योग से बने हुए चन्द्र बिम्ब पर सूर्य किरणों के संयोग से पक्षादि और मासान्त में शुक्ल भाग की आकृति दो सींगों जैसी होती है। पक्षादि में चन्द्र के दोनों श्रृंगों के नत एवं उन्नत होने का फल संहितादि ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।

सूर्यसिद्धान्तोक्त चन्द्रमा का सूर्यसान्निध्य के कारण दृश्यादृश्य कथन –

उदयास्त विधिः प्रागवत् कर्तव्यः शीतगोरपि।
भागैर्द्वादशभिः पश्चाद् दृश्यः प्राग्यात्यदृश्यताम्।।

पश्चिम दिशा में चन्द्र का अस्त लग्न एवं पूर्व दिशा में उदय लग्न बनाकर 'ततोलग्नान्तर प्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः' इत्यादि पद्य में कथनानुसार चन्द्रमा के भी उदयास्त कालांश का साधन करना चाहिये। चन्द्रमा १२ कालांश से पश्चिम दिशा में उदित तथा १२ कालांश से ही पूर्वदिशा में अस्त होता है। अर्थात् जब चन्द्र सूर्य से १२ अंश आगे चला जाता है तो पश्चिम दिशा में उदय होता है एवं सूर्य से पीछे १२ अंश के भीतर अन्तर होने पर चन्द्रमा पूर्व दिशा में अस्त होता है।

चन्द्रबिम्ब में स्वयं का प्रकाश नहीं होने से अपने दृष्टि स्थान से चन्द्र बिम्ब की परिधि को छूकर जाने वाली दो स्पर्श रेखाओं के करने से अर्धाल्प ही चन्द्र बिम्ब का भाग दृश्य होता है, वहाँ उस से ऊपर के स्थान में स्थित होने वाले सूर्य बिम्ब की किरणों के संयोग होने से जब चन्द्र बिम्ब में शुक्लारम्भ

होता है तो उसे ही चन्द्र बिम्ब का उदय कहते हैं। जब चन्द्र बिम्ब में शुक्ल का परम अभाव हो तो चन्द्रास्त होता है। जब सूर्य और चन्द्र दोनों राश्यादि में समान होते हैं तो एक ही दृष्टि सूत्र में गये हुए होने से सूर्यकक्षा के नीचे भाग में स्थित चन्द्रकक्षा में चन्द्र बिम्ब होने से हमारे दृश्यभाग में ऊपर की ओर स्थित सूर्यकिरणों के संयोग के अभाव होन से चन्द्रबिम्ब में शुक्लाभाव होता है, और वह समय अमान्तकाल होता है। तभी चन्द्र अस्त होता है। उसी समय से शीघ्र गति के कारण से चन्द्र बिम्ब पूर्व दिशा में चलता हुआ जब सूर्य से आगे स्थित होता है तो प्रतिपदा तिथि के अन्त एवं द्वितीयातिथि के प्रारम्भ में चन्द्र बिम्ब के हमारी आँखों द्वारा दृश्य भाग पर सूर्य किरणों के संयोग के कारण से शुक्लारम्भ होता है उसे ही 'चन्द्रोदय' कहते है। इस तरह प्रतिपदा तिथि के दिन के बाद शीघ्रगति वाले चन्द्र बिम्ब का सूर्य बिम्ब से अन्तर बढ़ते जाने के कारण ३० तिथियों में चन्द्र बिम्ब पुन: सूर्यबिम्ब के साथ योग कर लेता है। ३० तिथियों में सूर्यचन्द्रान्तर ३६० अंश हो जाता है। अत: जब ३० तिथियों में सूर्य चन्द्रान्तर ३६० अंश होता है तो १ तिथि में क्या? इस अनुपात से प्रतिपदान्त में चन्द्रोदयकाल में सूर्यचन्द्रान्तर = $\frac{३६०^{\circ} \times १}{३०} = १२^{\circ}$ अंश होते हैं।

अत: सूर्य से १२ अंश के अन्तर पर चन्द्र के रहने पर प्रतिपदा के अन्त में पश्चिम दिशा में चन्द्रोदय एवं सूर्य से १२ अंश पीछे चन्द्र बिम्ब के रहने पर चतुर्दशी तिथि के अन्त में चन्द्रास्त पूर्व दिशा में होता है, इससे स्पष्ट होता है।

इच्छित दिन में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रास्त काल का प्रमाण –

रवीन्द्वो: षड्भयुतयो: प्रागवल्लग्नान्तरासव:।
एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्याविवर लिप्तिका:।।
तन्नाडिकाहते भुक्ती रीवन्द्वो: षष्टिभाजते।
तत्फलान्वितयोर्भूय: कर्तव्याविवरासव:।।
एवं यावत् स्थिरीभूता रवीन्द्वोरन्तरासव:।
तै: प्राणैरस्तमेतीन्दु: शुक्लेऽर्कास्तमयात् परम्।।

अर्थात् शुक्ल पक्ष में जिस दिन सूर्यास्त के बाद चन्द्रास्त का समय जानता हो उस दिन पश्चिमी क्षितिज का सूर्य एवं चन्द्र का अस्तकालिक लग्न बनाकर ६ राशि जुड़े हुए अस्तकालिक सूर्यचन्द्र एवं लग्न दोनों के पूर्व के समान ही भुक्तासूनुनकस्याथे इत्यादि के अनुसार सूर्य एवं लग्न के अन्तराल में आने वाले अन्तरासुओं के समान ही सूर्यचन्द्र एवं लग्न के अन्तरासु का साधन करना चाहिये। यदि सूर्य एवं चन्द्र दोनों एक ही राशिगत हों तो उन दोनों सूर्य एवं चन्द्र में ६ राशि जोड़कर अन्तरासु का साधन करना चाहिये। नाड़ीवृत्त में उन सूर्य एवं चन्द्रान्तर की कलायें अथवा अन्तरासु बनावें। अर्थात् १८०० कला में उस राशि का उदयासुमान प्राप्त होता है तो सूर्य एवं चन्द्र की अन्तरकलाओं

में क्या? इस अनुपात से नाड़ीवृत्त में सूर्य एवं चन्द्रमा के अन्तर असु होंगे। सूर्य एवं चन्द्र की पृथक्-2 कालात्मिका गति को उन दोनों के अन्तरासुओं की घटी बनाकर गुणा करें उसमें ६० का भाग दें भागफल उन दोनों के सूर्य एवं चन्द्र का चालनफल होता है। उन दोनों में अलग-अलग अपने-अपने फल को जोड़े, पुन: उन सूर्य चन्द्र एवं लग्न में ६ राशि जोड़े बार-बार उनके अन्तरासु बनावें। इस तरह तब तक करें जब तक कि सूर्य एवं चन्द्र के अन्तरासु स्थिर न हो जायें। उन स्थिर हुए सूर्यचन्द्रन्तरासुओं से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा सूर्यास्त के बाद क्षितिज के सान्निध्य में आने के कारण पश्चिम में अस्त हो जाता है।

सूर्यास्त के बाद में चन्द्रास्त काल सूर्यास्तकालिक सूर्य एवं चन्द्र का साधन करके, चन्द्रमा में आयन एवं आक्ष दोनों दृककर्मों का संस्कार से चन्द्रास्त लग्न का साधन कर सूर्यचन्द्रास्त लग्न के असुओं के अन्तर करने के विधान से ज्ञात कर सकते हैं। ये सब उदयास्त लक्षणों को जानने वाले विद्वानों के सामने स्पष्ट ही है। लेकिन पश्चिम दिशा में जो राशि जितने समय में अस्त होती है उससे सातवीं राशि उतने ही समय में उदित होती है। इसलिए आचार्य ने सूर्य चन्द्र एवं अस्तकालिक लग्न में ६ राशि जोड़कर सूर्यचन्द्रास्तलग्नकालिक अन्तरासुओं का साधन किया है।

कृष्णपक्ष में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रोदयकाल ज्ञान –

भगणार्धं रवौ दत्वा कार्यास्तद् विवरासव:।
तै: प्राणै: कृष्णपक्षे तु शीतांशुरूदयं व्रजेत्।।

अर्थात् यदि कृष्ण पक्ष में चन्द्रोदय का समय जानने की इच्छा हो तो सूर्यास्त काल के समय के सूर्यस्पष्ट में ६ राशि जोड़कर अस्त लग्न का ज्ञान करना चाहिये। उस अस्त लग्न एवं चन्द्र के अन्तर के असु पूर्वोक्त विधि से ही साधन करने चाहिये। सूर्यास्त के बाद उस अन्तरासु तुल्य समय व्यतीत होने पर चन्द्रोदय होगा।

कृष्ण पक्ष में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रमा क्षितिज से नीचे गया हुआ ही होता है। सूर्यास्त काल के समय स्पष्ट सूर्य में ६ राशि जोड़ने पर अस्तलग्न होता है। अस्त लग्न के उदय के समय से लेकर अस्तलग्न एवं चन्द्रान्तर के असुओं से चन्द्रोदय होगा ही यह उत्पन्न होता है।

चन्द्रश्रृंगोन्नति ज्ञान के लिए भुजकोटिकर्ण साधन –

अर्केन्द्वो: क्रान्ति विश्लेषो दिक्साम्ये युतिरन्यथा।
तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा।।
मध्याह्नेन्दु प्रभाकर्ण संगुणा यदि सोत्तरा।
तदार्कघ्नाक्षजीवायां शोध्या योज्या च दक्षिणा।।
शेषं लम्बज्यया भक्तं लब्धो बाहु: स्वदिंगमुख:।
कोटि: शंकुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रुतिभवेत्।।

अर्थात् सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों एक ही अयन में स्थित हो तो उन सूर्य एवं चन्द्र दोनों की क्रान्तिज्या का अन्तर करें तथा दोनों यदि अलग-अलग अयन में हो तो उन दोनों की क्रान्तिज्या को जोड़े। उस होने

वाले अन्तर या योग को सर्वज्या के रूप में जानना चाहिये।यह सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्तिज्यान्तर या योग सूर्य से जिस दिशा में चन्द्रमा होगा उस दिशा की दक्षिण या उत्तर की जाननी चाहिये। इसका आशय है कि क्रान्ति संस्कार ज्या चन्द्रमा की दिशा की होती है। वह क्रान्ति संस्कारज्या सूर्यचन्द्र की क्रान्तज्यान्तर या योग को अहोरात्र का मध्याह्न अर्थात् सूर्यास्त काल के समय के चन्द्रमा की छाया कर्ण से गुणा करें। यदि वह उत्तर की हो तो इसे अक्षज्या × १२ के गुणनफल में से घटावें तथा दक्षिण की हो तो उस गुणनफल को अक्षज्या × १२ के गुणनफल में जोड़े। इस तरह गुणनफल में से घटाने या जोड़ने पर जो हो उसमें लम्बज्या का भाग दें। ९० अंश – अक्षांश = लम्बांश। इन लम्बांशों की ज्या लम्बज्या। भागफल जो आए वह चन्द्र की दिशा अर्थात् सूर्य से चन्द्रमा जिस दिशा में हो उस दिशा की भुज होती है। १२ अंगुल का शंकु कोटि होती है। २ $\sqrt{\text{भुज}^२ + \text{कोटि}^२}$ = वर्गमूल = कर्ण होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. श्रृंग का अर्थ है –
   क. श्रृंगार ख. सींघ के समान ग. श्रृगाल घ. श्रृंग
2. निम्न में श्रृंगोन्नति का सम्बन्ध किससे है –
   क. सूर्य से ख. चन्द्र से ग. भौम से घ. बुध से
3. शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा किस तिथि तक हमें श्रृंगवत् दिखलाई पड़ता है –
   क. सार्द्ध सप्तमी तक ख. पंचमी तक ग. अष्टमी तक घ. दशमी तक
4. ९०° - अक्षांश = ?
   क. विषुवांश ख. लम्बांश ग. भुजांश घ. क्रान्त्यंश
5. चन्द्रमा कितने कालांश पर पश्चिम दिशा में उदित होता है।
   क. १२ ख.१४ ग.१६ घ.३०
6. चन्द्रमा किस दिशा में अस्त होता है।
   क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण
7. भगण का मान कितना होता है।
   क. ३६० अंश ख. ६० अंश ग. १२० घ. कोई नहीं
8. सूर्य से चन्द्रमा जिस दिशा में हो उस दिशा की क्या होती है।
   क. भुज ख. कोटि ग. कर्ण घ. व्यास

शुक्लता में आधे से कम चन्द्र बिम्ब के होने पर मासादि में पश्चिमी क्षितिज के लगभग और मासान्त में पूर्वक्षितिज के लगभग शृङ्गोन्नति साधन करने की प्रक्रिया सही है। लेकिन संहिताकारों द्वारा मास के प्रारम्भिक चतुर्थ भाग में ही शृङ्गोन्नति के फल का कथन किये जाने के कारण सूर्यांशुपुरुष ने भी सूर्यास्त काल में पश्चिम क्षितिज के आसन्न चन्द्र होने पर शृङ्गोन्नति साधन के लिए भुज कोटि कर्ण साधन किये हैं। इसीलिए यहाँ ''मध्याह्नेन्दु प्रभाकर्ण सङ्गुणा'' लिखा है। उन्होंने सूर्य एवं चन्द्र दोनों को एक ही याम्योत्तर वृत्त में समानान्तर धरातल में मानकर लघुच्छाया कर्ण के गोल की भुजादि साधन की बात कही है।

सूर्यास्त काल में सूर्य के अस्त क्षितिज पर होने के कारण शङ्कु एवं शङ्कुतल दोनों का ही अभाव होने के कारणसे उस की अग्रा के समान ही शङ्कु मूल तथा पूर्वापर सूत्रान्तररुप सूर्य भुज, सूर्यक्रान्तिज्या ही होती है। लम्बज्या–त्रिज्या–अक्षज्या इस अक्ष क्षेत्र का क्रान्तिज्या–अग्र–कुज्या इस अक्ष क्षेत्र के समान होने से अनुपात करने से—

$$\text{अग्रा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{सूर्यक्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{सूर्यभुज है।}$$

चन्द्र के क्षितिज से ऊपर होने से शङ्कु–शङ्कुतल दोनों के ही होने के कारण चन्द्र की अग्रा एवं शङ्कुतल इन दोनों के संस्कार से भुज होता है। तब चन्द्राग्रा

$$= \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{चन्द्रक्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}}।$$

$$\text{चन्द्र शङ्कुतलम्} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{शङ्कु}}{\text{लम्बज्या}}।$$

$$\text{इन दोनों के संस्कार से चन्द्रभुज} = \frac{\text{अन्तरज्या} \times \text{शङ्कु} \mp \text{त्रिज्या} \times \text{चन्द्रक्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}}।$$

सूर्य एवं चन्द्र द्रानों के भुज एक ही दिशा के होने से उनके अन्तर करने पर तथा अलग–अलग दिशाओं के होने पर उनका योग करने से सूर्य एवं चन्द्र दोनों के याम्योत्तर अन्तर स्वरुप चन्द्र की स्पष्ट भुज = स्पभुज =

$$\frac{\text{ज्याअन्तर} \times \text{शङ्कु} \mp \text{त्रिज्या} \times \text{चन्द्रक्रान्तिज्या} \mp \text{त्रिज्या} \times \text{सूर्य क्रा.ज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

$$= \text{अन्तरज्या} \times \text{शं} \pm \frac{\text{त्रि}(\text{चन्द्रक्रान्तिज्या} \mp \text{सूर्यक्रान्तिज्या})}{\text{लम्बज्या}}।$$

लेकिन यह भुज; एवं चन्द्रमा की शङ्कु रुप कोटि होने पर उनका अनुपात करने से १२ कोटि में छायाकर्णगोल की भुज

Scanned with CamScanner

$$= \frac{१२\times अन्तरज्या\times शङ्कु \mp त्रिज्या(\text{ चन्द्रक्रान्तिज्या} \mp \text{सूर्य क्रान्तिज्या})\times १२}{शङ्कु \times लम्बज्या}।$$

यहाँ द्वितीय खण्ड में $\frac{त्रिज्या \times १२}{शङ्कु}$ = छायाकर्ण। तथा प्रथम खण्ड में तुल्य हर एवं गुणों का नाश करने पर कर्णगोलीय स्पष्ट भुज —

$$\frac{१२\times अन्तरज्या \mp (\text{चन्द्रक्रान्तिज्या} \mp \text{सूर्य क्रान्तिज्या})\text{छायाकर्ण}}{लम्बज्या}।$$

यहाँ सूर्य एवं चन्द्र दोनों एक ही उत्तरायण में होने पर यदि सूर्य क्रान्ति से चन्द्रक्रान्ति कम हो तब सूर्य से चन्द्र दक्षिण में होता है, अतः दक्षिण होने से प्रथम खण्ड में धन करें। यदि सूर्य क्रान्ति से चन्द्र क्रान्ति अधिक हो तो चन्द्र सूर्य से उत्तर में होता है अतः द्वितीय खण्ड उत्तर में होने से प्रथम खण्ड में ऋण तथा सूर्य चन्द्र दोनों एक ही दक्षिणायन में हो तथा सूर्य क्रान्ति चन्द्र क्रान्ति से अधिक हो तो सूर्य से उत्तर में चन्द्र होता है, अतः वहाँ प्रथम खण्ड में द्वितीय खण्ड कोा ऋण करते हैं। यदि सूर्य क्रान्ति से चन्द्र क्रान्ति अधिक हो तो सूर्य से चन्द्र दक्षिण में होता है अतः प्रथम खण्ड में द्वितीय खण्ड को जोड़ा जाता है।

सूर्य से चन्द्र जिस दिशा में हो उसी दिशा की भुज होती है। इसीलिए सूर्य चन्द्र के एक ही अयन गत होने से क्रान्त्यन्तर तथा भिन्न दिशा के होने पर उन दोनों का योग इस तरह से क्रान्तिसंस्कार भी सूर्य एवं चन्द्र दोनों के दक्षिणोत्तरान्तरांश ज्ञान के लिए उचित है। सूर्यांशु पुरुष द्वारा कहा गया यह भुज छाया कर्ण गोलवृत्तीय होने से १२ अङ्गुल का शङ्कु ही कोटि होता है। अतः $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$ = कर्ण लघु क्षेत्र में कल्पित किये गये सूर्य एवं चन्द्र बिम्बों का केन्द्रान्तर होता है यह सभी स्पष्ट है।

विशेष— वास्तविक रूप से अपने–अपने गोल में स्थित सूर्य एवं चन्द्र बिम्बों का केन्द्रान्तर जो होता है वही शृङ्गोन्नति साधन योग्य कर्ण होता है। उसे जानने के लिए सूर्य एवं चन्द्र दोनों के केन्द्रगत पूर्वापर समानान्तर दोनों के धरातलों से जो लम्ब रूप याम्योत्तरान्तर होता है उसमें उन दोनों के क्रान्तिज्या संस्कार के समान क्षितिज पर भुज होता है। उन दोनों सूर्य एवं चन्द्र बिम्बों के केन्द्रगत याम्योत्तरवृत्त के समानान्तर धरातलों पर लम्ब रुप पूर्वापरान्तर कोटि होता है। इन दोनों $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$ = कर्ण। अर्थात् शङ्कुमूलान्तर कर्ण होता है। यही कर्ण (शङ्कु एवं मूलान्तर रुप) वास्तविक भुज होता है। तथा सूर्यास्त के समय

Scanned with CamScanner

सूर्यशङ्कु के अभाव होने के कारण केवल चन्द्र शङ्कु (सूर्य एवं चन्द्र केन्द्रगत–गर्भक्षितिज समानान्तर दोनों धरातलों के लम्बरुप) अन्तर कोटि होता है। इन दोनों $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$ = कर्ण= सूर्यचन्द्र केन्द्रान्तर वास्तविक कर्ण होता है। इसकी विस्तार से जानकारी के लिए ''वास्तव चन्द्रशृङ्गोन्नति साधन में वर्णन देख सकते हैं।

Scanned with CamScanner

चन्द्र बिम्ब में शुक्लांगुल साधन –

सूर्योनाशीतगोर्लिप्ता: शुक्लं नवशतोद्धुता:।
चन्द्रबिम्बांगुलाभ्यस्तं हृतं द्वादशभि: स्फुटम्।।

अमावस्या की समाप्ति के समय सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों राशि/अंश/क./वि. में बराबर होने के कारण उनमें अन्तर का अभाव होता है जिससे चन्द्र बिम्ब में शुक्लता का भी अभाव होता है। पूर्णिमा की समाप्ति के समय सूर्य एवं चन्द्र में ६ राशि का अन्तर होता है। उस समय सारा चन्द्र बिम्ब शुक्ल होता है। मध्यम मान से चन्द्र बिम्ब मान १२ अङ्गुल होता है। अतः मध्य में अनुपात से मध्यम शुक्लाङ्गुल लाते हैं। जिसे जानने के लिए — यदि ६ राशि सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर होने पर १२ अङ्गुल चन्द्र बिम्ब शुक्ल होता है तो इष्ट समय के सूर्य एवं चन्द्र की अन्तर कलाओं में क्या? मध्यमशुक्लाङ्गुल =

$$= \frac{\text{१२×सूर्य चन्द्रान्तरकला}}{\text{६ राशि × १८००}} = \frac{\text{१२×सूर्य चन्द्रान्तरकला:}}{\text{१०८०० कला}} = \frac{\text{सूर्य चन्द्रान्तरकला:}}{\text{९०० कला}}।$$

यह मध्यम शुक्लाङ्गुल मध्यमबिम्ब (१२ अङ्गुल चन्द्र बिम्ब मानकर) साधित किया है। परन्तु अपेक्षा स्पष्ट बिम्बमान के शुक्ल साधन की है। उसके साधन करने के लिए— यदि १२ अङ्गुल के चन्द्र बिम्ब से ये मध्यम शुक्लाङ्गुल प्राप्त होता है तो इष्ट चन्द्र बिम्ब में क्या? इस अनुपात से स्पष्ट अङ्गुलादि शुक्ल

$$= \frac{\text{मध्यमशुक्लमान × स्पष्ट चन्द्र बिम्बाङ्गुलात्मक मान}}{\text{१२}} = \text{वास्तविक स्पष्ट}$$

शुक्लम्। यह सूर्यसिद्धान्त में कहा गया शुक्लाङ्गुलानयन सिद्ध हुआ।

यहाँ यदि चन्द्र को भी क्रान्तिवृत्त में गया हुआ मानें तो सूर्य एवं चन्द्रमा के स्थानीय अन्तरवश से शुक्लाङ्गुल लाया जा सकता है परन्तु चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त से शरान्तर तुल्य दूरी पर अपने विमण्डलवृत्त में भ्रमण करने के कारण से स्थानीय अन्तर से वास्तविक शुक्लाङ्गुल लाना उपयुक्त नहीं है। क्योंकि सूर्य एवं चन्द्र का केन्द्र प्रोतवृत्त ही चन्द्र केन्द्र एवं उसका शुक्ल भी होता है। अतः सितवृत्तीयअन्तर से ही शुक्लाङ्गुलानयन उपयुक्त है। उसको जानने के लिए भट्ट कमलाकर द्वारा कहे गये शृङ्गोन्नति साधन में सितवृत्तीय अन्तरांश विधि देखें।

Scanned with CamScanner

श्रृंगोन्नति प्रदर्शनार्थ परिलेख ज्ञान -

दत्वाऽर्कसंज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिंगमुखम्।
तत: पश्चान्मुखीं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमध्यमाम्।।
कोटिकर्णयुताद् बिन्दोर्बिम्बं तात्कालिकं लिखेत्।
कर्णसूत्रेणदिक्सिद्धिं प्रथमं परिकल्पयेत्।।
शुक्लं कर्णेन तद्विम्ब योगादन्तर्मुखं नयेत्।
शुक्लाग्रयाम्योत्तरयोर्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत्।।
तन्मध्यसूत्रसंयोगाद् बिन्दुत्रिस्पृग् लिखेद् धनु:।
प्राग् बिम्बं यादृगेव स्यात् तादृक् तत्र दिने शशी।।
कोट्या दिक्साधनात् तिर्यक् सूत्रान्ते श्रृंगमुन्नतम्।
दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य साऽऽकृति:।।

इच्छानुसार दिन चन्द्र शृङ्ग दिखाने के लिए पट्टिका आदि में सूर्य द्योतक बिन्दु लिखकर, उस सूर्य द्योतक बिन्दु से गणित से आयी हुई स्पष्ट भुज को दिशा के अनुसार देकर, वहाँ से भुजाग्र बिन्दु से पश्चिमाभिमुखी कोटि देकर कोटि का अग्र भाग एवं सूर्य द्योतक बिन्दु पर होकर जाने वाली रेखा जो कर्ण के रूप में होती है, वह सूर्य एवं कोटि के शीर्ष पर संलग्न होती है वह करनी चाहिए। उसके बाद कोटि एवं कर्ण की युति जहाँ होती है उस बिन्दु से ''तात्कालिक चन्द्र बिम्ब की अर्ध त्रिज्या लेकर चन्द्र का तात्कालिक बिम्ब बनाना चाहिए। उस बिम्ब में प्रथम पहले से ही दिये गये कर्ण सूत्र से दिशा की परिकल्पना करनी चाहिए। अर्थात् ''कोट्यग्रमध्य पर जाने वाला ''कर्ण सूत्र लिखित चन्द्रबिम्ब में पूर्वापरा एवं उस पर चन्द्रकेन्द्र पर जाने वाली लम्ब रेखा को याम्योत्तरा जानें। कर्ण के साथ उस बिन्दु का जहाँ योग हो उस स्थान से बिम्ब केन्द्र की ओर गणित से आये हुए अङ्गुलादि शुक्ल देने चाहिए। वहाँ से शुक्लाग्र बिन्दु से याम्योत्तर दोनों रेखाओं के बीच में दो मत्स्याकार बनाने चाहिए। जिनमें एक मत्स्य शुक्लाग्र एवं याम्योत्तर बिन्दु पर जाने वाला तथा दूसरा शुक्लाग्रा एवं उत्तर बिन्दु पर जाने वाला होना चाहिए। उन दोनों मत्स्यों के मुख एवं पुच्छ पर से निकलने वाले जो दोनों मध्य सूत्र हैं, उनका जहाँ योग हों उस योग बिन्दु के अर्थात् केन्द्र से दक्षिणी–उत्तरी तथा शुक्लाग्र इन तीनों बिन्दुओं पर जाने वाला एक चाप बनावें। उस चाप से वह चन्द्र बिम्ब जितना पूर्वी भाग में हो उतना ही उस दिन आकाश में चाँद दिखाई देता है।

अब उन्नत शृङ्ग बताते हैं— कोटिरेखा से दिशा साधन से उस के ऊपर जो तिरछा सूत्र हो उस के अन्त में कोटि को उन्नत कर उस उन्नत की दिशा में शृङ्ग दिखाना चाहिए। इसका आशय है कि कोटिरेखा को पूर्वापरा मानकर उस पर लम्ब रेखा को याम्योत्तरा मानकर उसके अन्त में भुज की मूल दिशा में उत्तर में या दक्षिण में कोटि रेखा को उन्नत कर के विद्वान् को उन्नत शृङ्ग दिखाना चाहिए। इसी तरह आकाश में जैसे शुक्लांश दिखाई देता है वही चन्द्र की आकृति उस दिन होती है।

CS Scanned with CamScanner

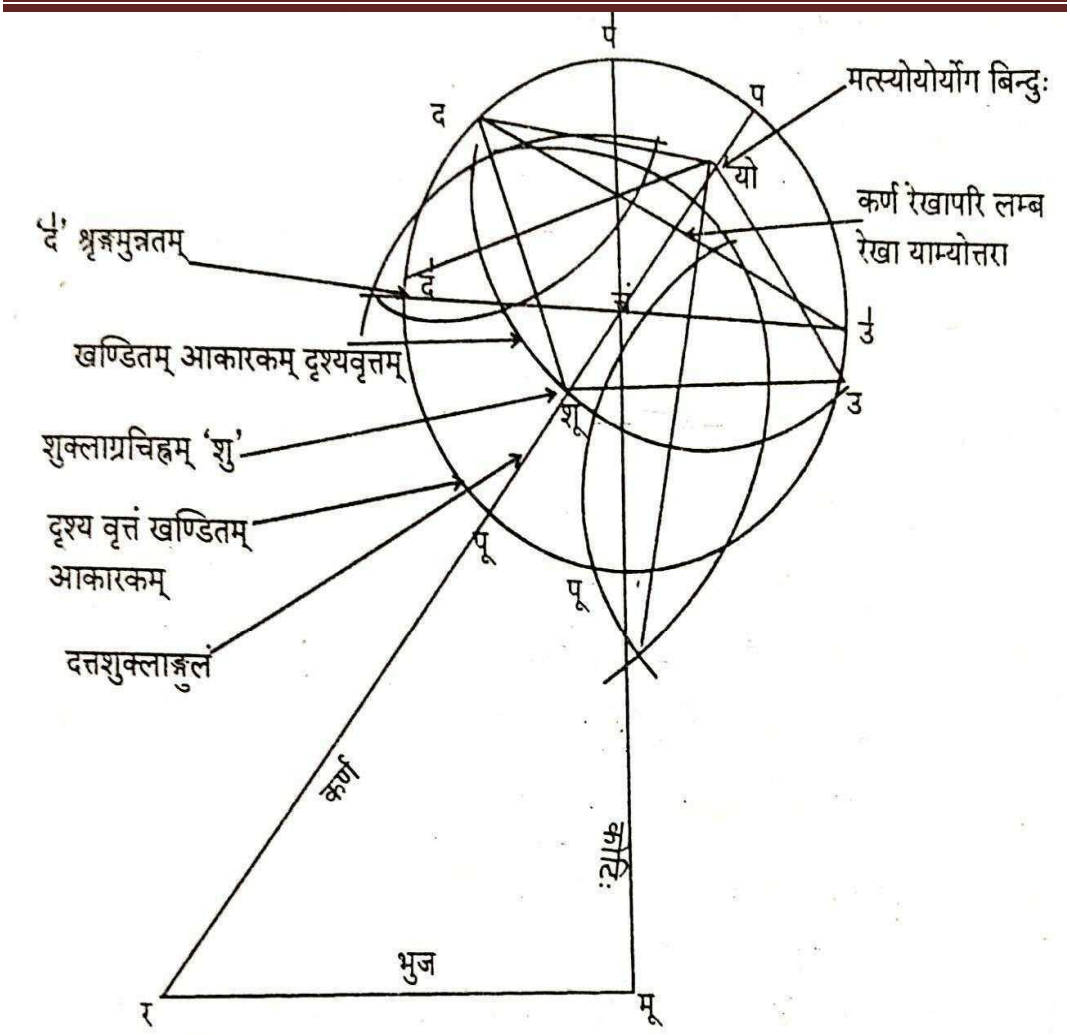

र=सूर्यकेन्द्रम्। र मू = स्पष्ट भुजः। मू=भुजाग्रम=कोटिमूलम्। चंमू = चन्द्रशङ्कः = कोटिः। $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$ = कर्ण = रं च। 'र' कर्णस्य मध्यबिन्दुतः 'चं' = कोट्यग्रगतम् = र चं = कर्णः = सूर्यचन्द्रयोः केन्द्रान्तरम्।

Scanned with CamScanner

यहाँ इस क्षेत्र में द = श्रृंगमुन्नतम्। तत् श्रृंगं मू बिन्दुत: कोटिमूलात् र अर्थात् सूर्यदिग्गतं भवति।

आधे से कम शुक्ल चन्द्र बिम्ब दो शृङ्ग वाला दिखाई देता है। उन दोनों शृङ्गों से युक्त चन्द्र बिम्ब चन्द्रमास के $\frac{१}{४}$ भाग में अर्थात् शुक्ल पक्ष में $७\frac{१}{२}$ तिथि तक दिन की समाप्ति पर तथा कृष्ण पक्ष के (चतुर्थ भाग में) अर्थात् कृष्ण पक्ष की $७\frac{१}{२}$ तिथि बीतने के बाद अमावस्या तक रात्रि के अन्त में दिखाई देता है, अतः तभी शृङ्गोन्नति साधन करना उचित है। दोनों ही स्थितियों में सूर्य स्थित होने पर क्षितिज के लगभग होने पर वहाँ देखने वाले के सामने काँच के समान दिखाई देता है, अतः वैसा ही दिखाने के लिए चित्र में पट्टिकादि पर मध्य में सूर्य संज्ञक बिन्दु किया जाताहै। सूर्य से जिस दिशा में चाँद होता है उसी दिशा में भुज होता है, जिससे सूर्य से चन्द्रमा की दिशा ज्ञात करने के लिए उसी दिशा में भुज लगाया जाता है। चन्द्र से क्षितिज पर लम्ब करने से भुजाग्र से चन्द्रशङ्कु के रूप में पश्चिम की ओर कोटि ऊर्ध्वमुखी जैसी दिखाई देती है। दिये गये चित्र में —

'र' = सूर्यकेन्द्र, र मू = स्पष्टभुज, मू = भुजाग्र = कोटिमूल, चं मू = चन्द्रशङ्कु = कोटि है। $\sqrt{\text{भुज}^२ + \text{कोटि}^२}$ = कर्ण = रं च है। 'र' कर्ण के मध्य बिन्दु से 'चं' = कोटि के अग्र भाग पर गया हुआ = र चं = कर्ण=सूर्यचन्द्र का केन्द्रान्तर है।

यहाँ चित्र में 'र' बिन्दु कर्ण के मूल में कल्पित सूर्य है। कर्णाग्र में चं = कल्पित चन्द्र बिम्ब है। कर्ण एवं कोटि के योग होने के स्थान पर 'चं' केन्द्र

Scanned with CamScanner

में तात्कालिक चन्द्र बिम्ब लिखा जाता है। उस पर कर्ण सूत्र मार्ग से कर्णमूल बिन्दुगत सूर्य चन्द्र बिम्ब को शुक्लता देता है। शुक्लवृत्त का केन्द्र भी कर्णरेखा में होता है, इसी कारण से शुक्लवृत्त में कर्ण रेखा से ही दिशा ज्ञान भी करने के लिए कर्णरेखा में शुक्लाङ्गुल दानकरना सही है। कर्णरेखा पर चन्द्र केन्द्र में जो लम्ब के रूप में याम्योत्तरा रेखा होती है, उससे कटा हुआ चन्द्र बिम्ब ही अपने दृश्य भाग में सूर्य द्वारा प्रकाशित होता है। इसीलिए अपने दृश्यवृत्त में याम्योत्तर बिन्दु तक शुक्ल होता है। उससे शुक्लाग्र याम्योत्तर तीनों बिन्दुओं पर गये हुए वृत्त से खण्डित चन्द्र बिम्ब जैसा होता है, वैसी ही चित्र में चन्द्र बिम्ब की आकृति उस दिन आकाश में दिखाई देती है। इसीलिए यहाँ शुक्लाग्र, दक्षिणी एवं उत्तरी तीनों बिन्दुओं पर जाने वाले वृत्त को बनाने के लिए दोनों मत्स्यों के मध्य सूत्र के योग से वृत्त की रचना करते हैं। यहाँ चित्र में — 'पू' पूर्वी बिन्दु से ''पू शु'' तुल्य शुक्लाङ्गुल दी गई है। शु बिन्दु = शुक्लाग्र चिह्न है। द उ = कर्ण रेखा पर याम्योत्तर रेखा है। शु द, शु उ दोनों बिन्दुओं से एक–एक मत्स्य वृत्त का निर्माण कर उन दोनों मत्स्यों का मध्य रेखा पर जहाँ योग होता है वह 'यो' बिन्दु है। यो बिन्दु से तीनों बिन्दुओं पर गये हुए ''द शु उ'' वृत्त खण्ड से खण्डित दृश्यवृत्त ''द पू उ शु'' आकार का आकाश में दिखाई देता है। यह क्षेत्र में स्पष्ट ही है।

कोटिरेखाग्र पर जो याम्योत्तर रूप में लम्ब रेखा है वह क्षितिज धरातल के समानान्तर है। अतः उस रेखा से जिस दिशा में शृङ्ग उन्नत हो उसी दिशा में धरती पर रहने वाले लोग शृङ्गोन्नति देखते हैं। भुज रेखा पर कोटिरेखा के लम्ब रूप में होने के कारण चन्द्रमा से जिस दिशा में सूर्य होता है उसी दिशा में भुज होने से शृङ्ग उन्नत होता है। जैसे कि चित्र में – कोटि के अग्र भाग में लम्ब के रूप में ''द उ'' याम्योत्तर रेखा 'र मू' के समानान्तर हैं। वहाँ 'द' शृङ्ग उन्नत है। वह शृङ्ग 'म' बिन्दु से अर्थात् कोटि के मूल से ''र'' अर्थात् सूर्य की दिशा में होता है जो स्पष्ट ही है।

Scanned with CamScanner

कृष्णपक्ष में असित भाग (कृष्ण भाग) साधन

कृष्णपक्षे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथाऽसितम्।
दद्यात् वामं भुजं तत्र पश्चिमे मण्डलं विधोः।।

कृष्ण पक्ष में चन्द्र बिम्ब का कितना भाग काले रंग का होगा यह साधन करने के लिए स्पष्ट सूर्य + ६ राशि = योग जो आवे उसे स्पष्ट चन्द्र में से घटावें जो बचे उसकी इसी अधिकार के ९वें पद्य में बताये तरीके से (शेष की कला ÷ ९०० = अङ्गुलादि) शुक्लाङ्गुल साधन करने के समान ही कृष्णाङ्गुल साधन करें। चित्र में भुज को विपरीत अर्थात् सूर्य से चन्द्र दक्षिण में हो तो उत्तर की ओरतथा उत्तर में हो तो दक्षिण की ओर लगावें। तथा चन्द्र बिम्ब को कागज पर या पट्टि आदि पर पश्चिमी भाग में लगावें। इसका आशय है कि कर्ण एवं कोटि की युति पर शुक्ल हो तो अन्य कपाल में चन्द्र बिम्ब को लिखें।

Scanned with CamScanner

पूर्णिमा की समाप्ति काल में सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर ६ राशि होता है। उस समय से ही कृष्ण पक्ष का आरम्भ हो जाताहै। क्योंकि पूर्णिमान्त में चन्द्र बिम्ब पूरा ही शुक्ल होता है जिससे उसमें कृष्णाङ्गुल (कालिमा) का अभाव होता है। पूर्णिमा को सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर जो ६ राशि अर्थात् १८०° होता है वह प्रतिदिन कृष्ण पक्ष में घटता हुआ अमान्तकाल में पूर्णतया समाप्त हो जाता है अर्थात् सूर्य चन्द्र बराबर हो जाते हैं क्योंकि ''दर्शः सूर्येन्द्र संगमः'' इस परिभाषा के अनुसार अमावस्यान्त सूर्य एवं चन्द्र रा./अ/क./वि. में पूर्णतया समान हो जाते हैं, जिस कारण से उनमें पूर्ण रूप से अन्तर का अभाव होता

Scanned with CamScanner

है। अमान्तकाल में पूरा चन्द्र बिम्ब ही कृष्ण होता है। पूर्ण चन्द्र बिम्ब का मान मध्यम मान से १२ अङ्गुल होता है। अतः बीच में अनुपात से कृष्णाङ्गुल साधन अनुपात से होगा ही। पूर्ण चन्द्र बिम्ब के मान में से कृष्णाङ्गुल मान घटाने पर कृष्ण पक्ष में शुक्लाङ्गुल मान जान सकते हैं। कृष्णाङ्गुल मान शुक्लाङ्गुल मान से विपरीत दिशा में दिखाई देने के कारण भुज को विपरीत दिशा में लगाना भी सही ही है। इसी तरह से कृष्ण पक्ष में पूर्वीक्षितिज पर चन्द्रोदय दिखाई देने के कारण परिलेख में विपरीत दिशा में प्रतीति के कारण पश्चिम में चन्द्र बिम्ब लिखा जाता है।

Scanned with CamScanner

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्बन्ध आकाशस्थ चन्द्रमा की स्थिति से है। श्रृंग का अर्थ यहाँ सींघ के समान से लिया गया है। आकाश में

शुक्ल पक्ष के अन्तर्गत चन्द्रमा का बिम्ब बढ़ते हुए दिखलाई पड़ता है तथा अन्तिम तिथि पूर्णिमा को पूर्णबिम्ब दिखाई देता है। वहीं कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कला घटते हुए दिखलाई पड़ता है और अन्तिम तिथि अमावस्या को चन्द्रमा कलाहीन होकर अदृश्य हो जाता है अर्थात् हमें भूसापेक्ष उसके दर्शन नहीं हो पाते। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से सार्द्धसप्तमी तिथि तक चन्द्रमा हमें श्रृंगवत् दिखलाई पड़ता है। फिर उसका आकार अर्धगोलमेव हो जाता है। इसी तरह पूर्णिमा तिथि को वह हमें बिल्कुल गोल दिखलाई पड़ता है।

शुक्ल पक्ष के आरम्भ में अथवा कृष्ण पक्ष के अन्त में चन्द्रमा के प्रकाशित या शुक्ल भाग का आकार श्रृंग की तरह होता है और उत्तर या दक्षिण की तरफ उठा रहता है। चन्द्रमा के आधे से अल्प शुक्ल (श्वेत) भाग की कोटी (उपरी भाग) श्रृंगाकार होता है, तब वहाँ इष्टकाल पर कितनी श्रृंगोन्नति होगी? यह ज्ञान का विषय है। चन्द्रमा का श्रृंगाकार भाग शुक्ल भाग के आधे से अल्प भाग में होता है। यह मासान्तपाद व प्रथम पाद में चन्द्र के आधे से अल्प शुक्ल भाग में संभव होता है। द्वितीय तथा तृतीय (चरण) पाद में ब्रह्मगुप्तादि ने कृष्ण श्रृंगोन्नति साधित की है, उससे आचार्य भास्कराचार्य सहमत नहीं है। वे कहते हैं कि कृष्ण श्रृंगोन्नति मनुष्यों के नेत्रों से दृश्य नहीं होती अत: शुक्ल श्रृंगोन्नति ही प्रसिद्ध है। अत: आचार्य ने मासान्त पाद व प्रथम पाद के लिए कहा है। द्वितीय तृतीय पाद में चन्द्र बिम्बार्ध कृष्ण होने से वहाँ कृष्ण श्रृंगोन्नति होती है। सूर्यास्त के पश्चात् जितनी घटी में चन्द्र अस्त होता है वह गत घटी है तथा सूर्यास्त से जितनी घटी पहले चन्द्रास्त होता है वह ऐष्य घटी है। इसी प्रकार पूर्व क्षितिज में सूर्योदय से गत एवं ऐष्य घटी होती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

श्रृंगोन्नति – आकाशस्थ चन्द्रमा की सींघ सादृश्य स्थिति श्रृंगोन्नति कहलाती है।

शुक्ल पक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट हो उसे शुक्ल पक्ष कहते हैं।

कृष्णपक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट न हो उसे कृष्ण पक्ष कहते हैं।

दर्शान्तकाल – अमावस्यान्त काल।

सूर्यास्त – सूर्य का अदर्शन होना सूर्यास्त कहलाता है।

चन्द्रास्त – चन्द्र का अदर्शन।

सूर्योदय - क्षितिजानुरोधेन सूर्य का दर्शन होना सूर्योदय कहलाता है।

मासान्त – मास का अन्त मासान्त कहलाता है।

तरणि – सूर्य।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ख 3. क 4. ख 5. क 6. क 7. क 8. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रृंगोन्नति से आप क्या समझते है।
2. कृष्णपक्ष में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रोदय काल का ज्ञान कैसे करते है?
3. चन्द्रश्रृंगोन्नति ज्ञान के लिए भुजकोटिकर्ण का साधन कीजिये।
4. शुक्लांगुल का साधन कीजिये।
5. श्रृंगोन्नति प्रदर्शनार्थ परिलेख साधन कीजिये।

इकाई - 2 ग्रहोदयास्त विमर्श

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ग्रहोदयास्त परिचय
2.4 ग्रहों का उदय और अस्त का गणितीय पक्ष
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहोदयास्त विमर्श। इससे पूर्व आपने चन्द्रश्रृंगोन्नति से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहों के उदय-अस्त के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहोदयास्त' का सम्बन्ध ग्रहों के उदय एवं अस्त की स्थिति से है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहों की स्थितियों का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहोदयास्त' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहोदयास्त को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहोदयास्त को समझा सकेंगे।
- ग्रहों की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- कौन सा ग्रह कब उदय होगा अथवा अस्त होगा इसे समझ लेंगे।

2.3 ग्रहोदयास्त परिचय

ग्रहोदयास्त से तात्पर्य ग्रहों के उदय एवं अस्त से है तथा गणित ज्योतिष का यह मुख्य विषय माना जाता है। वस्तुत: सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य उदित और अस्त हो जाते हैं। मध्यमाधिकार में हम मध्यम ग्रह का साधन करते हैं, स्पष्टाधिकार में ग्रह स्पष्ट का साधन करते हैं। वहीं स्पष्ट ग्रह कब उदित और अस्त होगा? अर्थात् क्षितिजानुरोधेन वह कब उदित और अस्त होगा? इसका ज्ञान हमें उदयास्ताधिकार में प्राप्त होता है। अत: प्रस्तुत इकाई में आइए हम ग्रहों के उदयास्त का अध्ययन करते हैं। सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी द्वारा विचरचित सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रहोदयास्त – नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षण की बात करते हैं। वह ग्रहों के नित्य उदयास्त लक्षण की बात करते हुए कहते हैं कि -

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्।।
ऊनोऽधिकः पश्चिममदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहते हैं। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है। इसी प्रकार यदि पश्चिम दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

प्राग्दृग्ग्रह तथा पश्चिम दृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमी क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिन्दु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के उपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहना है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के उपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

सूर्यासन्न अभाव के कारण उदयास्त -

निरूक्तौ ग्रहस्येति नित्योदयास्ताविनासन्नभावेन यौ तौ च वक्ष्ये।
रवेरूनभुक्तिर्ग्रहः प्रागुदेति प्रतीच्यामसावस्तमेत्यन्यथान्यः।।

नित्योदय के अतिरिक्त निरूक्त (ग्रह) के उदयास्त को आचार्य कहते हैं। यदि किसी ग्रह की गति रवि से अल्प हो तो पूर्व दिशा में उदित तथा पश्चिम में अस्त होता है। जैसे मंगल, गुरू, शनि अन्यथा होने पर विपरीत होता है अर्थात् सूर्य से अधिक गति ग्रह पश्चिम में उदित या पूर्व में अस्त होता है। जैसे चन्द्रमा।

मन्द गतिक् ग्रह के निकट जब सूर्य रहता है तो वह ग्रह अदृश्य होता है। वहॉ से सूर्य शीघ्र गति से उससे आगे हटता जाता है तथा मंदगतिक ग्रह पीछे हटता जाता है। अतः इस प्रकार पीछे रहा मन्दगति ग्रह पूर्व दिशा में सूर्योदय से पूर्व दृश्य होता है। यदि मन्दगति ग्रह सूर्य से अधिक आगे स्थित हो तो शीघ्रता से रवि उसके आसन्न जाता है तब सूर्य किरणों से आच्छादित ग्रह पश्चिम में अस्त होता है। इसी प्रकार युक्ति से अधिक भुक्ति वाला ग्रह पश्चिम में उदित तथा पूर्व में अस्त होता है।

बुध शुक्र में विशेष -

ज्ञशुक्रावृजू प्रत्यगुद्गम्य वक्रां गतिं प्राप्य तत्रैव यातः प्रतिष्ठाम्।

ततः प्राक् समुद्गम्य वक्रावृजुत्वं समासाद्य तत्रैव चास्तं व्रजेताम्।।

अर्थात् बुध शुक्र मार्गी होने पर तथा उनकी भुक्ति अधिक होने से पश्चिम में उदित होत हैं तथा वहॉ वक्री होकर वहीं पर अस्त हो जाते है तथा वक्री रहते हुए पूर्व में उदित होते हैं और वहॉ अवक्री होकर अधिक गति होने के कारण पूर्व में ही अस्त हो जाते है।

कालांश ज्ञान -

दस्रेन्दवः शैलभुवश्च शक्रा रूद्राः।
खचन्द्राः तिथयः क्रमेण।।
चन्द्रादितः काललवा निरूक्ता।
ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः।।

अर्थात् चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र तथा शनि के निरूक्त कालांश क्रमाश: 12˚, 17˚, 14˚, 11˚, 10˚, 15˚ होते हैं। वक्री बुध, षुक्र के कालांष इनसे दो कम अर्थात् क्रमश: 12 तथा 8 होते हैं।

कालांश का अर्थ कालात्मक अंश है। छः अंश की एक घटी होती है। एक अंश का दस पानीय पल होता है। सूर्य से अस्त होकर उदय होने में चन्द्रमा को दो घटी लगता है। इससे कम समय में सूर्य की प्रभा से आच्छादित होने से अदृश्य होता है। दो घटी बारह अंश के तुल्य होती है अतः चन्द्रमा के कालांश 12 होते हैं। इतने अंश से अधिक अन्तर पर चन्द्रमा दृष्टयोग्य होता है। मंगल के 17 अंश 2/50 घटियों के तुल्य होते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिए कहे गये कालांश न्यूनाधिक उल्के बिंबों की स्थूल-सूक्ष्मता वश है और बुध-शुक्र के बिम्ब वक्र गति होने पर पृथ्वी से निकटतम होने के कारण अधिक चमकदार तथा बडे होने से उनके कालांश 2 अंश न्यून कहे हैं। क्योंकि तब वे सूर्य से अधिक सान्निध्य में होने पर अस्त होते हैं।

ग्रहोदयास्त समय ज्ञात करना -

यत्रोदयो वास्तमयोऽवगम्यस्तदिग्भवो दृक्खचरो रविश्च।
अस्तोदयासन्नदिने कदाचित् साध्यस्तु पश्चात् तरणिः सषड्भः।।

ग्रह के उदय व अस्त को जब जानना हो तो ग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम उदयास्त के अनुसार पूर्व अथवा पश्चिम दृग्ग्रह की तथा सूर्य की स्थिति उस दिन उदयास्त से कुछ पूर्व ज्ञात करना चाहिये। यदि ग्रह पूर्व में उदित हो तो ग्रह साधन करके उदय लग्न साधन करें। यदि पश्चिम में ग्रह उदयास्त हो तो ग्रह का साधन करके सूर्य में छः राशि जोड़ कर लग्न साधन करे।

उक्तेभ्य उनाभ्यधिका यदीष्टा: खेटोदयो गम्यगतस्तदा स्यात् ।
अतोऽन्यथा वास्तमयोऽवगम्यः प्रोक्तेष्ट कालांशवियोगलिप्ताः।।

खाभ्राष्टभूघ्ना द्युचरोदयाप्ताः खेटार्कभुक्त्यन्तरभाजिताश्च।
वक्रे तु भुक्त्यैक्यहृता अवाप्तास्तदन्तराले दिवसा गतैष्या:।
तात्कालिकाभ्यां रविदृग्ग्रहाभ्यां मुहुः कृतास्ते स्फुटतां प्रयान्ति।।

यहाँ इस श्लोक में ग्रह के उदित होने अथवा उदित हो चुकने का ज्ञान बतलाया गया है। आचार्य का कथन है कि प्राप्त इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह को उदय होना शेष होता है। यदि अधिक हो तो उदय हो चुका होता है। अस्त के समय इससे विपरीत होता है अर्थात् यदि इष्ट कालांश पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह अस्त हो चुका तथा अधिक हो तो अस्त कब होगा। पठित कालांश तथा इष्ट कालांश के अन्तर को १८०० से गुणा करके दृग्ग्रह की आक्रांत राशि के स्वदेशीय उदय असुओं से विभक्त करके प्राप्त कला फल को, ग्रह वक्री हो तो ग्रह तथा सूर्य की गति के अन्तर से पुन: विभक्त करने से तथा मार्गी होने पर दोनों के गति योग से विभक्त करने से प्राप्तफल क्रमश: ग्रह उदित होने के पश्चात् की दिन संख्या तथा उदित होने में शेष दिनों की संख्या होती है।

ग्रहनक्षत्रों के उदयास्त में वैशिष्ट्य –

प्रवह वायु द्वारा पूर्व की ओर गतिशील ग्रहों एवं नक्षत्रों के क्षितिज के सान्निध्य से जो उदयास्त होता है वह उनका प्रतिदिन अपने-अपने सावन दिनों में लेना प्रसिद्ध ही है। यहाँ न्यून किरण वाले ग्रह एवं नक्षत्रों के सूर्य की समीपता के कारण सूर्य की तेज किरणों के प्रभाव से उन ग्रह एवं नक्षत्रों का नहीं दिखाई देना ही उनका अस्त होना तथा सूर्य से जितने अन्तर पर जाने से उनका दिखाई देना ही उदय कहलाता है।

उदयास्त में दिशा ज्ञान -

सूर्यादभ्यधिका: पश्चादस्तं जीवाकुजार्कजा:।
ऊना: प्रागुदयं यान्ति ज्ञशुक्रौ वक्रिणौ तथा।।
ऊना विवस्वत: प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञ भार्गवा:।
व्रजन्त्यभ्यधिका: पश्चादुदयं शीघ्रयायिन:।।

अर्थात् वृहस्पति मंगल एवं शनि वक्री हों या मार्गी सूर्य से अधिक (आगे) होने पर पश्चिम में अस्त होते हैं। तथा सूर्य से पीछे कम होने पर पूर्व दिशा में उदित होते हैं। बुध एवं शुक्र दोनों यदि वक्री हों तो सूर्य से आगे गये होने पर पश्चिम दिशा में अस्त तथा सूर्य से कम होने पर पूर्व में उदित होते हैं। सूर्य की तुलना में अधिक गति होने वाले चन्द्र –बुध एवं शुक्र ग्रह सूर्य से कम होने पर पृष्ठगत होने से पूर्व दिशा में अस्त होते हैं तथा सूर्य से आगे गये होने पर पश्चिम दिशा में उदित होते हैं।

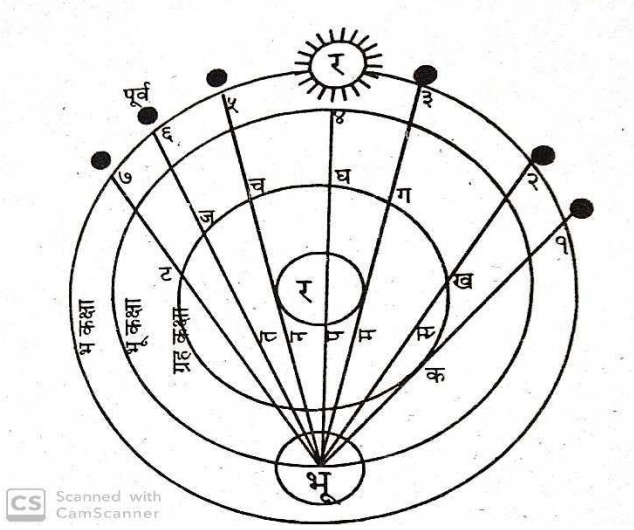

Scanned with CamScanner

बृहस्पति–मंगल एवं शनि ग्रहों की गति सूर्य से कम होती है अतः वे मार्गी हों यावक्री जब सूर्य से आगे हों तो उनकी प्रत्येक दिन की गति कम होने से सूर्य के साथ उनका अन्तर कम होते जाने से दिन की समाप्ति पर स्वकालांश से कम अन्तर होने पर पश्चिम दिशा में अस्त होना कहा गया है। वे अस्तकाल के बाद से लेकर जब सूर्य से पृष्ठगत हों तब अधिक गति वाले सूर्य से उनका अन्तर बढते जाने के कारण से कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर रात्रि शेष में अर्थात् सूर्योदय से पहले ही पूर्व दिशा में उनके उदित होने की बात कहा जाना उचित ही है।

वक्र गति वाले बुध एवं शुक्र की सूर्य से अधिक गति होने से जब वे सूर्य से आगे गये हुए हों तो वक्र गति वाले होने से उनके सूर्य से प्रतिदिन के अन्तर के घटते जाने के कारण कालांश से कम अन्तर होने पर वे दोनों पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। सूर्य से पीछे उन वक्री ग्रहों के होने पर हर दिन पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। सूर्य से पीछे उन वक्री ग्रहों के होने पर हर दिन पश्चिम की ओर गति करते हुए (वक्र गति के कारण) उनका सूर्य से अन्तर बढते जाने के कारण कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर पूर्व में उदय होगा ही।

चन्द्र–बुध–शुक्र मार्गी होने पर सूर्य से इनकी गति अधिक होने से जब सूर्य से ये पीछे होते हैं तो उनकी अधिक गति होने के कारण से प्रतिदिन सूर्य के साथ उनका अन्तर कम होते जाने से पूर्व दिशा में उनका अस्त होना कहा गया है। अस्तकाल के बाद जब वे सूर्य से आगे गये हुए होते हैं तो कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर पश्चिम दिशा में उदय होते हैं।

सूर्य से अधिक या कम ६ राशि के अन्तर पर ही आगे या पीछे गये हुए समझने चाहिए।

Scanned with CamScanner

नवीनाचार्यों के मतानुसार ग्रह एवं पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करते हैं। यहाँ सरलता से जानने के लिए ग्रह भ्रमण मार्ग को वृत्ताकार मानकर उनके उदयास्त की स्थिति को दिखाया जा रहा है—

क्षेत्र परिचय— बनाये गये चित्र में अपनी कक्षा में 'क' बिन्दु पर गया हुआ ग्रह भू निवासियों द्वारा भगोल में १ बिन्दु पर दिखाई देता है। इसी तरह ख,ग,घ,च,ज,ट बिन्दुओं पर अपनी कक्षा में घूमता हुआ ग्रह भूनिवासियों द्वारा आकाश कक्षा में २,३,४,५,६,७ बिन्दुओं पर मार्गीगति जैसा दिखाई देता है। लेकिन जब ग्रह अपनी कक्षा में 'ट' बिन्दु से आगे होने पर त,न,प,म,सं,क बिन्दुओं पर होता है तो भ कक्षा में ७ बिन्दु से लौटकर ६,५,४,३,२,१ बिन्दुओं पर चलता हुआ वक्रगति जैसा दिखाई देता है। इसका विस्तार से विचार ग्रहों की ८ प्रकार की गति विचार प्रकरण में स्पष्टाधिकार में किया जा चुका है। इस क्षेत्र में यहाँ प्रदर्शित विषय का ही वर्णन किया जा रहाहै। भूपृष्ठ से सूर्यकेन्द्रगत सूत्र भ कक्षा में जहाँ लगता है वहाँ ''र'' सूर्यबिम्ब स्थिर भूवासियों द्वारा देखा जाता है। स्वकक्षा में स्थित 'क' बिन्दु गत ग्रह भकक्षा में १ बिन्दु पर दिखाई देता है। वहाँ ग्रह का सूर्य के साथ अन्तर अधिक होने से ग्रह बिम्ब बडा दिखाई देता है। उस स्थान से आगे मार्गीगति से चलते हुए ग्रह के सूर्य के साथ ज्यों–ज्यों अन्तर कम होता जाता है वैसे–वैसे ग्रह क्षीण लगता है। इसी तरह सूर्य से कालांश तुल्य अन्तर होने पर '३' बिन्दु पर वर्तमान ग्रह सूर्य की तेज किरणों के प्रभाव से भू निवासियों को नहीं दिखाई देता। वहाँ ४ बिन्दु की तुलना में ३ बिन्दु पर गया हुआ ग्रह सूर्य से कम होने से पूर्वक्षितिज के लगभग सूर्य होने पर पूर्व दिशा में अस्त होता है। 'र' बिन्दु पर ग्रह के परम अस्त होने के कारण से। वहाँ से मार्गी गति से चलता हुआ ग्रह जब सूर्य से आगे कालांशाओं से अधिक अन्तर पर '५' बिन्दु पर जाता है तो सूर्यास्त होने पर पश्चिम दिशा में क्षितिज से ऊपर ग्रह दिखाई देता है। इसी तरह प्रतिदिन मार्गीगति से चलते हुए ग्रह के अन्तर कीवृद्धि के कारण से ६,७ दोनों बिन्दुओं से उत्तरोत्तर ग्रह बिम्ब बड़ा होता जाता है। तथा अपनी कक्षा में मार्गीगति ही ''ट'' बिन्दु से आगे त, न इत्यादि क्रम से चलता हुआ ग्रह भकक्षा में वक्रगति के समान पश्चिम की ओर जाता हुआ सूर्य के लगभग '५' बिन्दु पर पश्चिम दिशा में अस्त होता है। पुनः 'र' बिन्दु पर उसका परम अस्त है ।वक्री ग्रह ही जब ३ बिन्दु पर गया हो तो रात्रि शेष में पूर्व दिशा में उसका उदय होता है यह क्षेत्र देखने से स्पष्ट है।

यह स्थिति पृथ्वी एवं सूर्य के बीच में गये हुए ग्रह कक्षा में दिखाई देती है, इस तरह बुध एवं शुक्र दोनों के उदयास्त की उत्पत्ति नवीनाचार्यों के मतानुसार

Scanned with CamScanner

भी सूर्य सिद्धान्त के समान ही है। इससे बुध एवं शुक्र मार्गी होकर पश्चिम में उदित होकर,वक्री एवं मार्गी होते हुए पश्चिम में ही अस्त होते हैं। यह सिद्धान्त शिरोमणि में कहा गया भास्कराचार्य का कथन भी सिद्ध होता है।

लेकिन भू के ऊपर की कक्षा में मंगल–गुरु–शनि का सूर्य की स्थिरता के कारण से सूर्य सिद्धान्त में कहे गये उदयास्त नहीं होते, किन्तु जब वे सूर्य से कम अर्थात् पृष्ठगत हों, कालांशाओं के भीतर ही हों तो दिन समाप्त होने पर पश्चिम में उदित दिखाई देते हैं। इसका कारण उदयास्त की दिशा विपरीत होना है, जो नवीनाचार्यों ने भू भ्रमण (सूर्य की परिक्रमा को) स्वीकार कर तथा स्वाङ्ग भ्रमण (स्वाक्षे भूमेः भ्रमणात्) अर्थात् अपनी धुरी पर घूमने के कारण ये उदयास्त प्राप्त होते हैं। अतः अनुमान करते हैं कि प्राचीनाचार्यों ने सूर्य को केन्द्रीभूत ग्रह कक्षा मानी हैं तथा उनका मार्गी एवं वक्री भेद पूर्व में स्पष्टाधिकार में ग्रहों के आठ प्रकार की गति विचार में बता दिया गया है, उसमें देख लें।

Scanned with CamScanner

कालांश ज्ञान की आवश्यकता –

एभ्योऽधिकेः कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शना।
भवन्तिलोके खचरा भानुभाग्रस्त मूर्तयः।।

अर्थात् सूर्य से जितने अन्तर के अंशों पर ग्रह रहने पर अदृश्य होता हो उतने ही अंश उस ग्रह की कालांश कहलाता है। इसलिए ग्रह की इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अधिक होते हैं तो सूर्य से ग्रह के अधिक अन्तर पर स्थित होने के कारण वह ग्रह दृश्य या उदित कहलाता है। तथा पठित कालांशों से इष्ट कालांश कम हो तो सूर्य के साथ ग्रह के अन्तर के न्यून होने के कारण उसका अदर्शन या अस्त होना जो कहा गया है यह सही है, यह उत्पन्न होता है।

नक्षत्रों के कालांश –

स्वात्यगस्त्य मृगव्याध चित्रा ज्येष्ठाः पुनर्वसुः।
अभिजित् ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंशकैः।।
हस्तश्रवणफाल्गुन्यः श्रविष्ठा रोहिणी मघा।
चतुर्दशांशकैर्दृश्या विशाखाऽश्विनिदैवतम्।।
कृतिकामैत्रमूलानि सार्प रौद्रर्क्षमेव च।
दृश्यन्ते पंचदशभिराषाढाद्वितयंतथा।।
भरणीतिष्य सौम्यानि सौक्ष्म्यात् त्रिसप्तकांशकः।
शेषाणि सप्तदशभिर्दृश्यादृश्यानि भानि तु।।

स्वाती, अगस्त्य, लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय ये आठ नक्षत्र सूर्य से १३ अंश पीछे उदित तथा आगे हाने पर अस्त होते हैं। इसलिए इनकी उदयास्त कालांशा १३ अंश है। हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, घनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा, अश्विनी इन नक्षत्रों की उदयास्त कालांशा १४ अंश होते हैं। कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ ये ७ नक्षत्र १५ कालांशाओं से उदयास्त होते हैं। भरणी, पुष्य, मृगशिरा ये ३ नक्षत्र इनके अतिलघु बिम्ब होने से २१ कालांशाओं से दिखाई देते हैं। शेष नक्षत्र शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ब्रह्मा, अग्नि, अपांवत्स १७ कालांशों से उदयास्त होते हैं। नक्षत्रों में भी जिनके बिम्ब स्थूल होते हैं उनकी कालांशा कम एवं लघु होते हैं उनकी कालांशा अधिक होती है। जिस तरह ग्रह के उदयास्त के गत एवं गम्य दिनों का साधन किया जाता है उसी तरह नक्षत्रों के भी उनकी उपर्युक्त कालांशाओं के अनुसार उदयास्त के गतैष्य दिन केवल सूर्य की गति से ही साधित कर सकते हैं क्योंकि नक्षत्रों की गति नहीं होने से केवल सूर्य की गति का ही ग्रहण किया गया है।

''नक्षत्रों के उदयास्त कालांश बोधक सारिणी''

क्र.सं.	नक्षत्रों के नाम	उदयास्त कालांश
१.	स्वाती, अगस्त्य, लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय	१३° अंश
२.	हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा, अश्विनी	१४° अंश
३.	कृत्तिका, अनुराधा, मूल, अश्लेषा आर्द्रा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा	१५° अंश
४.	भरणी, पुष्य, मृगशिरा	२१° अंश
५.	शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद ब्रह्मा, अग्नि, अपाँवत्स	१७°अंश

Scanned with CamScanner

सदोदित नक्षत्र –

अभिजिद् ब्रह्महृदयं स्वातिवैष्णव वासरा:।

अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्नलुप्यन्तेऽर्क रश्मिभि:।।

अर्थात् अभिजित्, ब्रह्महृदय, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा तथा उत्तरभाद्रपद ये ६ नक्षत्र क्रान्तिवृत्त से उत्तर

में शराग्र से अधिक भाग पर स्थित होने के कारण सूर्य की किरणों के प्रभाव से अस्त नहीं होते हैं। पूर्व पद्य में अभिजित् ब्रह्महृदय को १३ अंशों के अन्तर पर होने से ही अभिजितादि की उदयास्त कालांश १३ बतायी गयी है एवं अब कह रहे हैं कि ये अभिजित् ब्रह्हृदय सदोदित नक्षत्र हैं ऐसा कथन क्यों है? यह बता रहे है कि अभिजितादी अपने-अपने तारा पुंजों में जो प्रधान योगतारा होती है वह क्रान्तिवृत्त से उत्तर में अधिक शर के अन्तर पर रहने के कारण उन नक्षत्रों की योगतारा सदोदित होती है।

अभ्यास प्रश्न –

1. चन्द्रमा का कालांश कितना होता है।

   क. १२ अंश ख.१४ अंश ग.१५ अंश घ.१६ अंश

2. वृहस्पति, मंगल एवं शनि वक्री या मार्गी होकर किस दिशा में अस्त होते है।

   क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण

3. सूर्यसिद्धान्त के अनुसार वृहस्पति के उदयास्त कालांश कितने है।

   क. ११ अंश ख.१२ अंश ग. १३ अंश ध. १४ अंश

4. सूर्य से जितने अन्तर के अंशों पर ग्रह रहने पर अदृश्य होता हो उतने ही अंश उस ग्रह की क्या कहलाता है।

   क. उदय ख. अस्त ग. कालांश घ. ग्रहयुति

5. निम्न में सदोदित नक्षत्र हैं।

   क. अभिजित् ख. ब्रह्महृदय ग. स्वाति घ. इनमें सभी

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ग्रहोदयास्त से तात्पर्य ग्रहों के उदय एवं अस्त से है तथा गणित ज्योतिष का यह मुख्य विषय माना जाता है। वस्तुत: सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य उदित और अस्त हो जाते हैं। मध्यमाधिकार में हम मध्यम ग्रह का साधन करते हैं, स्पष्टाधिकार में ग्रह स्पष्ट का साधन करते हैं। वहीं स्पष्ट ग्रह कब उदित और अस्त होगा? अर्थात् क्षितिजानुरोधेन वह कब उदित और अस्त होगा? इसका ज्ञान हमें उदयास्ताधिकार में प्राप्त होता है। अत: प्रस्तुत इकाई में आइए हम ग्रहों के उदयास्त का अध्ययन करते हैं। सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी द्वारा विचरचित सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रहोदयास्त – नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षण की बात करते हैं। वह ग्रहों के नित्य उदयास्त लक्षण की बात करते हुए कहते हैं कि -

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्।।
ऊनोऽधिकः पश्चिमदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहते हैं। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है। इसी प्रकार यदि पश्चिम दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

प्राग्दृग्ग्रह तथा पश्चिम दृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमी क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिन्दु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के उपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहना है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के उपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहोदयास्त – ग्रहों का उदय एवं अस्त को ग्रहोदयास्त कहते हैं।

कालांश – काल सम्बन्धित अंश कालांश कहलाता है। सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य ही उदित एवं अस्त होते हैं।

उदय – ग्रह का दिखलाई पड़ना या दर्शन होना।

अस्त – ग्रह का क्षितिजानुरोधेन अदर्शन होना।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

क्रान्तिवृत्त- कदम्ब से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. क 4. ग 5. घ

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उदयास्त किसे कहते है। वर्णन कीजिये।
2. ग्रहों के कालांश का वर्णन कीजिये?
3. नक्षत्रों के कालांश का उल्लेख कीजिये।
4. उदयास्त को सक्षेत्र स्पष्ट कीजिये।
5. उदयास्त पर निबन्ध लिखिये।

इकाई - 3 ग्रहयुति एवं पातविचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 ग्रहयुति परिचय
3.4 पात विचार
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक पाठ्यसामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहयुति एवं पात विचार। इससे पूर्व आपने चन्द्रश्रृंगोन्नति, ग्रहोदयास्त से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहयुति एवं पात के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहयुति एवं पात' का सम्बन्ध ग्रहण के अन्तर्गत चन्द्रमा की स्थिति से है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहण एवं चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहयुति एवं पात' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहयुति को परिभाषित कर सकेंगे।
- पात को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहयुति' की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- ग्रहयुति एवं पात के गणितीय पक्ष को प्रतिपादित कर सकेंगे।

3.3 ग्रहयुति परिचय

जिन दो ग्रहों की युति के बारे में विचार करना हो उनमें से जिस ग्रह की गति अधिक हो, उस ग्रह के मन्दगति वाले ग्रह से आगे रहने पर उन दोनों मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले ग्रहों की युति पहले ही हो जाती है। अन्यथा शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हो तो (उन दोनों ग्रहों मन्द गति एवं शीघ्र गति वाले का) संयोग आगे होगा। ऐसा जानना चाहिये। लेकिन इस तरह से विचार तभी होता है जब दोनों ग्रह मार्गी हों। वक्र गति वाले ग्रहों में युति इससे विपरीत समझना चाहिये। अर्थात् वक्र गतिवाला शीघ्रगति ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हों तो उन दोनों ग्रहों की युति पूर्व में ही हो जाती है एवं शीघ्र गति वाला ग्रह मन्द गति वाले ग्रह से आगे हो तो उनकी युति आगे होगी।

जिन दो ग्रहों की युति का विचार करना हो उनमें से एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा वक्री हो तो उसकी वक्रगति होने के कारण मार्गगति वाले ग्रह से अधिक होने पर उन दोनों ग्रहों की युति मार्गी एवं वक्री की पहले ही हो जाती है। वक्रगति वाला मन्द ग्रह शीघ्रगति वाले मार्गी ग्रह से आगे होने पर उन दोनों ग्रह की युति आगे होगी। ऐसा जानना चाहिये।

स्पष्ट ग्रह ही मनुष्यों द्वारा देखे जाने योग्य होने के कारण उनकी स्पष्ट गति ही ग्रहण करनी चाहिए। ग्रहों की भिन्न-भिन्न गति होने के कारण से जिन दो ग्रहों की युति का विचार करते हैं उनमें से कोई एक मन्द गति वाला तथा दूसरा शीघ्र गति वाला होगा ही। इसीलिए उन दोनों ग्रहों के मार्गी होने के कारण शीघ्र ग्रह यदि मन्द ग्रह से अधिक हो तो वह शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करके आगे गया हुआ होने से उनका योग गत हो चुका अर्थात् उनकी युति पहले ही हो गई, यह स्पष्ट हुआ।

यदि शीघ्र गति ग्रह मन्द गति ग्रह से कम हो तो मन्द गति ग्रह से पीछे होने के कारण शीघ्र गत ग्रह अधिक गति से चलता हुआ मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करेगा, इससे उनका योग आगे होगा यह स्पष्ट हुआ। यदि मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले दोनों ग्रह ही वक्री हों तो वे दोनों ही वक्री गति होने से पश्चिम की ओर चलते हैं। तब शीघ्र ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम होने पर शीघ्र गति वाला वक्री ग्रह तेज गति से चलता हुआ मन्दगति वाले वक्री ग्रह को पकड लेगा अर्थात् उसके समान हो जायेगा, अतः उन दोनों वक्री ग्रहों की युति आगे होगी। यह सिद्ध हुआ। यदि इन दोनों ग्रहों में एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा ग्रह वक्री हो तो उन दोनों में वक्री ग्रह के मार्गी ग्रह से अधिक होने से पश्चिम की ओर चलता हुआ वक्री ग्रह, पूर्व की ओर चलते हुए मार्गी ग्रह से आने वाले समय में योग करेगा। इसलिए दोनों का योग भावी होगा यह सिद्ध हुआ।

यहॉ राशियों को पूर्वादि क्रम से स्थापित करने से ऐसा है। राश्यादि मान से ग्रह कम या अधिक होने की कल्पना किये जाने के कारण किसी समय मीन राशि में ग्रह होगा तो यह ग्रह मेष राशि में स्थित ग्रह की अपेक्षा अधिक माने जाने में आपत्ति होगी। इसलिए जो ग्रह अधिक पूर्व में होगा वह अधिक तथा पश्चिम में होने वाले ग्रह को न्यून माना जायेगा परन्तु यह 6 राशियों के अन्तर पर ही जानना चाहिए।

ग्रहयुति वचिार में गतैष्यदिनादि साधन -

ग्रहयोः युतौ तुल्यत्वसाधनार्थं गतैष्य दिनादि कथनम्।
ग्रहान्तरकलाः स्वभुक्तिलिप्तासमाहताः।।
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोम विलोमयोः।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन् भुक्तियोगेन भाजयेत्।।
लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति।
विपर्ययाद्वक्रगत्योरेकस्मिंस्तु धनव्ययौ।।
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगण संस्थितौ।

विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादि फलमिष्यते।।

अर्थात् द्वयोः ग्रहयोरन्तराभावस्य नाम युतिः। अतः युति काले तौ ग्रहौ तयोरन्तराभावात् सर्वावयवेन तुल्यौ भवतः।

जिन दो ग्रहों की युति का विचार करना हो उनके अन्तर की कलाओं को अलग रखें। इन दो जगह रखी हुई अन्तरकलाओं को अपनी-अपनी कलादि गति से गुणा करें। इस आये हुए दोनों स्थानों के गुणनफल में दोनों ही मार्गी ग्रह या दोनों ही वक्री ग्रहों की गतियों के कलात्मक अन्तरमान का भाग दें। यदि दोनों ग्रहों में से कोई एक ग्रह ही वक्री हो तो उन ग्रहों की अन्तरकलाओं को अपनी-अपनी गति से गुणा करें एवं उस गुणनफल में दोनों ग्रहों की गति कलाओं के योग का भाग दें। जो भी भाग देने पर भागफल आयेगा वह कलादि होगा। इस भागफल को यदि ग्रहों की युति पहले हो गयी हों तो उन-उन ग्रहों में से घटा दें एवं युति आगे होने वाली हों तो उन-उन ग्रहों में जोड़ दें। इस प्रकार दोनों ही ग्रहों की मार्गी होने पर करें। यदि दोनों वक्रगति के हों तो योग के गति होने पर उन-उन दोनों ग्रहों में जोड़ने से तथा यदि योग आगे होने वाला हो तो उन दोनों ग्रहों में से उस भागफल को घटावें। यदि दोनों ग्रहों में से कोई एक वक्री हो तो उस भागफल को उनका योग गत होन पर उन ग्रहों में जोड़ दें तथा योग आगे होने पर उन ग्रहों में से भागफल घटा दें अर्थात् वक्री ग्रह में उस फल को योग आगे होने वाला हो तो वक्री ग्रह में उस भागफल को घटावें तथा मार्गी ग्रह में उस भागफल को जोड़ें। इस तरह करने पर राश्यादि विभाग में गये हुए वे दोनों ग्रह जोड़ने से सब प्रकार से समान हो जावेंगें। उन दोनों ग्रहों का अन्तर पूर्व में बताये गये अनुसार दोनों की मार्गी या दोनों की वक्री गति होने पर दोनों की गत्यन्तर कलाओं को मार्गीग्रह होने पर दोनों के अन्तर से एवं वक्री में गतियों का योग जो हो उससे भाग देकर जो फल प्राप्त हो वह गत योग होने पर गत दिन तथा आगामी योग होने पर एष्य दिन कहलाते हैं। उतने दिन पूर्व योग हो गया या इतने दिन बात योग होगा यह कहना चाहिए।

दो ग्रहों के अन्तर का अभाव युति होता है। अतः युति के समय दोनों ग्रहों का अन्तराभाव होने से वे दोनों सभी तरह से समान होते है। इच्छित दिन की युति से पहले या बाद में उन दोनों ग्रहों में अन्तर होता है। अतः दोनों ग्रह अलग-अलग कितने संस्कार करने से समान होंगे, यह जानने का यहॉ प्रयास करते हैं। यदि दोनों ग्रह ही वक्री या मार्गी हों तो उनके एक दिन में अन्तर गत्यन्तर तुल्य होने से यदि ग्रहों के गत्यन्तर तुल्य अन्तर से ग्रहों की पृथक्-पृथक् गतिकला के समान चलन प्राप्त होता है तो अभीष्ट ग्रहान्तर कलाओं में क्या। इस अनुपात से ग्रहान्तर कला सम्बन्धि अलग-अलग ग्रह का चालन - ग्रहगतितुल्य चलन × इष्टग्रहान्तर

गतियोगतुल्यान्तर

योग के गति होने पर मार्गी ग्रह आगे एवं वक्री ग्रह पीछे होता है। इसलिए चालन फल को मार्गी ग्रह में से घटाया एवं वक्री ग्रह में जोड़ा जाता है। योग गम्य आगामी होने पर मार्गी ग्रह पीछे एवं वक्री ग्रह आगे होता है। इसलिए मार्गी ग्रह में जोड़ने से एवं वक्री ग्रह में से घटाने पर दोनों ग्रह समान होंगे।

गतैष्य दिनादि साधन की उपपत्ति - एक दिन में युति करने वाले दो ग्रहों का अन्तर गत्यन्तर तुल्य या गति योग तुल्य होता है। यदि गत्यन्तर कलाओं से या गति योग कलाओं से एक दिन हो तो अभीश्ट ग्रहान्तर कलाओं से क्या। इस अनुपात से अभीश्ट ग्रहान्तर सम्बन्धि दिनादिफल - ग्रहान्तरं/गत्यन्तरं, या गतियोग। यदि योग गत हो तो इतने दिन पूर्व युति हो गयी एवं गम्य योग होने पर इतने बाद में युति होगी यह उपपन्न हुआ। लेकिन इस अनुपात से चालन फल तभी सही होगा जब युति अभीश्ट दिन के लगभग हों अन्यथा ग्रह गति प्रतिदिन की विलक्षण होने से अनुपात एवं उसका फल वास्तविक होता है अतः असकृत्कर्म से ही इसके सही होने की सम्भावना होती है, इसका अधिक विस्तार करने की आवष्यकता नहीं है यही पर्याप्त है।

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित युतिकालज्ञान -

दिवौकसोरन्तरलिप्तिकौघाद्गत्योर्वियोगेन हृताद्यदैकः।
वक्री जवैक्येन दिनैरवाप्तैर्याता तयोः संयुतिरल्पभुक्तौ।।

अर्थात् अभीष्ट दिन के दो ग्रहों का अन्तर ज्ञात करके उसको दैनिक गति के अन्तर से विभक्त करने से और यदि उनमें से एक वक्री हो तो उनकी दैनिक गति के योग से विभक्त करने से उनकी युति होने का समय प्राप्त होता है। यदि अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से अल्प हो तो दोनों ग्रहों की युति हो चुकी होती है। यदि दोनों ग्रह वक्री हो और उनमें से अल्पगति ग्रह दूसरे अल्प हो तो उनकी युति आगे होगी अन्यथा होने पर युति हो चुकी होती है।

उपपत्ति - यदि दोनों ग्रह एक दिशा में चल रहे हों तो उनकी गति का अन्तर उनके प्रतिदिन का अन्तर होता है। यदि एक आगे पूर्व की ओर जाता हो तथा दूसरा दूसरी दिशा में पीछे पश्चिम की ओर जाता हो तो उनकी गति का योग दोनों के बीच प्रतिदिन का अन्तर होगा। अतः उनका अनुपात करते हैं कि यदि एक दिन में दोनों ग्रहों में इतना अन्तर होता है तो दोनों ग्रहों की स्थिति की अन्तर कला में कितने दिन होंगे? लब्ध दिन संख्या युति के दिनों की संख्या होगी। यदि अल्पगति ग्रह अथवा वक्री अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से न्यून हो तो उसका दूसरा ग्रह का अतिक्रम करता हुआ आगे चला गया है। यदि दोनों वक्री हो तो इससे विपरीत स्थिति होने से वे परस्पर युति करते हैं। उपरोक्त बात को और स्पश्ट करके बताते हैं। दो ग्रहों की स्थिति के अन्तर की कलाओं को उनकी गति के अन्तर की कलाओं से विभक्त करने से प्राप्त फल दिन संख्या होती है, उपर बताये अनुसार। अब यदि अधिक

गति वाला ग्रह अल्पगति वाले ग्रह से अधिक रहे तो पूर्व गत दिनों में ग्रह युति हो चुकी यह समझना चाहिये। यदि अल्पग्रति ग्रह अधिक गति ग्रह से अधिक हो तो पूर्व प्रकार से प्राप्त दिवस संख्या में ग्रह युति ऐष्य समझनी चाहिये। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो विपरीत होता है अर्थात गतयुति, ऐष्य होती है तथा ऐष्य युति गत युति होती है। यदि दोनों ग्रह में एक वक्री ग्रह दूसरे मार्गी से अल्प हो तो पूर्व प्राप्त दिनों में युति गत कहनी चाहिये। यदि यहॉ वक्रीग्रह अधिक हो तो युति ऐष्य समझनी चाहिये।

युति साधन का उद्देश्य -

भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता।
स्वमार्गणाः प्रयान्त्येते दूरमन्योऽन्यमाश्रिताः।।

वास्तविक रूप से ये ग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं में गये हुए एक से दूसरा आकाष में अधिकान्तर पर स्थित होते हुए चलते रहते है। अतः उनका योग असम्भव है। लेकिन अत्यन्त दूर होने पर भी युतिकाल में दोनों ग्रह एक ही जगह गये हुए दिखाई देते हैं। उन ग्रह योग का दर्शन लोगों के लिए यथासम्भवशुभाशुभ फल देते हैं। इसीलिए सूर्यांशपुरूष ने लोगों के लिए शुभाशुभ फल के ज्ञान के लिए इन ग्रहों की युति की कल्पना प्रस्तुत की है। ग्रहयुति भेदों के फल संहिता ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है।

ग्रहयुतिसाधन में विशेषता -

तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपौ च ततस्तयोः।
दिक्तुल्ये त्वन्तरं भेदे योगः षिश्टं ग्रहान्तरम्।।

दृक् कर्मसंस्कृत दो ग्रहों के अन्तरवश पुनः ग्रहान्तर कलाओं को अपनी-अपनी गति की कलाओं से गुणा करके करने के प्रकार में कहे गये तरीके से युतिकाल के युतिकारक दोनों ग्रहों को करके फिर उन दोनों युतिकालिक ग्रहों से पूर्वोक्त रीति से षर साधन करें, दोनों युतिकारक ग्रहों का शर एक ही दिशा का होने पर उनका अन्तर तथा भिन्न दिशाओं का होने पर उनका योग करना चाहिए। इस प्रकार से योग या अन्तर करने पर जो आवे वह एक ही कदम्ब प्रोतवृत्त में उन दोनों ग्रहों का दक्षिणोन्तर अन्तर होता है।

युतिकाल में राशि, अंश, कला विका में दो ग्रहों के समान होने से उन दोनों को क्रान्तिवृत्त में एक ही स्थान होता है। उन दोनों के शर एक कदम्बप्रोतवृत्त गत होते हैं। अतः उन दोनों के शर एक दिशा के होने पर उन दोनों के शरों का अन्तर करने पर तथा भिन्न दिशाओं के होने पर दोनों शरों का योग करने पर जो हो वही उन दोनों ग्रहों का दक्षिणोन्तरान्तर होता है। जब यह दक्षिणोत्तरान्तर परमाल्प हो तो पूर्वापर अन्तर का अभाव होने से उन दोनों ग्रहों की युति सिद्ध होती है।

लेकिन कदम्ब सूत्र में ही उन दोनों ग्रहों का दक्षिणोत्तरान्तर परमाल्प होता है। इस कथन में प्राचीन आचार्यो को सन्देह है युति नाम ही जब आकाष में दोनों का अत्यन्तर अल्पान्तर जो प्रायः कदम्ब सूत्र में दोनों ग्रहों के स्थित होन पर ही होता है। इस भास्कर वचन में प्रायः पद का उपादान जाना जाता है। अतः ग्रहण में जब कल्पित विमण्डल में भूभा एवं चन्द्र बिम्ब का परमाल्पान्तर साधित किया जाता है। उसी तरह अन्य ग्रहों में से एक को स्थिर मानकर उस से दूसरे के कल्पित विमण्डल में जो लम्ब होता है वहॉ उन दोनों का परमाल्पान्तर समझना चाहिए।

भूमौग्रहयुति दर्शन -

छायाभूमौ विपर्यस्ते स्वच्छायाग्रे तु दर्शयेत्।
ग्रहः स्वदर्पणान्तः स्थः शंक्वग्रे सम्प्रदृश्यते।।

अर्थात् छाया साधन के लिए जो भूमि काम में ली जाती है उसी को छाया भूमि कहते हैं। छायाभूमि को पानी की सतह के समान समतल कर विपरीत दिशा में स्वछायाग्र पर ग्रह को दिखाना चाहिए। इसका आषय है कि समतल की गई भूमि पर दिक् साधन कर के गणित से आयी हुई छाया को पूर्वकपाल में ग्रह होने पर पश्चिमाभिमुख, एवं परकपाल में ग्रह होने पर पूर्वाभिमुखी ग्रहछाया को दिक्मध्य से ग्रह कपाल मुख की ओर देनी चाहिए। वहॉ से छायाग्रगत में दर्पण में या जल में ग्रह के प्रतिबिम्ब को दिंगमध्यगत शंकु के अग्र भाग से छायाकर्णमार्ग से नीचे दृष्टि से दिखाना चाहिए।

स्वछायाग्र में स्वदर्पण के अन्तर स्थित ग्रह का प्रतिबिम्ब शंक्वग्र में लगा हुआ दिखाई देता है। अर्थात् शंकु शीर्ष लग्नछायाकर्ण मार्ग से छायाग्रत दृष्टि से शंकु के अग्रभाग पर गये हुए जैसे ग्रह बिम्ब को लोग देखते हैं।

अपसव्ये विग्रहं बूर्यात् संग्रामं रश्मिसंकुले।
लेखनेऽमात्यपीड़ा स्यात् भेदने तु धनक्षयः।।

मंगलादि पॉच ताराग्रहों का बिम्ब छोटा होने के कारण इन्हें तारा ग्रह कहा जाता है। इन पॉचों तारा ग्रहों में से किन्हीं दो के स्पर्श होने मात्र से इनका उल्लेख नामक युद्ध कहलाता है।

युतिकाल में यदि दोनों युतिकारक ग्रहों का शरान्तर मानैक्यखण्ड तुल्य हों तो उन दोनों ग्रहों के बिम्ब के स्पर्श मात्र होने से उनका उल्लेख नाम का युद्ध कहना सार्थक ही है।

भेद युद्ध - दो तारा ग्रहों में भेद होने पर भेद कहा जाता है। उन दोनों युतिकारक ताराग्रहों के मानैक्यार्ध से कम शरान्तर होने से एक ग्रह का बिम्ब दूसरे ग्रह के बिम्ब को ग्रहण के जैसे ढक लेता है अतः उसका भेद युद्ध नाम रखा जाना भी सही है।

अंशुविमर्दाख्य युद्ध- दोनों युतिकारक ग्रहों के आपस में किरणों का योग होने पर अर्थात् उन दोनो

का शरान्तर मानैक्यार्ध से अधिक होने पर भी आपस में उन दोनों की किरणें मिलती है। अतः इसे अंशु विमर्दाख्य नामक युद्ध कहा जाता है। जो उचित है।

अपसव्य युद्ध - दोनों ग्रहों का युतिकारकों का शरान्तर 1 अंष अर्थात् 60 कला से कम होने पर परन्तु दोनों का मानैक्यार्ध अधिक होने पर यदि एक ग्रह का बिम्ब लघु हो तो अपसव्य नामक उन दोनों ग्रहों का युद्ध होता है। लघु बिम्ब को महद् बिम्ब द्वारा आक्रामित किये जाने से इस युद्ध को अपसव्य युद्ध कहा जाना उचित ही है।

समागम युद्ध - दोनों ग्रहों के बिम्ब महान हों तथा दोनों ग्रहों का शरान्तर एक अंश से अधिक हों तो उन दोनों का समागम नामक युद्ध होता है। युद्ध कहे जाने में कोई आश्चर्य नहीं है।

भार्गव के अनुसार युद्धों के फल - यदि ग्रहों का अपसव्य युद्ध हो तो प्रजा में विग्रह, अंशुविमर्दाख्य युद्ध होने पर परस्पर युद्ध उल्लेख नामक युद्ध हो तो मन्त्री को पीड़ा भेद युद्ध होने पर धनक्षय होता है।

3.4 पात विचार

सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि पात किसे कहते हैं? इसका उत्तर है कि जो लोगों के मांगलिक कार्यों को गिराता है, उसे पात कहते हैं। पात की उत्पत्ति सूर्य एवं चन्द्रमा के कारण होती है। सूर्य एवं चन्द्रमा की समान क्रान्ति होने पर उनकी स्थित से नाम के अन्तर अभाव होने से विभिन्न तरह के पात होते हैं। पात के अनेक लक्षण भी होते हैं।

वैधृतिव्यतीपात लक्षण -

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिध:।।
विपरीतायन गतौ चन्द्रार्कौ क्रान्ति लिप्तिका:।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धितयोर्युतौ।।

जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों उत्तरायण या दक्षिणायन एक ही अयन में हो तो उन दोनों के राश्यात्मक सूर्य एवं चन्द्र को जोड़ने पर यदि योग १२ राशि के बराबर हो, उन दोनों की क्रान्ति भी से समान हो तो वैधृत नामक पात होता है। चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों में से सूर्य यदि उत्तरायण में हो तो चन्द्र दक्षिणायन में हो तथा चन्द्र उत्तरायण में हो तो सूर्य दक्षिणायन में हो तो सूर्य एवं चन्द्र दोनों के राश्यात्मक योग करने पर जो आये वह यदि ६ राशि के समान हो तथा उन दोनों की क्रान्ति की कलायें भी समान हो तो व्यतीपात नाम का पात होता है। इसका आशय है कि एक ही अयन एवं गोल में क्रान्ति समान होने पर भी पात नहीं होता है।

भास्कराचार्य जी का मत –

व्यतीपातोऽयनभेद गोलैकत्वेऽर्कचन्द्रयो: क्रान्त्यो:।
साम्येवैधृत एकायनेऽन्यदिगपक्रम समत्वे।।

अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति बराबर होने का नाम पात है। सायन मेष एवं सायन तुलादि से क्रान्ति की गणना होती है। सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति बराबर होने पर उन दोनों की भुज भी समान होती है। और जब सूर्य एवं चन्द्र समान होते हैं एवं उनकी भुज भी समान होती है तो दोनों की क्रान्ति बराबर होती ही है।

पात का अशुभफल –

तुल्यांशु जालसम्पर्कात् तयोस्तु प्रवहाहत:।
तद्दृकक्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते।।

सूर्य एवं चन्द्रमा की क्रान्ति जिस समय समग्र हो उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा की समान किरणों के आपस में मिलने के कारण से सूर्य एवं चन्द्रमा की केन्द्र रूपी दृष्टियों के एक दूसरे के सामने होने से उनका अत्यन्त तेज होता है। यह तेज ही 'अग्निरूप पात' होता है। जिसे खगोल में बहने वाली प्रवह नामक वायु और अधिक प्रदीप्त कर देती है, जिससे यह पात संसारवासियों के लिए अशुभफल का संकेत देने वाला होता है। इसका आशय हुआ कि यह जो वह्निपात है वह संसार के प्राणियों के लिए अमंलकारी होता है। इसीलिए मांगलिक कार्यों में इन पातों का त्याग कर देना चाहिए ऐसा कहा गया है। वास्तविक रूप में चन्द्रमा में स्वयं का तेज तो होता ही नहीं है वह सूर्य की किरणों के संयोग से ही प्रकाशित होता है। खगोल की दृष्टि से देखने पर सूर्य एवं चन्द्र की कक्षाओं के उध्वधि: अन्तर के अत्यधिक होने के कारण सूर्य एवं चन्द्र की समान किरणों का योग तो किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। परन्तु संहिताकारों ने अपने संहिता ग्रन्थों में सूर्य एवं चन्द्र दोनों की क्रान्ति समान होने पर ही अशुभफल की कल्पना की है।

पात का स्वरूप –

स कृष्णो दारूणवपुर्लोहिताक्षो महोदर:।
सर्वानिष्करो रौद्रो भूयो भूय: प्रजायते।।

अर्थात् पात अग्निपुरूष जैसा है, इसका रंग काला है, विकराल शरीर है, लाल नेत्र है, लम्बा उदर है, अत्यन्त भयानक है। संसार के समस्त जीव जन्तुओं के लिए अनिष्टकारक है। प्राय: एक मास में दो बार यह पात होता है। यहॉ सूर्य एवं चन्द्रमा की क्रान्ति बराबर होने पर जो पात कहा गया है वह एक चान्द्रमास (शुक्लपक्ष प्रतिपदा से अमान्त तक) में दो बार सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति समान होने से

होता है। परन्तु चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति एवं सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति नियम से समान नहीं होती, इसका कारण चन्द्र शर है। इसीलिए जब सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति बराबर होने से जो स्पष्ट पात होता है, उसका कोई समय निश्चित नहीं है।

पात की स्थिति काल का फल –

आद्यन्त कालयोर्मध्य: कालो ज्ञेयोऽतिदारूण:।
प्रज्वलज्जवलनाकार: सर्वकर्मसु गर्हित:।।
एकायनगतं यावदर्कन्द्वोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्म विनाशकृत्।।
स्नानदानजयश्राद्धव्रतहोमादिककर्मभि:।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत् कालज्ञानतस्तथा।।

अर्थात् पात के आदि काल एवं अन्त के बीच के काल को पात का मध्यकाल कहते हैं एवं यह पात का जो मध्यकाल होता है वह अत्यन्त कठिन फल देने वाला होता है। अर्थात् दुष्ट फल देता है। यह पात का जो मध्यकाल है, वह धधकती हुई आग के समान होन से सभी विवाहादि शुभ कामों में निन्दित है। सूर्य एवं चन्द्र दोनों के बिम्बों की केन्द्रीय क्रान्ति समान होने का समय सूक्ष्म मध्यकाल होने से निन्दित है। अथवा समस्त पात स्थिति का काल निन्दित है। सूर्य एवं चन्द्र दोनों के बिम्बों का जिस समय एक रूप जैसा जितने समय तक रहे, एक ही मार्ग में उत्तरायण या दक्षिणायन में होता है तब तक अर्थात् जब सूर्य एवं चन्द्र दोनों के बिम्बों का एक ही जगह पर जब क्रान्त्यन्तर उन दोनों के मानैक्यार्ध तुल्य हों तब तक ही यह पात मध्यकाल सम्भव है। वह पात काल सभी का विनाश करने वाला होता है। इसी कारण से से समस्त पात के समय स्थिति को शुभ कार्यों में निन्दित माना गया है।

पात में विशेष विचार –

रवीन्द्वोस्तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा।
द्विर्भवेद्धि तदा पात: स्यादभावोविपर्ययात्।।

नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्तों के योग होने के स्थान के समीप में जब सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति दो बार समान हो तो निश्चित रूप से पात होता है। यदि सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति दो बार बराबर न हो तो पात का अभाव होता है अर्थात् तब पात नहीं होता।

अभ्यास प्रश्न –

1. द्वयोः ग्रहयोरन्तराभावस्य नाम किम्?

क. व्यतीपात ख. युति: ग. पात: घ. वैधृति

2. छाया साधन के लिए जो भूमि काम में ली जाती है उसे क्या कहते हैं

   क. छाया भूमि ख. भूभा ग. व्यतीपात घ. अपसव्य

3. जो लोगों के मांगलिक कार्यों को गिराता है, उसे क्या कहते हैं?

   क. पात ख. युति ग. ग्रहयुति ध. वैधृति

4. निम्न में पात में कारक होते हैं?

   क. चन्द्रमा ख. सूर्य ग. सूर्य-चन्द्र घ. भौम

5. पात के आदि काल एवं अन्त के बीच के काल को क्या कहते हैं

   क. स्पर्श काल ख. पात का मध्यकाल ग. मोक्ष काल घ. कोई नहीं

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि जिन दो ग्रहों की युति के बारे में विचार करना हो उनमें से जिस ग्रह की गति अधिक हो, उस ग्रह के मन्दगति वाले ग्रह से आगे रहने पर उन दोनों मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले ग्रहों की युति पहले ही हो जाती है। अन्यथा शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हो तो (उन दोनों ग्रहों मन्द गति एवं शीघ्र गति वाले का) संयोग आगे होगा। ऐसा जानना चाहिये। लेकिन इस तरह से विचार तभी होता है जब दोनों ग्रह मार्गी हों। वक्र गति वाले ग्रहों में युति इससे विपरीत समझना चाहिये। अर्थात् वक्र गतिवाला शीघ्रगति ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हों तो उन दोनों ग्रहों की युति पूर्व में ही हो जाती है एवं शीघ्र गति वाला ग्रह मन्द गति वाले ग्रह से आगे हो तो उनकी युति आगे होगी।

जिन दो ग्रहों की युति का विचार करना हो उनमें से एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा वक्री हो तो उसकी वक्रगति होने के कारण मार्गगति वाले ग्रह से अधिक होने पर उन दोनों ग्रहों की युति मार्गी एवं वक्री की पहले ही हो जाती है। वक्रगति वाला मन्द ग्रह शीघ्रगति वाले मार्गी ग्रह से आगे होने पर उन दोनों ग्रह की युति आगे होगी। ऐसा जानना चाहिये।

स्पष्ट ग्रह ही मनुष्यों द्वारा देखे जाने योग्य होने के कारण उनकी स्पष्ट गति ही ग्रहण करनी चाहिए। ग्रहों की भिन्न-भिन्न गति होने के कारण से जिन दो ग्रहों की युति का विचार करते हैं उनमें से कोई एक मन्द गति वाला तथा दूसरा शीघ्र गति वाला होगा ही। इसीलिए उन दोनों ग्रहों के मार्गी होने के कारण शीघ्र ग्रह यदि मन्द ग्रह से अधिक हो तो वह शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करके आगे गया हुआ होने से उनका योग गत हो चुका अर्थात् उनकी युति पहले ही हो गई, यह स्पष्ट हुआ।

यदि शीघ्र गति ग्रह मन्द गति ग्रह से कम हो तो मन्द गति ग्रह से पीछे होने के कारण शीघ्र गत ग्रह

अधिक गति से चलता हुआ मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करेगा, इससे उनका योग आगे होगा यह स्पष्ट हुआ। यदि मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले दोनों ग्रह ही वक्री हों तो वे दोनों ही वक्री गति होने से पश्चिम की ओर चलते हैं। तब शीघ्र ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम होने पर शीघ्र गति वाला वक्री ग्रह तेज गति से चलता हुआ मन्दगति वाले वक्री ग्रह को पकड लेगा अर्थात् उसके समान हो जायेगा, अतः उन दोनों वक्री ग्रहों की युति आगे होगी। यह सिद्ध हुआ। यदि इन दोनों ग्रहों में एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा ग्रह वक्री हो तो उन दोनों में वक्री ग्रह के मार्गी ग्रह से अधिक होने से पश्चिम की ओर चलता हुआ वक्री ग्रह, पूर्व की ओर चलते हुए मार्गी ग्रह से आने वाले समय में योग करेगा। इसलिए दोनों का योग भावी होगा यह सिद्ध हुआ।

यहाँ राशियों को पूर्वादि क्रम से स्थापित करने से ऐसा है। राश्यादि मान से ग्रह कम या अधिक होने की कल्पना किये जाने के कारण किसी समय मीन राशि में ग्रह होगा तो यह ग्रह मेष राशि में स्थित ग्रह की अपेक्षा अधिक माने जाने में आपत्ति होगी। इसलिए जो ग्रह अधिक पूर्व में होगा वह अधिक तथा पश्चिम में होने वाले ग्रह को न्यून माना जायेगा परन्तु यह 6 राशियों के अन्तर पर ही जानना चाहिए।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

युति – द्वयो: ग्रहयोरन्तराभावस्य नाम युति:।

पात – जो लोगों के मांगलिक कार्यों को गिराता है, उसे पात कहते हैं।

वैधृति – वैधृति पात का ही रूप है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों उत्तरायण या दक्षिणायन एक ही अयन में हो तो उन दोनों के राशयात्मक सूर्य एवं चन्द्र को जोड़ने पर यदि योग१२ राशि के बराबर हो, उन दोनों की क्रान्ति भी से समान हो तो वैधृत नामक पात होता है।

व्यतिपात – व्यतिपात भी पात का ही रूप है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों में से सूर्य यदि उत्तरायण में हो तो चन्द्र दक्षिणायन में हो तथा चन्द्र उत्तरायण में हो तो सूर्य दक्षिणायन में हो तो सूर्य एवं चन्द्र दोनों के राश्यात्मक योग करने पर जो आवे वह यदि योग ६ राशि के बराबर हो, उन दोनों की क्रान्ति भी समान हो तो व्यतीपात नामक पात होता है।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

क्रान्तिवृत्त- कदम्ब से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. क 3. क 4. ग 5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहयुति से क्या तात्पर्य है?
2. पात किसे कहते हैं? स्पष्ट लेखन कीजिये।
3. पात स्वरूप एवं काल का वर्णन कीजिये।
4. ग्रहयुति विचार में गतैष्य दिनादि का साधन कीजिये।
5. भूमिग्रहयुतिदर्शन प्रकार का उल्लेख कीजिये।
6. वैधृति- व्यतिपात का लक्षण लिखिये।

इकाई - 4 दृक्कर्म परिचय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 दृक्कर्म परिचय
4.4 दृक्कर्म में विशेष
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – दृक्कर्म परिचय। इससे पूर्व आपने चन्द्रश्रृंगोन्नति, ग्रहोदयास्त, ग्रहयुति एवं पात से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप दृक्कर्म के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'दृक्कर्म' का सम्बन्ध ग्रहों के उस स्थिति से है, जिसके संस्कारोपरान्त ग्रह दृश्यानुरोधेन स्पष्ट हो जाता है। इसीलिए दृक्कर्म को परिभाषा करते हुए कहते है कि – दृश: कर्म: दृक्कर्म:। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहों का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'दृक्कर्म' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- दृक्कर्म को परिभाषित कर सकेंगे।
- दृक्कर्म को समझा सकेंगे।
- 'दृक्कर्म' की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- दृक्कर्म का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

4.3 दृक्कर्म परिचय

सर्वप्रथम दृक्कर्म का प्रयोजन क्या है? आइए इसको समझने का प्रयास करते हैं।

नक्षत्र एवं ग्रह की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रह के उदयास्त साधन में, चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन में दृक्कर्म का संस्कार यथासम्भव पहले ही कर लेना चाहिये, ऐसा पूर्व में में बतलाया गया है। इसका आशय है कि दृक्कर्म से संस्कार किये जाने पर ही नाक्षत्र एवं ग्रह तथा दो ग्रहों की युति का भी विचार किया जाता है।

गणितीय दृष्टिकोण से क्रान्तिवृत्त स्थान से शराग्रगत दोनों की युति तो एक कदम्ब प्रोतवृत्त दोनों होने पर ही उनके अन्तर का अभाव होता है। क्रान्तिवृत्त में तिरछे रूप में कदम्ब प्रोतवृत्त होता है। परन्तु कदम्ब की दोनों तारायें अत्यन्त सूक्ष्म होने से दिखाई न दे पाने से विपुलताराश्रित ध्रुवप्रोतवृत्त में दोनों के गये हुए होने से ही भास्करादि ने उनकी युति ध्रुवप्रोतवृत्त में कही है, अत: ग्रहों की युतियों में केवल आयनदृक्कर्म की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक युति तो उन दोनों की (नक्षत्र एवं ग्रह की अथवा दोनों ग्रहों की) कदम्ब सूत्र में स्थित होने पर ही होती है। भास्कराचार्य का भी यही कथन

है। वासना भाष्य इसलिए कहा है – कदम्ब में प्रसिद्ध ताराओं का अभाव होने से देखने वाले को इस युति की प्रतीति नहीं हो पाती अत: ध्रुव सूत्र में ही युति कही है। युति प्राय: कदम्ब सूत्र में स्थित होने वाले दो की ही होती है। ग्रह के उदयास्त साधन करने में स्थानीय ग्रह को समप्रोतवृत्त का करने के लिए स्पष्ट दृक्कर्म की आवश्यकता होती है। अत: उक्त कर्मों (ग्रह एवं नक्षत्र की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रहों के उदयास्त, चन्द्रश्रृंगोन्नति आदि साधन में) दृक्कर्म संस्कार किया जाना युक्तिसंगत है।

दृक्कर्म किसे कहते है? दृश: कर्म: दृक्कर्म:। अर्थात् ग्रहों की वास्तविक स्थिति को दृश्य योग्य बनाने हेतु जो कर्म करते करते हैं, उसका नाम है – दृक्कर्म। यह मुख्यत: दो प्रकार का होता है – 1. अयन दृक्कर्म 2. आक्ष दृक्कर्म। ध्रुवप्रोत-समप्रोतवृत्त का अन्तर आक्ष दृक्कर्म तथा ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोत का अन्तर अयन दृक्कर्म कहलाता है। दोनों के संस्कार से स्फुट दृक्कर्म होता है।

दृक्कर्म साधन के लिए उपकरण –

कृत्वा दिन क्षपामानं तथा विक्षेपलिप्तिका:।
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकाल्लग्नवशात्तयो:।।

युतिकाल के दोनों ग्रहों से अपनी-अपनी क्रान्ति के चर पलों से दिनमान एवं रात्रिमान करके, शर की कलायें साधित कर, सायन सूर्यादि ग्रह से एवं सायन लग्न से उन दोनों ग्रहों के नतोन्नत को साधित कर अलग रख लें। जैसे सायन सूर्य एवं लग्न से इष्टकाल साधित करते हैं, उसी तरह युतिकाल में भी सायन ग्रह एवं लग्न से इष्टकाल साधित कर यथासम्भव दिनगत, दिनशेष या उन्नत, उसको घटाकर दिनार्ध और नत को जानकर, इसी तरह रात्रि में भी नतोन्नत का ज्ञान कर रख लेना चाहिए।

आक्षदृक्कर्म साधन एवं संस्कार –

विषुवच्छाययाऽभ्यस्ताद् विक्षेपाद् द्वादशोद्धृतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धं विभाजितम्।।
लब्धं प्राच्यामृणं सौम्ये विक्षेपे पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु विपर्यय:।।

पूर्वसाधित शर को पलभा से गुणाकर १२ का भाग दें जो भागफल आवे उससे पूर्वसाधित नत काल की घटियों को गुणा करें गुणनफल में दिन का गत काल होने पर दिनार्ध से एवं रात्रि का नतकाल होने पर रात्रयर्ध मान का भाग दें जो भागफल आवे उसी उत्तरीशर होने पर पूर्वकपाल में ऋण एवं पश्चिमी कपाल में धन तथा दक्षिणी शर होने पर पूर्वकपाल में धन एवं पश्चिमी कपाल में विपरीत अर्थात् ऋण करना चाहिए।

उपपत्ति: - गणितेन साधितो ग्रह: क्रान्तिवृत्तीयो राश्यादिको भवति। सूर्यातिरिक्त सर्वेग्रहा: वेधोपलब्धा: क्रान्तिवृत्ताच्छराग्रे स्व-स्वविमण्डले भ्रमन्ति। यदा क्रान्तिवृत्तस्थानामुदयास्तौ

भवतस्तदानीं शराग्रगतानामुदयोस्तौ। यदा क्रान्तिवृत्तस्थं ग्रहस्थानं क्षितिजमागच्छति तदा शराग्रस्थो ग्रह: क्षितिजादुपर्यधो वा शरवशाद्भवति। यदाकदम्ब स्थानं क्षितिजगतं स्यात्तदा कदम्बप्रोतवृत्तं क्षितिजवृत्तमेव भवति, तदा स्थानं बिम्बं च तुल्यकालमेवक्षितिजस्थे भवत:। अन्यथा कदम्बप्रोतवृत्तस्य क्षितिजादन्तरित्वाद् ग्रहगतकदम्बप्रोत सम्प्रोतवृत्तयोरन्तरं क्रान्तिवृत्ते। यत् तेन ग्रहोऽन्तरितो भवति। अतएव ग्रह गतकदम्ब समसूत्रयो: क्रान्तिवृत्ते यदन्तरं तस्यैव नाम दृक्कर्म:।

भास्करेणोक्तम्—

क्रान्तिवृत्ते ग्रहस्थानचिह्नं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यत:।
स्वेषुणोत्क्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम्।।

दृक्कर्म द्विविधम्। तत्र प्रथमस्तु ध्रुव प्रोत–समप्रोतवृत्तयोरन्तरमाक्षजं दृक्कर्म:। द्वितीयस्तु ध्रुव प्रोतवृत्त–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरमायन दृक्कर्म भवति! अनयो: संस्कारेण समप्रोत–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरं स्पष्ट दृक्कर्म वलन तुल्यं भवति।

आक्ष दृक्कर्म:— क्रान्तिवृत्ते ध्रुवप्रोतवृत्त–समप्रोतवृत्तयोरन्तरे आक्ष दृक्कर्म कला:।

क्षेत्र परिचय: —

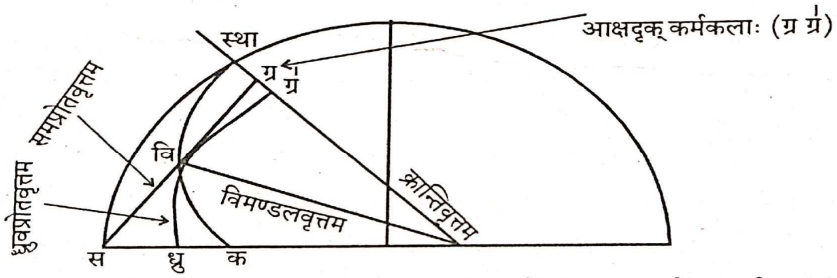

विमण्डलवृत्ते विं = ग्रह बिम्बम्। विमण्डलवृत्तीयग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतसमप्रोतवृत्तयो: क्रान्तिवृत्तेऽन्तरं = ग्र ग्रं = आक्षदृक्कर्म कला:।

बिम्बगत–समप्रोत–ध्रुवप्रोत वृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणस्याक्षवलन–कारणात् ज्या ∠ ग्र विं ग्रं = आक्षवलन ज्या। बिम्बगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं क्रान्ति वृत्ते यत्र लगति तत् ''ग्र'' स्थानं क्रान्तिवृत्ते आयनदृक्कर्मसंस्कृतग्रहस्थानम्। तेन ज्या ∠विं ग्र ग्रं = 'ग्र' ग्रहस्यायनवलन कोटिज्या। तत: ''वि ग्र ग्रं'' त्रिभुजे कोणानुपातेन ज्या ग्र ग्रं = ज्या आक्ष दृक् कर्म = $\frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \angle\text{ज्या वि ग्र}}{\text{ज्या } \angle\text{वि ग्र ग्र}}$ =

$\frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{को ज्या ग्र आयनवलन}}$ .....(१)

ज्या विं ग्रं = समप्रोतवृत्तीयशरज्या। शरकलानामत्यल्पत्वात् समप्रोत-ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोतवृत्तीयशरकलास्तुल्या एव स्वीक्रियन्ते तदा विं ग्रं = शरकला:।

लघुज्याविधिना शरज्या = ज्या विं ग्रं = $\frac{\text{शरकला} \times २}{६०}$ .....(२)

Scanned with CamScanner

पूर्वोक्त्या आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times \text{ज्या स न}}{\text{द्यु}}$। अत्रापि ज्या स न = $\frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनार्ध}}$। ∴ आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या}}$ .....(३)

यदि 'ग्र' ग्रहस्य द्युज्या = द्यु' तदा ''द्युज्या–परमाल्प द्युज्या–ग्रह कोटिज्या'' इति चापज्या क्षेत्रे कोणानुपातेन कोटिज्या 'ग्र' आयनवलन = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$ .....(४)।

अतः २–३–४ एभिः स्वरूपैः (१) स्वरूप उत्थापिते ज्या.आक्ष दृक्कर्म = $\frac{\text{शरकला} \times २}{६०} \times \frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनार्ध} \times \text{द्युज्या}} \times \frac{\text{द्यु'}}{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$।

यतो लघुज्याविधिना ज्या भक्ता अंशास्ते च षष्टिगुणाः कला भवन्तीत्यतः—

आक्ष दृक्कर्मकलाः = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २ \times \text{द्यु'ज्या}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$।

यदि स्वल्पान्तरात् द्यु' = द्यु। तथा त्रिज्या = १२०। तदा —

आक्षदृक्कर्मकलाः = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$ =

$\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{लम्बज्या} \times \text{न घ} \times १८०}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{लम्बज्या} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$। अत्र $\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या लं}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

∴ आक्षदृक्कर्म = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२} \times \frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$।

आचार्येण सूर्यसिद्धान्ते $\frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} = १$, स्वीकृतम्।

∴ आक्षदृक्कर्म कलाः = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{१२ \times \text{दिनार्ध}}$।

अतः आक्षदृक्कर्म कलानयनमुत्पन्नम्।

CS Scanned with CamScanner

धनर्णोत्पत्तिः— यद्य ग्रहस्योचरीयशरो भवति तदा पूर्वकपाले उत्तरीध्रुव कारणात् समस्थानस्याधोगतत्वात् समप्रोतवृत्तात् क्रान्ति वृत्ते ध्रुव प्रोत वृत्तमधोगतो भवतीात्यतो ग्रहः प्रथमं समप्रोतवृत्ते पश्चाच्च ध्रुव प्रोतवृत्ते उदेतीत्यतः फलमृणं भवति। पश्चिम कपाले प्रथमं ध्रुव प्रोतवृत्ते पश्चाच्च समप्रोत वृत्ते उदेति, अतः परकपाले उत्तरे शरे धनं भवति।

दक्षिणे शरे दक्षिणध्रुवात् समस्थानमुपरिगतं भवति। तदा पूर्वकपाले प्रथमं ध्रुवप्रोतवृत्ते तदनन्तरं समप्रोतवृत्ते उदेति, पश्चिमे कपाले प्रथमं समप्रोत वृत्ते तदनन्तरं ध्रुवप्रोतवृत्ते ग्रहो उदेति, अतस्तत्र पूर्वकपाले धनं, पश्चिमकपाले च फलमृणं क्रियते। इति युक्ति संगतम्।

दिखाई देने का कार्य ही दृक्कर्म होता है। गणित से साधित ग्रह क्रान्तिवृत्त का राश्यादि होता है। सूर्य के अलावा सारे ग्रह वेधोपलब्ध क्रान्तिवृत्त से शर से आगे अपने–अपने विमण्डलवृत्तों में भ्रमण करते हैं। जब क्रान्तिवृत्त में स्थान पर उदयास्त होता है तभी शराग्रगत का उदयास्त होता है। जब क्रान्तिवृत्त में स्थित ग्रह का स्थान क्षितिज पर आताहै तब शराग्रगतग्रह क्षितिज से ऊपर या नीचे शर के कारण से होता है। जब कदम्ब स्थान क्षितिजगत होता है तो कदम्ब प्रोतवृत्त ही क्षितिजवृत्त होता है, तब स्थान और बिम्ब एक साथ ही क्षितिज पर होते हैं। अन्यथा कदम्ब प्रोतवृत्त के क्षितिज से अन्तर पर होने से ग्रहगत कदम्ब प्रोतवृत्त एवं सम्प्रोत दोनों वृत्तों का अन्तर क्रान्तिवृत्त में उस ग्रह से अन्तर होता है। अतः ग्रहगत कदम्ब सूत्र एवं समसूत्रों का क्रान्तिवृत्त में जो अन्तर होता है उसे ही दृक्कर्म कहते हैं। इसीलिए भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि—

क्रान्तिवृत्त में ग्रहस्थान का जो चिह्न होगा, क्षितिज पर तब वह ग्रह नहीं होगा क्योंकि वह अपने शर द्वारा हटाया जाता है। इसीलिए ग्रह के उदयास्त में कुंजसूत्र से दृक्कर्म संस्कार किया जाता है।

दृक्कर्म संसार दो तरह का होता है। प्रथम दृक्कर्म ध्रुव प्रोतवृत्त एवं समप्रोतवृत्तों का अन्तर आक्ष दृक्कर्म होता है। दूसरा दृक्कर्म ध्रुवप्रोत वृत्त एवं कदम्ब प्रोतवृत्तों का अन्तर आयन दृक्कर्म होता है। इन दोनों के संस्कार से समप्रोत एवं कदम्ब प्रोतवृत्तों का अन्तर स्पष्ट दृक्कर्म वलन के समान होता है।

आक्ष दृक्कर्म— क्रान्तिवृत्त में ध्रुव प्रोतवृत्त–समप्रोत दोनों वृत्तों के बीच आक्षदृक्कर्मकला अन्तर के रूप में होती है।

क्षेत्र परिचय— विमण्डल वृत्त में विं = ग्रह बिम्ब है एवं विमण्डलवृत्त के ग्रह पर गये हुए ध्रुव प्रोत–समप्रोतवृत्तों का क्रान्तिवृत्त में अन्तर = ग्रं ग्रं = आक्षदृक्कर्मकला है।

Scanned with CamScanner

बिम्बगत समप्रोतवृत्त एवं ध्रुव प्रोतवृत्त दोनों से उत्पन्न कोण के आक्षवलन के कारण से ज्या∠विं ग्र ग्रं = ''ग्र'' ग्रह की अयन वलन कोटिज्या है। उस से ''वि ग्रं ग्र'' त्रिभुज में कोण के अनुपात से ज्या ग्र ग्र = ज्या आक्ष दृक्कर्म=

$$\frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \angle\text{ज्या वि ग्र}}{\text{ज्या } \angle\text{वि ग्र ग्र}} = \frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{को ज्या ग्र आयनवलन}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

ज्या वि ग्र = समप्रोतवृत्त की शरज्या। शरकलाओं के अत्यन्त कम होने से समप्रोत ध्रुव प्रोत–कदम्ब प्रोत वृत्त की शरकलायें समान ही स्वीकार करते है। तो वि ग्र = शर कलाः।

लघुज्या विधि से शरज्या = ज्या विं ग्र = $\frac{\text{शरकला} \times २}{६०}$ .....(२)

पूर्वोक्त आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times \text{ज्या स न}}{\text{द्यु}}$। यहाँ पर भी ज्या स न = $\frac{६० \times \text{नतघटी} \times २}{\text{दिनार्ध}}$। ∴ आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times ६० \times २ \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या}}$ .....(३)

यदि 'ग्र' ग्रह की द्युज्या = द्यु तो ''द्यु ज्या – परमाल्पद्युज्या – ग्रहकोटिज्या' इस चापज्या क्षेत्र में कोणानुपात से कोटिज्या 'ग्र' आयनवलन = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्पद्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$ .....(४)।

अतः २,३,४ इन स्वरूपों को १ स्वरूप में स्थापित करने पर ज्या आक्ष दृक्कर्म =

$$\frac{\text{शरकला} \times २}{६०} \times \frac{\text{ज्या अ} \times ६० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनार्ध} \times \text{द्युज्या}} \times \frac{\text{द्यु}}{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्य द्युज्या}}।$$

क्योंकि लघुज्या साधन की विधि से ज्या में २ का भाग देने से अंश होते हैं उन्हें ६० से गुणा करने पर कलायें होती हैं अतः—

$$\text{आक्ष दृक्कर्मकलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ६० \times २ \times \text{द्युज्या}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}।$$

यदि स्वल्पान्तर से द्यु = द्यु। तथा त्रिज्या = १२० हो तो —

$$\text{आक्षदृक्कर्मकला} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ६० \times २}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} =$$

CS Scanned with CamScanner

$$\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{लम्बज्या} \times \text{न घ} \times १८०}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{लम्बज्या} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$$ । यहाँ $\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या लं}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

$$\therefore \text{आक्षदृक्कर्म} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२} \times \frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$$ ।

आचार्येण सूर्यसिद्धान्ते $\frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} = १$, स्वीकृतम्।

$$\therefore \text{आक्षदृक्कर्म कलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{१२ \times \text{दिनार्ध}}$$ ।

यह आक्षदृक्कर्म कला के साधन की उत्पत्ति हुई।

धन एवं ऋण की उत्पत्ति— जब ग्रह का उत्तरी शर हो तो वह पूर्व कपाल में उत्तरी ध्रुव होने के कारण सम स्थान के नीचे जाने के कारण समप्रोतवृत्त से क्रान्तिवृत्त में ध्रुव प्रोतवृत्त नीचे गया होता है अतः ग्रह पहले समप्रोतवृत्त में और बाद में ध्रुव प्रोतवृत्त में उदय होता है अतः फल ऋण होता है। पश्चिम कपाल में होने से पहले ध्रुव प्रोतवृत्त में और बाद में समप्रोतवृत्त में उदित होता है अतः पश्चिमी कपाल में उत्तरी शर होने पर फलधन करते हैं।

दक्षिणी शर होने पर दक्षिण ध्रुव से समस्थान ऊपर गत होता है। तब पूर्व कपाल में प्रथम ध्रुव प्रोतवृत्त में और उसके बाद समप्रोतवृत्त में उदित होता है। पश्चिम कपाल में होने पर पहले समप्रोतवृत्त में औश्र उसके बाद ध्रुव प्रोतवृत्त में ग्रह उदित होता है। अतः वहाँ पूर्वकपाल में धन एवं पश्चिम कपाल में फल को ऋण किया जाता है। ऐसा कथन तर्कसंकत है।

आयन दृक्कर्मानयन कथनम्—

सत्रिभग्रहजक्रान्ति – भागघ्नाः क्षेप लिप्तिकाः।
विकलाः स्वमृणं क्रान्तिक्षेपयोर्भिन्न तुल्ययोः॥१०॥

सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागाः= स्पष्टग्रहे त्रिराशियोजनेन यः भवति तद्वशात् तस्य क्रान्तिसाध्याः। तस्य ये क्रान्त्यंशाः भवन्ति तेऽयनवलनांशाः भवन्ति। तेन अयनवलनांशैः घ्नाः क्षेपलिप्तिकाः=ग्रहस्य शरकलाः गुणिताः फलं विकलाः=आयनदृक्कर्मविकलाः भवन्ति। क्रान्ति क्षेपयोः भिन्न दिक्त्वे स्वम्=धनं, तुल्ययोः= क्रान्तिक्षेपयोः एकदिकत्वे सति ऋणं ''आयनदृक्कर्म विकलाः'' क्रियन्ते।

स्पष्ट ग्रह में ३ राशि जोड़ने पर जो आवे उसकी क्रान्ति साधन करें। जो क्रान्त्यंश आवें वे ही अयन वलनांश होते हैं। उन अयनवलनांशों से ग्रह की

Scanned with CamScanner

शरकलाओं को गुणा करें, गुणनफल आयनदृक्कर्म की विकला होंगीं। यदि क्रान्ति एवं शर अलग–अलग दिशाओं के हों तो इन आयन दृक् कर्म विकलाओं को जोड़ा जाता है तथा क्रान्ति एवं शर दोनों एक ही दिशाओं के हों तो इन आयन दृक् कर्म की विकलाओं को ऋण किया जाता है।

उत्पत्तिः— ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरं क्रान्तिवृत्तेऽयनदृक्कर्मे विकलाः भवन्ति। क्षेत्रम्—

क्षेत्रम्—

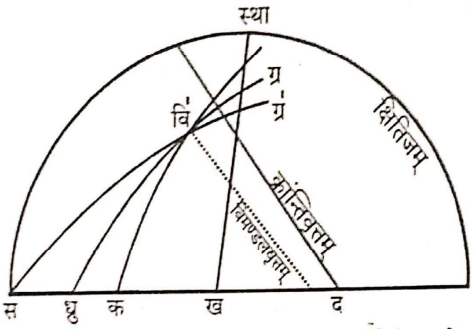

क्षेत्रे — स्था=ग्रह स्थानम्। ग्र=आयन दृक्कर्मसंस्कृतो ग्रहः। स्था ग्र=क्रान्तिवृत्तेआयनदृक्कर्म। ∠स्था विं ग्र=आयनवलनम्। ∠विं ग्र स्था = आयन वलन कोटिः। ∠विं स्था ग्र = ९०° । विं स्था = शरकलाः। स्वल्पान्तरात् विं स्था = विं ग्र तदा विं ग्र = शरकला। ततः विं स्था ग्र त्रिभुजे कोणानुपातेन ज्या स्था ग्र = ज्या आयन दृक् = $\frac{\text{शरज्या}\times\text{आयन वलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ । परन्तु लघुज्या विधिना शरज्या = $\frac{\text{शरकला}\times २}{६०}$ । तथा आयनवलनज्या = सत्रिभग्रहकान्त्यंशा×२। त्रिज्या=१२०। अतः आयनदृक्कर्मज्या = $\frac{२\times\text{शरकला}\times२\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}}{६०\times १२०}$ । ज्या द्विभक्ता अंशास्ते च षष्टिवर्गगुणास्तदा विकला भवन्तीात्यतः—

आयनदृक्कर्म विकलाः = $\frac{२\times२\times\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ३६००}{२\times६०\times १२०}$ =

$\frac{\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ७२००}{७२००}$ = शरकला × सत्रिभग्रहकान्त्यंशा। अत उत्पन्नमायनदृक्कर्मसाधनम्।

अथधनर्णतोत्पत्तिः— ग्रहस्यायनं मकरादि षडराशित्वादुत्तरं तदा शरोऽप्युत्तरस्तदा कदम्ब स्थानं ध्रुवात् दक्षिणे, क्रान्तिवृत्तश्च विमण्डलवृत्ताद्दक्षिणे भवतीत्यतः क्रान्तिवृत्ते कदम्बप्रोतीयस्थानतो ध्रुव प्रोतीयस्थानं पश्चिमतो भवति। तत्र

Scanned with CamScanner

स्थानीयग्रहे आयनदृक् कर्म विकलानां वियोगेन ध्रुवप्रोतवृत्तीय ''आयन दृक्कर्म संस्कृतो ग्रहो भवति। अनेनैव प्रकारेण कर्कादिषऽराशौ दक्षिणायने दक्षिणे शरेऽपि ध्रुवादुत्तरे कदम्बस्थाने क्रान्तिवृत्ते ग्रहस्थानादायन दृग्ग्रहस्थ पश्चिमगतत्वात् फलमृणमेवोपपद्यते।

यदि उत्तरायणं शरो दक्षिणस्तदा ध्रुवात् कदम्ब स्थानं दक्षिणे, क्रान्तिवृत्तात विमण्डल वृत्तं च दक्षिणेऽतः क्रान्तिवृत्ते कदम्बप्रोतवृत्तस्य पूर्वतः स्थित्वादायनदृक्कर्म विकलाः स्थानीय गृहे धनं भवतीति स्पष्टमेव। अतः अयन शरयोरेकदिक्त्वे फलमृणं, भिन्न दिक्त्वे च धनमुपपन्नम्। यतः ग्रहनिष्ठायनतुल्यैव सत्रिभग्रहगोलदिशाभवति, अतः सत्रिभग्रह क्रान्तिविक्षेपयोर्भिन्नतुल्यदिशोरायन-दृक्कर्म फलं स्वमृणत्वकरणमुचितमेवेत्युत्पन्नम्।

ग्रह पर गया हुआ ध्रुव प्रोत वृत्त एवं कदम्ब प्रोत दोनों वृत्तों का अन्तर क्रान्तिवृत्त में आयन दृक्कर्म की विकला होती है।

चित्र में स्था=ग्रह का स्थान, ग्र=आयनदृक्कर्म संस्कृतग्रह, स्था ग्र=क्रान्तिवृत्त में आयन दृक् कर्म, ∠स्था विं ग्र = आयनवलन है। ∠विं ग्र स्था = आयनवलन कोटि, ∠विं स्था ग्र= ९०° तथा विं स्था शरकलायें हैं। स्वल्पान्तर से विंस्था = विं ग्र तो विं ग्र= शरकला हैं। विं स्था ग्र त्रिभुज में कोणानुपात से ज्या स्था ग्र = आयन दृक्ज्या = $\frac{\text{शरज्या}\times\text{आयन वलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$। लेकिन लघुज्या साधन को विधि से शरज्या = $\frac{\text{शरकला}\times २}{६०}$। तथा आयनवलनज्या = ३ राशि + ग्रह की क्रान्ति के अंश×२ । त्रिज्या=१२०। अतः आयनदृक्कर्मज्या = $\frac{२\times\text{शरकला}\times२\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}}{६०\times १२०}$। ज्या में २ का भाग देने से अंश होंगें उन्हें ६० के वर्ग (६०×६०=३६००) से गुणा करने पर विकला होती है। अतः आयनदृक्कर्म विकला =

$\frac{२\times२\times\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ३६००}{२\times६०\times १२०}$ =

$\frac{\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ७२००}{७२००}$ = शरकला × सत्रिभग्रहकान्त्यंश। अतः आयन दृक्कर्मसाधन उत्पन्न हुआ।

धन एवं ऋण करने की उत्पत्ति— ग्रह मकरादि ६ राशियों में उत्तरायण में होने से शर भी उत्तरी होने से कदम्ब स्थान ध्रुव से दक्षिण में एवं क्रान्तिवृत्त विमण्डलवृत्त से दक्षिण में होता है, अतः क्रान्तिवृत्त में कदम्बप्रोत के स्थान से

Scanned with CamScanner

ध्रुवप्रोत का स्थान पश्चिम की ओर होता है। जिससे उस स्थान पर होने वाले ग्रह से आयनदृक्कर्म की विकलाओं को घटाने से ध्रुवप्रोतवृत्त का आयन दृक्कर्म से संस्कृत ग्रह होता है। इसी तरह कर्कादि दक्षिणायन में शर के होने पर भी ध्रुव से उत्तर में कदम्ब के होने पर क्रान्तिवृत्त के स्थान से आयनदृक् ग्रह के पश्चिम में गये होने के कारण फल को ऋण करना उत्पन्न होता है। यदि उत्तरी अयन हो एवं शर दक्षिणी हो तो ध्रुव से कदम्ब दक्षिण में होने से क्रान्तिवृत्त से विमण्डलवृत्त भी दक्षिण में होता है। अत: क्रान्तिवृत्त में कदम्ब प्रोतवृत्त से पूर्व की ओर स्थिर होने से आयनदृक्कर्म की विकलाओं को स्थानीय ग्रह में जोड़ा जाता है यह गोलज्ञों को स्पष्ट ज्ञात है। इसीलिए आयन एवं शर के एक दिशा में होने से फल को ऋण करना तथा अलग-अलग दिशाओं के होने पर योग करना उत्पन्न होता है। क्योंकि ग्रह एवं अयन के समान दिशा के होने से ही सत्रिभग्रहगोल दिशा होती है, अत: सत्रिभग्रह क्रान्ति एवं शर के भिन्न –भिन्न दिशाओं के एवं एक ही दिशाओं के होने पर आयन दृक्कर्म के फल को क्रमश: धन एवं ऋण करना सिद्ध होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. दृश: सम्बन्धि कर्म:?
   क. दृश्य: ख.दृश्यम् ग.दृक्कर्म: घ. अयन दृक्कर्म
2. मुख्यत: दृक्कर्म कितने प्रकार के होते हैं?
   क. १ ख. २ ग. ३ घ. ४
3. गणित द्वारा साधित ग्रह किस वृत्त का होता है?
   क. नाड़ी ख. क्रान्ति ग. अहोरात्र घ. उन्मण्डल
4. ध्रुवप्रोत समप्रोत वृत्त का अन्तर क्या कहलाता है।
   क. आक्ष दृक्कर्म ख. अयन दृक्कर्म ग. स्फुट दृक्कर्म घ. कोई नहीं
5. ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोत वृत्त का अन्तर क्या होता है।
   क. स्फुट दृक्कर्म ख. अयनदृक्कर्म ग. आक्षदृक्कर्म घ. इनमें सभी

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि नक्षत्र एवं ग्रह की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रह के उदयास्त साधन में, चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन में दृक्कर्म का संस्कार यथासम्भव पहले ही कर लेना चाहिये, ऐसा पूर्व में में बतलाया गया है। इसका आशय है कि दृक्कर्म से संस्कार किये जाने पर ही नाक्षत्र एवं ग्रह तथा दो ग्रहों की युति का भी विचार किया जाता है।

गणितीय दृष्टिकोण से क्रान्तिवृत्त स्थान से शराग्रगत दोनों की युति तो एक कदम्ब प्रोतवृत्त दोनों होने

पर ही उनके अन्तर का अभाव होता है। क्रान्तिवृत्त में तिरछे रूप में कदम्ब प्रोतवृत्त होता है। परन्तु कदम्ब की दोनों तारायें अत्यन्त सूक्ष्म होने से दिखाई न दे पाने से विपुलताराश्रित ध्रुवप्रोतवृत्त में दोनों के गये हुए होने से ही भास्करादि ने उनकी युति ध्रुवप्रोतवृत्त में कही है, अत: ग्रहों की युतियों में केवल आयनदृक्कर्म की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक युति तो उन दोनों की (नक्षत्र एवं ग्रह की अथवा दोनों ग्रहों की) कदम्ब सूत्र में स्थित होने पर ही होती है। भास्कराचार्य का भी यही कथन है। वासना भाष्य इसलिए कहा है – कदम्ब में प्रसिद्ध ताराओं का अभाव होने से देखने वाले को इस युति की प्रतीति नहीं हो पाती अत: ध्रुव सूत्र में ही युति कही है। युति प्राय: कदम्ब सूत्र में स्थित होने वाले दो की ही होती है। ग्रह के उदयास्त साधन करने में स्थानीय ग्रह को समप्रोतवृत्त का करने के लिए स्पष्ट दृक्कर्म की आवश्यकता होती है। अत: उक्त कर्मों (ग्रह एवं नक्षत्र की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रहों के उदयास्त, चन्द्रश्रृंगोन्नति आदि साधन में) दृक्कर्म संस्कार किया जाना युक्तिसंगत है। दृक्कर्म किसे कहते है? दृश: कर्म: दृक्कर्म:। अर्थात् ग्रहों की वास्तविक स्थिति को दृश्य योग्य बनाने हेतु जो कर्म करते करते हैं, उसका नाम है – दृक्कर्म। यह तीन प्रकार का होता है – 1. अयन दृक्कर्म 2. आक्ष दृक्कर्म 3. स्पष्ट दृक्कर्म।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

दृक्कर्म – दृश: कर्म: दृक्कर्म:।

आक्षदृक्कर्म – ध्रुवप्रोत-समप्रोतवृत्त का अन्तर आक्ष दृक्कर्म होता है।

अयन दृक्कर्म – ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोत वृत्त का अन्तर आयन दृक्कर्म कहलाता है।

स्फुट दृक्कर्म – अयनाक्ष दृक्कर्म के संस्कार करने पर स्पष्ट दृक्कर्म होता है।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

नाड़ीवृत्त- ध्रुवस्थान से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ग 2. ख 3. ख 4. क 5. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दृक्कर्म से आप क्या समझते हैं।
2. दृक्कर्म का प्रयोजन लिखिये?
3. अयन दृक्कर्म से क्या तात्पर्य है।
4. आक्ष दृक्कर्म का साधन कीजिये।
5. दृक्कर्म का साधन एवं संस्कार की उपपत्ति सहित वर्णन कीजिये।

खण्ड - 3

वेध एवं यन्त्र परिचय

इकाई - 1 भारतीय वेध परम्परा एवं वेधशाला विवेचन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय वेध परम्परा
1.4 वेधशाला विवेचन
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सहायक पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-104 के तृतीय खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने ग्रहोदयास्त, ग्रहयुति एवं दृक्कर्म आदि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहवेध की परम्परा में भारतीय वेध परम्परा एवं वेधशाला से जुड़े विषयों का अध्ययन करने जा रहे है।

भारतवर्ष में वेध परम्परा का प्रादुर्भव वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था। कालान्तर में उसका क्रियान्वयन का स्वरूप समय-समय पर परिवर्तित होते रहा है। कभी तपोबल से समस्त ग्रहों की स्थितियों को जान लिया जाता था, फिर ग्रहों को प्राचीन वेध-यन्त्रों से देखा जाने लगा। सम्प्रति अत्याधुनिक वेध-यन्त्रों से आकाशीय पिण्डों का अध्ययन करने की परम्परा आरम्भ हो चुकी है। सिद्धान्त ज्योतिष के लिए वेध प्रक्रिया एवं वेध के लिए वेधशाला आदि महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिष शास्त्रीय वेध परम्परा का ज्ञान एवं वेधशालाओं के स्वरूप को जानने का प्रयास करते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि वेध क्या है?
- वेध परम्परा भारतवर्ष में कब आरम्भ हुई ?
- वेध की आवश्यकता क्यों पड़ी?
- वेधशालाओं का निर्माण का प्रयोजन क्या है?

1.3 भारतीय वेध परम्परा

भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और सदाचार के मूल वेदों के षड्-वेदाङ्ग स्वरुप में ज्योतिषशास्त्र प्रमुख अङ्ग के रुप में विद्यमान है। वेदाङ्गों में ज्योतिष का स्थान नेत्र के रूप में वर्णित है, जिसका कारण इसकी प्रत्यक्षता ही है। समस्त वेदाङ्गों में अग्रगण्य ज्योतिष्पिण्डों (ग्रहों) के गति के कारणभूत, परमपवित्र, रहस्यमयी, समस्त-जगत का आधारभूत, जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयादि काल को प्रदर्शित करने वाला, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा ग्रहों के चार इत्यादि अनेक स्वरूपों का कालश्रयात्मक ज्ञान ही 'ज्योतिषशास्त्र' है। इसके प्रमुख स्कन्धों में

सिद्धान्त या गणित ज्योतिष है, जिसके माध्यम से सूर्यादिक ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर कलनात्मक (गणनात्मक) काल (समय) को ज्ञात किया जाता है। वैदिक काल से ही कालविधानशास्त्र की आवश्यकता ही उसकी उपयोगिता को सिद्ध करती है, क्योंकि वेदों में उद्धृत यज्ञों के सफलतम आयोजन हेतु काल का ज्ञान अपरिहार्य है जैसा कि कहा गया है-

वेदा हि यथार्थमभिप्रवृत्ता: कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।

सामान्यतः अल्पावधि में इन काल रुपी सिद्धान्तों की गणना तथा समयमान में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु दीर्घ कालावधि में युगों के परिवर्तन के कारण कालान्तर भेद से विविध आकर्षण-प्रकर्षण-विकर्षण, अयन-चलन, शर इत्यादि तत्त्वों में अन्तर उत्पन्न होता है जिसके निराकरण हेतु शास्त्रों में वेधयन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष वेध को ही प्रमाण माना गया है तथा वेध द्वारा प्राप्त बीज संस्कार को पूर्व सिद्धान्त में संस्कारित करने से काल को शुद्धतम करने की परम्परा रही है। अतः त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के आधाररूपक सिद्धान्त ज्योतिष की ग्रह-गणित परम्परा के अन्तर्गत **'वेध तथा वेधशालाओं' का** महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में वेध परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।

सृष्टि के आविर्भाव के समय से ही महदन्तरिक्ष में विद्यमान ज्योतिषोक्त् ग्रहपिण्डों के रहस्य को जानने की उत्कट अभिलाषा आदिमानव की रही थी और इस हेतु उनके प्राथमिक प्रयास, की गई क्रियाएँ, कार्य में आए उपकरण, विचारित योजनाएँ, स्वीकृत मान्यताएँ तथा स्थापित सिद्धान्त ही वेध प्रक्रिया के प्रथम सोपान के रूप में विज्ञजन स्वीकार करते हैं। यही प्रकार व क्रम अनवरत वृद्धि को प्राप्त होता हुआ श्रुति व स्मृतियों में व्यापक रूप से प्राप्त होता है।

वेध का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ एवं परिभाषा -

वेध शब्द का निर्माण **'विध्'** धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना। ग्रहों तथा तारों की स्थिति के ज्ञान हेतु आकाश में उन्हें देखा जाता था। आकाश में ग्रहादिकों को देखकर उनकी स्थिति का निर्धारण ही वेध है। परिभाषा रूप में **"नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है।"** नलिकादि यन्त्रों से ग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम 'वेध' विश्वविश्रुत है।

दृष्टि तथा **यन्त्रभेद** से वेध दो प्रकार का होता है-दृष्टि वेध भी अन्तर्दृष्टिवेध तथा

बाह्यदृष्टिवेध से दो प्रकार का होता है। यहाँ महर्षियों द्वारा यम-नियम, आसन, प्राणायामादि तपस्याओं से भक्तिज्ञानजन्य नेत्र द्वारा ब्रह्माण्डस्थ पिण्डों के अवलोकन को **अन्तर्दृष्टिवेध** तथा स्व-स्व नग्न नेत्र द्वारा आकाशस्थ पिण्डावलोकन को **बाह्यदृष्टिवेध** माना जाता है। जब हम चक्रनलिका, शंकु, दूरदर्शक आदि वेध-उपकरणों से सूर्यादि ज्योति:पिण्डों को देखते हैं तो यन्त्रवेध होता है।

वस्तुतः स्थूल-सूक्ष्म कालविभाग गणित के अन्तर्गत अनर्ह सूक्ष्म-अवयव कालभेद से भविष्यकाल में दीर्घस्वरूप धारण करके ग्रहगणितादिक में विलक्षणता उत्पादित करते हैं अतः गणित की शैथिल्यताजन्य उत्पन्न अन्तरस्वरूप बीजसंस्कारादिक विधियों को वेधयन्त्रों वा उपकरणों की सहायता से साक्षात् वेध करके गणकों के द्वारा शोधित किया जाता है।

वेधशालाओं में यन्त्रों-उपकरणों आदि के सहयोग से कालान्तर के वशीभूत प्राप्त अन्तर का बीज संस्कार करने पर गणितागत-ग्रह आकाशस्थ-ग्रह के सम्मुख होते हैं। इसीलिए वेधकर्मकुशल आचार्यों के द्वारा सिद्धान्त-ग्रन्थों में सम्पूर्ण सिद्धान्तों के रहस्यों को उद्घाटित करते हुए उनके दर्शन तथा प्रत्यक्ष अवलोकन हेतु यन्त्र-उपकरण, गोलबन्धन आदि के निर्माणादि का स्पष्ट निर्देश **सूर्य-सिद्धान्त** में प्राप्त होता है। यथोक्तम्-

पारम्पर्योपदेशेन यथाज्ञानं गुरोर्मुखात्।
आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।।
भूभगोलस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम्।।i

पाश्चात्य तथा यूरोपियन खगोलशास्त्री प्रायः मिथ्या प्रलाप करते रहे हैं कि वेध की परम्परा भारतीयों में विद्यमान नहीं थी जबकि प्राचीन वैदिक-वाङ्मय में सर्वत्र वेध अथवा ग्रहों के अवलोकन का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि जो नक्षत्र (सप्तर्षि) उच्चस्थ आकाश में रखे हुए रात्रि में दृष्टिगत होते हैं वे दिन में कहीं चले जाते हैं-

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तन्ददृश्रे कुहचिद् दिवेयुः।

वैदिककाल में ही नक्षत्रों, तारापुञ्जों, सप्तर्षिमण्डल एवं नक्षत्रों की युति-अन्तर आदि का वर्णन मिलता है, जिनका ज्ञान वेध के बिना सम्भव नहीं था। यथोक्तम्- **अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।**

वेधयन्त्रों में **शङ्कु-यन्त्र** का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन है। चल तथा अचल शङ्कु-यन्त्र का

प्रयोग ऋग्वेदकाल में हाता था, जैसा कि ऋग्वेद के एक मन्त्र में शङ्कु से वेध प्रक्रिया का वर्णन है-

द्वादशं प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।

तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कुवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।

एक चक्र अर्थात् वृत्त में तीन केन्द्रों की कल्पना करके उसमें 300+60=360 शङ्कुओं को चल-अचल के रूप में स्थापित करके द्वादश प्रधियाँ लगायी जाती हैं। यह एक पलभा (घटिकायन्त्र) की कल्पना है जिसके किनारे के दो शङ्कुओं के माध्यम से 60° पर करने वाले षष्ट्यंश यन्त्र की प्रकल्पना की गयी है। **अथर्वज्योतिष** में द्वादश अङ्गुल शङ्कु के माध्यम से छाया का आनयन करके मुहूर्त लाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

शुल्वसूत्रों में यज्ञसम्पादन के प्रसङ्ग में कुण्ड-मण्डपादि साधन के लिए शङ्कु द्वारा दिग्-साधन का उल्लेख प्राप्त होता है। **महाभारतकाल** में भी ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का समुचित ज्ञान था। शल्यपर्व में शुक्र एवं मङ्गल का चन्द्रमा से युति का वर्णन प्राप्त होता है। भीष्मपर्व में तो ग्रहों के युति अन्तरादि विषयों के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। इसके परवर्ती ज्योतिष के ग्रन्थों में वेध तथा वेधयन्त्रों का पूर्णतया उल्लेख मिलता ही है। अतः वेध-प्रक्रिया तथा वेधशाला की निर्माण-प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में विद्यमान थी। यह भारतीय ज्ञान शनैः-शनैः यूरोप, ग्रीक तथा अरब में प्रसार को प्राप्त हुआ और वहाँ के ज्योतिषियों ने इस वेध-प्रक्रिया में पर्याप्त अभिरूचि का प्रदर्शन किया। रेखागणित का वर्णन शुल्वसूत्र (यजुर्वेद) में पाया जाता है।

सूर्यसिद्धान्त ज्योतिषशास्त्र का प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ स्वीकृत है। इसके स्पष्टाधिकार में कहा गया है-

तत्तदगतिवशान्नित्यं यथा दृकतुल्यता ग्रहाः।

प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

अर्थात् उन गतियों के अनुसार प्रतिदिन ग्रह जिस प्रकार दृकतुल्य हो जाते हैं (अर्थात् जिस स्थान पर वेध द्वारा दृष्टिगोचर होते हैं) उस स्पष्टीकरण प्रक्रिया को मैं आदरपूर्वक कह रहा हूँ। सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ के अन्त में गोल, बीज, शङ्कु, यष्टि, धनु, कपाल, मयूर, नर तथा वानर यन्त्रों का उल्लेख कालसाधन के सन्दर्भ में प्राप्त होता है। यथोक्तम्-

शङकु यष्टिधनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा।

गुरुपदेशाद् विज्ञेयं कालज्ञानमतन्द्रितैः।।

तोययन्त्रकपालाद्यैर्मयूरनरवानरैः ।

ससूत्ररेणुगर्भैश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत् ।।

ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तग्रन्थों में **'आर्यभटीयम्'** में कालमापक गोल-यन्त्र का निर्माणतथा प्रयोग-विधि निर्दिष्ट है तथा शङ्कु-यन्त्र का भी वर्णन मिलता है। वराहमिहिर के **पञ्चसिद्धान्तिका** में वेध सम्पादनपूर्वक बीज संस्कार भी दिखाई देता है। वराहमिहिर के अनन्तर वेध-परम्परा में **ब्रह्मगुप्त** का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रह्मगुप्त महान दैवज्ञ, वेध-कुशल तथा दृक्सिद्ध ग्रहों के पोषक थे। उन्होंने वेध द्वारा यह अनुभव किया कि प्रचलित विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा दृक्सिद्ध ग्रह प्राप्त नहीं होते। अतः ब्रह्मगुप्त ने स्फुटदृक्सिद्ध ग्रहों के आनयन के लिए ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त की रचना की। इस ग्रन्थ में स्पष्ट सङ्केत है कि नलिकादि यन्त्रों द्वारा स्पष्टतर बीज का साधन कर उससे संस्कृत ग्रहों द्वारा ही निर्णय एवं आदेश करना चाहिए। यथोक्तम्-

संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेभ्यः।

तत्संस्कृते ग्रहेभ्यः कत्तव्यौ निर्णयादेशौ।।

अभ्यास प्रश्न -1

1. वेध शब्द का निर्माण किस धातु से हुआ है?
   क. विध् ख. विद् सत्तायाम ग. वि घ. भू
2. दृष्टि तथा यन्त्रभेद से वेध कितने प्रकार के होते हैं?
   क. 4 ख. 2 ग. 6 घ.8
3. द्वादशांगुल शंकु के माध्यम से छायानयन द्वारा मुहूर्त्त लाने का उल्लेख कहाँ मिलता है?
   क. ऋक् ज्योतिष ख. यजु ज्योतिष ग. सामज्योतिष घ. अथर्वज्योतिष
4. रेखागणित का वर्णन कहाँ मिलता है?
   क. शूल्वसूत्र में ख. साम ज्योतिष में ग. अथर्व जयोतिष में घ. कोई नहीं
5. 'पंचसिद्धान्तिका' किसकी रचना है?
   क. आर्यभट्ट ख. गणेश ग. केशव घ. वराहमिहिर
6. 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त' के प्रणेता कौन हैं?
   क. वराहमिहिर ख. ब्रह्मगुप्त ग. लल्ल घ. लगध

ब्रह्मगुप्त के बाद 1442 शकाब्द तक वेध-परम्परा वृद्धि पथ में दिखायी देती है। इस बीच **मुञ्जाल, श्रीधराचार्य, बल्लालसेन, केशवार्क, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, ज्ञानराज** इत्यादि वेधनिपुण दैवज्ञों के प्रयास वेध की दिशा में अन्यतम स्थान रखते हैं । **श्रीमद्भास्कराचार्य** ने सिद्धान्तशिरोमणि में गोलबन्धाधिकार तथा यन्त्राध्याय नामक शीर्षकों में वेधयन्त्रों का सविस्तार उल्लेख किया है।

दृक्सिद्ध ग्रहसाधन तथा वेध-परम्परा में **केशवदैवज्ञ** तथा उनके पुत्र **गणेशदैवज्ञ** का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 1418 शक के लगभग इन्होंने ग्रह-कौतुक नामक करणग्रन्थ की रचना वेधसिद्ध ग्रहों के आधार पर की है। कालान्तर से इनके ग्रन्थ को वेध द्वारा स्थूल देखकर इनके पुत्र गणेशदैवज्ञ ने वेध द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से ग्रहलाघव नामक करणग्रन्थ की रचना की। तत्पश्चात् लगभग दो शताब्दियों तक ज्योतिष एवं वेध-परम्परा का प्रचार-प्रसार सामान्य गति से चलता रहा। इसके बीच अनेक विद्वान हुए, जिनमें **कमलाकरभट्ट** तथा **मुनीश्वर** आदि प्रमुख हैं। इनके ग्रन्थों में भी वेध-सम्बन्धी पूर्वागत परम्परा का ही परिपालन है।

इस तरह सूर्यसिद्धान्त या आर्यभट्ट के काल से प्रारम्भ कर लगभग 15वीं शताब्दी तक मुख्यतया **शङ्कु-यन्त्र, घटीयन्त्र, नलिकायन्त्र, यष्टियन्त्र, चापयन्त्र, तुरीययन्त्र, फलकयन्त्र, दिगंशयन्त्र** तथा **स्वयंवहयन्त्र** का प्रयोग दिखाई देता है। यद्यपि इस काल में वेध प्रक्रिया विकसित हो चुकी थी, नये यन्त्रों का आविष्कार भी प्रचलन में था, परन्तु स्थायी वेधशालाओं की चर्चा कहीं प्राप्त नहीं होती।

वैदिक वाङ्मय में ज्योतिर्विज्ञान का स्वरूप त्रिस्कन्धात्मक प्राप्त नहीं होता है, तथापि नामान्तर से यह सुविख्यात था। निश्चित ही उस समय यन्त्रों की रचना व उनसे वेध की प्रणाली अपने चरमोत्कर्ष पर रही होगी। इसीलिये यजुर्वेद में ग्रहवेध करने वाले को 'नक्षत्रदर्श' कहा गया है -

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्। (यजुर्वेद ३०/२०)

वैदिक वेधविधान वैज्ञानिक व विशुद्ध फल देने वाला है। इसीलिये महर्षियों ने भूमि की स्थिति को सूर्य की आकर्षण शक्तियों से प्रमाणित करते हुये प्रतिपादित किया है –

सविता यन्त्रै: पृथ्वीमरभरणात्। ऋग्वेद - (१०/१४९।१)

कौषीतकि ब्राह्मण में निरन्तर सूर्योदय का वेध करते हुए वर्ष की अवधि व काल की इकाईयों को निर्धारण करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर वेध परम्परा का संकेत मिलता है।

ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि ऋषि वामदेव ने वृहस्पतिग्रह का वेध कर उसके समस्त रहस्यों को जन सामान्य के लिये प्रकाशित किया। उन्होंने बताया कि –

वृहस्पति: प्रथमं जायमानो महो ज्योतिष: परमे व्योमन्।

सप्तास्रूसतुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि।। (ऋग्वेद – ४/५०/१)

भृगु ऋषि के पुत्र ऋषि वेनभार्गव ने शुक्र ग्रह का वेध करते हुए उसके तत्वों व रहस्यों को प्रतिपादित किया। ऋग्वेद के सूक्तों (९-२५, १०-१२३) में शुक्र से सम्बन्धित अत्यन्त रोचक ज्ञान प्रामाणिकता से प्रतिपादित हुआ है। जैसे –

अधिद्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरूचद्विदिवो रोचना कवि:। (ऋग्वेद ९/८५/९)

भानु: शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्। (ऋग्वेद ९-८५/१२)

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।

इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति।। (ऋग्वेद १०/१२३/१)

इस प्रकार का अतिसूक्ष्म ग्राहेत्पत्ति का विज्ञान तथा ग्रहादिपिण्डों की स्थितियों का विवेचन निश्चित ही वेधपरम्परा से ही सम्भव हुआ है। इतनी प्रामाणिकता होना वेध परम्परा के समृद्ध विकसित स्वरूप को संकेतित करती है। आज भी वह प्राचीनतम व परम प्रामाणिक वेध प्रक्रिया अनुसन्धान का विषय है।

निश्चित रूप से वेदांग ज्योतिष के समय आधुनिक ज्योतिष के प्रमुख सिद्धान्तों का प्रचलन था। इस समय ज्योतिर्विज्ञान को वेदांगों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त था। वेदों के आधारभूत कर्म यज्ञविधान के लिये उचित समय व सूक्ष्म दिग्देश ज्ञान को निर्दिष्ट करने के कारण इसे मुख्य स्थान प्रदान किया गया।

1.4 वेधशाला विवेचन

भारत में वेधशालाओं का वास्तविक इतिहास **महाराजसवाईजयसिंह द्वितीय** के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है। जयसिंह का समय 1686 ई0 से 1743 ई0 पर्यन्त माना जाता है। जयसिंह का जन्म 1686 ई0 में हुआ था और त्रयोदश वर्ष की आयु में वे आम्बेर राज्य की गद्दी पर बैठे। महाराज को **ज्योतिष** तथा **वेध** इत्यादि का अत्यन्त ज्ञान था तथा वे इस कार्य में रूचि भी लेते थे। तत्कालीन करणादि ग्रन्थों से प्राप्त मान दृग्तुल्य नहीं होते थे और बहुत अन्तर पड़ता था। उस

समय **टॉलमी की ऐलमैजेस्ट-ला-हायर की ज्योतिष सारणियाँ**, **उलूगवेग की ज्योतिष सारणियाँ** तथा भारतीय ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ विद्यमान थे। उलूगवेग की सारिणी 841 हिजरी में बनी थी, उसी को संसोधित करके **'जिजमुहम्मदशाही'** नामक सारिणी-ग्रन्थ का निर्माण हुआ। यह सारिणी हिजरी सन् 1938 के लिए बनी थी। इसके अतिरिक्त हिन्दू तथा यूरोपीय ग्रन्थों के द्वारा सारणियों को देखा गया। परन्तु किसी सारिणी में दृक्तुल्यता नहीं थी।

अतः महाराजसवाईजयसिंह ने इस गणना को शुद्ध करने का सङ्कल्प लिया। उन्होंने हिन्दू, मुस्लिम और यूरोपियन खगोलशास्त्रियों को आमन्त्रण दिया। सभी विद्वानों का सम्यक् सहयोग लेकर सर्वप्रथम महाराज ने **दिल्ली** में एक वेधशाला बनवायी। इसके पश्चात् **जयपुर, उज्जैन, वाराणसी** तथा **मथुरा** में भी वेधशालाएँ स्थापित की गयीं। ये वेधशालाएँ इसलिए बनवायी गयीं कि विभिन्न स्थानों पर एक साथ वेध करने पर स्पष्टान्तर आदि का संस्कार यदि कर दिया जाय तो वेध द्वारा प्राप्त सर्वत्र का मान एक ही होना चाहिए। इसमें शुद्धता का बोध होगा।

दिल्ली की वेधशाला का निर्माण 1724 ई0 में किया गया। इसमें मिश्रयन्त्र के अन्तर्गत पाँच यन्त्रों का निर्माण सम्राटयन्त्र, जयप्रकाशयन्त्र, रामयन्त्र, षष्ठांशयन्त्र तथा पलभायन्त्र का निर्माण हुआ। वर्तमान में यह **'जन्तर-मन्तर'** के नाम से भी जाना जाता है। **1728 ई0 में जयपुर की वेधशाला** निर्मित हुई। इसमें उन्नीस यन्त्रों का निर्माण किया गया- चक्रयन्त्र, पूर्वकपालीयन्त्र, पश्चिमकपालीययन्त्र, रामयन्त्र, दिगंशयन्त्र, जयप्रकाशयन्त्र, षष्ठांशयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, नाड़ीवलयदक्षिणगोलयन्त्र, नाड़ीवलयोत्तरगोलयन्त्र, पलभायन्त्र, कान्तिवृत्तयन्त्र, यन्त्रराज, उन्नतांशयन्त्र, द्वादशराशिवलययन्त्र, लघुसम्राटयन्त्र, बृहत्सम्राटयन्त्र तथा ध्रुवदर्शकयन्त्र। **उज्जैन की वेधशाला का निर्माण 1734 ई0** में हुआ। इसमें सम्राटयन्त्र, नाड़ीवलययन्त्र, दिगंशयन्त्र, शङ्कुयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, दिक्साधनयन्त्र तथा धूपघटिका यन्त्र का निर्माण किया गया। **काशी (वाराणसी) की वेधशाला 1737 ई0** में बनवायी गयी। इस वेधशाला मे लघुसम्राटयन्त्र, बृहत्सम्राटयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, चक्रयन्त्र, दिगंशयन्त्र और नाड़ीवलययन्त्र बने हैं। **सन् 1738 ई0 में मथुरा की वेधशाला** निर्मित हुई। इसमें क्षितिजवृत्ताकारयन्त्र, विषुवद्वृत्तीययन्त्र, छदिसमस्थानकयन्त्र तथा षष्ठांशविलिखित मानयन्त्र बनवाये गये थे।

जयसिंह के अनन्तर आधुनिक वेधकर्ताओं में सर्वप्रथम **वेंकटेशबापूदेवशास्त्री केतकर** महोदय का नाम स्मरणीय है। इन्होंने प्राच्य-पाश्चात्य ग्रहगणित के समन्वय से 1818 शक में सूक्ष्मसिद्धान्तमण्डित 'केतकीग्रहगणित' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसी क्रम में सन् 1835 ई0 के

उड़ीसा प्रान्त के **सामन्त चन्द्रशेखर** का भी वेध के क्षेत्र में योगदान स्मरणीय है। इन्होंने दृग्गणितैक्य-सम्पादन के लिए प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत यन्त्रवर्णन के अनुसार कुछ यन्त्रों का निर्माणकर वेध द्वारा 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की। ज्योतिषशास्त्र की आधुनिक परम्परा में **डॉ मेघनाद साहा** आदि विद्वान स्मरणीय हैं।

आधुनिक भारतीय वेधशालाओं में **मद्रास वेधशाला, तमिलनाडु प्रदेशस्थ कोडाईकनाल वेधशाला, नीलगिरि पर्वत पर स्थित उटकमण्ड वेधशाला, उस्मानिया वेधशाला** आदि प्रमुख हैं। और साथ ही साथ राजस्थान प्रान्त के उदयपुर नगर में फतेहसागर जलाशय के निकट स्थित **उदयपुर वेधशाला** और उत्तराञ्चल प्रदेश के नैनीताल शहर में स्थित **नैनीताल वेधशाला** भी देश की श्रेष्ठ वेधशालाओं में परिगणित है।[ii] हाल के कुछ दशकों में भारतीय वेधशाला के निर्माता आचार्य **प्रो0 कल्याणदत्तशर्मा जी** ने **सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, लालबहादुरशास्त्री-राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ ((संस्थान) नई दिल्ली, जयपुर, लखनऊ विश्वविद्यालय के ज्योतिर्विज्ञान विभागीयवेधशाला** तथा **देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार** में नवीन वेधशालाओं का निर्माण

करवाया है।

प्रायः दैवज्ञों का मत है कि जब सिद्धान्त तथा करण ग्रन्थों के द्वारा ग्रहों की स्थिति, ग्रहण, शृङ्गोन्नति तथा उदयास्त में **'न प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि प्रवर्तते'** इस कथन के अनुसार वेधशालाओं का प्रयोजन होना अवश्यम्भावी है। प्रायः देखा जाता है कि सिद्धान्त तथा करण ग्रन्थों में ग्रह-स्पष्टादि लाने पर दृश्य-ग्रह स्थिति से कुछ अन्तर पर प्राप्त होता है जो नितरां अशुद्ध है। आजकल बिना बीज संस्कार से संस्कारित ग्रहलाघव और मकरन्दादि ग्रन्थों से आनीत ग्रह दृश्य के समनुकूल नहीं होते हैं जबकि सर्वत्र दृग्गणितैक्य मान का समादर किया जाता है। यात्रा विवाह, उत्सव तथा जातकशास्त्र (जन्मकुण्डली निर्माण) में स्पष्ट ग्रहों से ही फलादेश की स्फुटता बतलायी गयी है, अतः दृग्गणितैक्य मान ही ग्राह्य है। इस सन्दर्भ में **सिद्धान्तशिरोमणि** के प्रणेता **श्रीमद्भास्कराचार्य** का कथन स्मरणीय है-

यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृदया।।

वशिष्ठ सिद्धान्त में भी कहा गया है-

यस्मिन् पक्षे यत्र काले तेन दृग्गणितैक्यकम्।

दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यातिथ्यादिनिर्णयम्।।

इस प्रकार सभी फलादि दृग्गणितैक्य स्पष्टग्रहों पर आश्रित होने पर ही सिद्ध होते हैं। यदि गणितागत ग्रह दृकतुल्य नहीं है तो वेधशाला के यन्त्रों के माध्यम से इनकी स्थिति को निर्धारित किया जा सकता है।

वेधशाला की प्रासंगिकता तथा उपयोगिता

निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अवलोकनार्थ है -

1. **ग्रहादिकों के दृग्गणितैक्य निर्णय हेतु**
2. **कालान्तरागत अन्तर के अन्वेषण हेतु**
3. **दिग्देशकाल निर्धारण के लिए**
4. **क्षयाधिमास-काल-स्थितितत्त्व के परिशीलन हेतु**
5. **सूर्य-चन्द्रग्रहण काल में स्थितिकाल-स्पर्श-सम्मीलन-मध्यग्रहण-उन्मीलन-मोक्षादि अवस्था, स्थिति, समय, प्रभावादि के अन्वेषण हेतु**
6. **अक्षक्षेत्रों की सभी अवस्थाओं तथा स्थितियों के परिज्ञान हेतु**
7. **ग्रह-नक्षत्रादि की संस्थिति-चार-व्यस्थिति-वर्ण-स्वरूप-कक्षाक्रमादि के सम्यक् अवबोधनार्थ।**
8. **गोलीय पदार्थों के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए**
9. **खगोलीय घटनाओं के वेधप्रयुक्त परिलेख को प्रदर्शित करने हेतु**
10. **ग्रह-नक्षत्र युति-ग्रहयुद्ध-समागम-शृङ्गोन्नति-जयपराजयादि विशिष्ट गोलीय विलक्षण घटनाओ के प्रत्यक्षीकरण हेतु।**

इसके साथ ही साथ, अन्य समस्त दृष्ट-अदृष्ट कटाह के रूप में स्थित ब्रह्माण्ड के स्वरूप को हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति प्रत्यक्ष दर्शन के लिए वेधशाला परम उपयोगी है। अतः आज ज्योतिर्गणित के उन्नयन हेतु वेधशालाओं की महती आवश्यकता है और यही उसका परमोद्देश्य है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन पुरुषार्थचतुष्टय के साधन-स्वरूप ज्योतिर्विज्ञान की आधारभूत प्रयोगशाला, वेधशाला ही है। इसके अतिरिक्त कहीं अन्य इसका परीक्षण, प्रयोग, अनुसन्धान, ज्ञान सम्भव नहीं है। वेधशाला के इन सिद्धान्तों का कालगणना तथा

ग्रहादि साधन के सन्दर्भ में प्रात्यक्षिक स्वरूप ही अन्य शास्त्रों से इसकी आवश्यकता, उपयोगिता तथा प्रासंगिकता को स्वयं सिद्ध करता है। यथोक्तम्-

अप्रत्याक्षि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।

प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।।

वेध प्रक्रिया गणित से साधित ग्रह को नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष देखने की प्रक्रिया का नाम है। अर्थात् गणितागत ग्रह जब वेध द्वारा प्राप्त ग्रह से समान हो, तब उसे दृग्गणितैक्य कहा जाता है। आचार्य आर्यभट्ट, श्रीपति, लल्ल, श्रीधर, पद्मनामभ, ब्रह्मगुप्त एवं गणित में नवीन-नवीन परिष्कार कर के अपनी सद् युक्तियों द्वारा अपने ग्रन्थों का सर्वोत्तम सिद्धान्त ग्रन्थों की सारणी में स्थापित करने वाले ज्योतिषरत्न 'भास्कराचार्य' आदि ने अपने-अपने सिद्धान्त ग्रन्थों में यन्त्राध्याय द्वारा यन्त्रों का वर्णन कर के वेध-विद्या की इस परम्परा को आगे बढ़ाने का परम श्लाघ्य प्रयास किया है।

अतीन्द्रियों द्वारा ग्रहों के विषय में प्रतिपादित ज्ञान में कुछ स्थूलता दिखाई देने पर परवर्ती आचार्य बीज संस्कार द्वारा उसे शुद्ध कर लिया करते थे। आचार्य गणेश दैवज्ञ का नलिका बन्धन व केतकर का स्फुट संस्कार प्रदान कार्य इसी श्रृंखला में किये गये स्तुत्य प्रयास हैं। मध्यकाल में यवनों के द्वारा भी वैदिककाल से चली आ रही वेधज्ञान प्रणाली का अनुसरण किया गया। यहाँ 'तूलांश' व मिर्जा

उलूकवेग द्वारा स्थापित यन्त्रशालाओं का वर्णन मिलता है।

मुगलकाल की सांध्यवेला में अश्वमेध यज्ञ से सुशोभित जयपुराधीश सवाई जयसिंह देव नृपति ने पवित्र भारतवर्ष के पाँच ऐतिहासिक नगरों में एक-एक करके पाँच वेधशालाएँ स्थापित की थी। इनमें मथुरा एवं वाराणसी की वेधशालाएँ तो भग्नावशेषमात्र हैं, दिल्ली की यन्त्रशाला में मिश्रयन्त्रादि यन्त्र प्राप्त होते हैं। 'क्षिप्रा' तट पर स्थित 'उज्जैन' की वेधशाला में पाँच यन्त्र सुरक्षित हैं। इन सब प्राचीन यन्त्रशालाओं में 'सवाई जयपुर' की यन्त्रशाला (जन्तर-मन्तर) आज भी सुरक्षित एवं यन्त्रराज, क्रान्तिराज, द्वादशराशिवलयादि यन्त्रों तथा लघु-वृहत् सम्राटयन्त्र षष्ठांशयन्त्रादि यन्त्रों से विभूषित होकर जनता एवं विद्वानों को दो-दो सेकेण्ड का समय क्रान्ति, अक्षांश, उन्नतांश, चर, अग्रा, नतांश, ध्रुवोन्नति, रात्रि में ग्रहों का वेध प्रकार आदि विविध खगोलीय पदार्थों का सूक्ष्मतम दिग्दर्शन कराती है। पूर्व में इनमें से कतिपय यन्त्र चूने के थे, जिनसे वेध क्रिया में स्थौल्यभय बना रहता था, इसे ध्यान में रखकर श्रद्धेय गोकुलचन्द जी भावन व श्री चन्द्रधर जी गुलेरी ने अंग्रेज अभियन्ता के सहयोग से जयपुरीय यन्त्रालय का जीर्णोद्धार कर के परम सुन्दर व वेधोपयोगी बना

दिया।

उज्जैन यन्त्रशाला का जीर्णोद्धार श्री सूर्यनारायण व्यास ने कराया तथा दिल्लीस्थ वेधशाला का जीर्णोद्धार केदारनाथ जी चौरास्या द्वारा सम्पन्न किया गया था।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और सदाचार के मूल वेदों के षड्-वेदाङ्ग स्वरुप में ज्योतिषशास्त्र प्रमुख अङ्ग के रुप में विद्यमान है। वेदाङ्गों में ज्योतिष का स्थान नेत्रत्वेन मूर्धा के रूप में वर्णित है, जिसका कारण इसकी प्रत्यक्षता ही है। समस्त वेदाङ्गों में अग्रगण्य ज्योतिष्पिण्डों (ग्रहों) के गति के कारणभूत, परमपवित्र, रहस्यमयी, समस्त-जगत का आधारभूत, जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयादि काल को प्रदर्शित करने वाला, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा ग्रहों के चार इत्यादि अनेक स्वरूपों का कालश्रयात्मक ज्ञान ही 'ज्योतिषशास्त्र' है। इसके प्रमुख स्कन्धों में सिद्धान्त या गणित ज्योतिष है, जिसके माध्यम से सूर्यादिक ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर कलनात्मक (गणनात्मक) काल (समय) को ज्ञात किया जाता है। वैदिक काल से ही कालविधानशास्त्र की आवश्यकता ही उसकी उपयोगिता को सिद्ध करती है। सामान्यतः अल्पावधि में इन काल रुपी सिद्धान्तों की गणना तथा समयमान में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु दीर्घ कालावधि में युगों के परिवर्तन के कारण कालान्तर भेद से विविध आकर्षण-प्रकर्षण-विकर्षण, अयन-चलन, शर इत्यादि तत्त्वों में अन्तर उत्पन्न होता है जिसके निराकरण हेतु शास्त्रों में वेधयन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष वेध को ही प्रमाण माना गया है तथा वेध द्वारा प्राप्त बीज संस्कार को पूर्व सिद्धान्त में संस्कारित करने से काल को शुद्धतम करने की परम्परा रही है। अतः त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के आधाररूपक सिद्धान्त ज्योतिष की ग्रह-गणित परम्परा के अन्तर्गत **'वेध तथा वेधशालाओं' का** महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में वेध परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। सृष्टि के आविर्भाव के समय से ही महदन्तरिक्ष में विद्यमान ज्योतिषोक्त् ग्रहपिण्डों के रहस्य को जानने की उत्कट अभिलाषा आदिमानव की रही थी और इस हेतु उनके प्राथमिक प्रयास, की गई क्रियाएँ, कार्य में आए उपकरण, विचारित योजनाएँ, स्वीकृत मान्यताएँ तथा स्थापित सिद्धान्त ही वेध प्रक्रिया के प्रथम सोपान के रूप में विज्ञजन स्वीकार करते हैं। यही प्रकार व क्रम अनवरत वृद्धि को प्राप्त होता हुआ श्रुति व स्मृतियों में व्यापक रूप से प्राप्त होता है। वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना। ग्रहों तथा तारों की स्थिति के ज्ञान हेतु आकाश में उन्हें देखा जाता था।

आकाश में ग्रहादिकों को देखकर उनकी स्थिति का निर्धारण ही वेध है। परिभाषा रूप में "नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है।" नलिकादि यन्त्रों से ग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम 'वेध' विश्वविश्रुत है। दृष्टि तथा यन्त्रभेद से वेध दो प्रकार का होता है-दृष्टि वेध भी अन्तर्दृष्टिवेध तथा बाह्यदृष्टिवेध से दो प्रकार का होता है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेध – वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना।

यन्त्र – जिन अवयवों के द्वारा ग्रहों का वेध किया जाता है, उसे यन्त्र कहते है।

वेधशाला – वेधानां शाला इति वेधशाला। अर्थात् वह स्थान जहाँ ग्रहों के वेध, वेध-यन्त्रों द्वारा किया जाता जाता है, उसका नाम वेधशाला है।

रेखागणित – रेखाओं से सम्बन्धित गणित का ज्ञान जिसके अन्तर्गत हम करते हैं, उसका नाम रेखागणित है।

शंकु – पलभा मापक यन्त्र का नाम शंकु है। यह द्वादशांगुल होता है।

पंचसिद्धान्त – पौलिश,रोमक, वसिष्ठ, सौर एवं पितामह के सिद्धान्तो को 'पंचसिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। इस पर आधारित 'पंचसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ की रचना वराहमिहिर ने की है।

वेधयन्त्र – आकाशस्थ ग्रहपिण्डों, नक्षत्रों को वेध करने वाला यन्त्र 'वेधयन्त्र' कहलाता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. घ 4. क 5. घ 6. ख

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

(ग) भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय वेधपथ प्रदर्शक – पं0 गोकुल चन्द्र भावन

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) प्रस्तरवेधशाला – प्रोफेसर भास्कर शर्मा 'श्रोत्रिय'

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सवाईजयसिंहस्यज्योतिषेऽवदानम्– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

वेधशालावैभवम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय वेध परम्परा का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
2. वेध प्रयोजन स्पष्ट कीजिये।
3. वेधशाला पर प्रकाश डालिये।
4. ज्योतिष में वेध का महत्व प्रतिपादित कीजिये।
5. यन्त्र से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 2 यन्त्रों का परिचय

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 यन्त्र परिचय
2.4 विविध यन्त्र विवेचन
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-104 के तृतीय खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – यन्त्रों का परिचय। इसके पूर्व की इकाई में आपने भारतीय वेध परम्परा तथा वेधशाला आदि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहवेध हेतु यन्त्रों से जुड़े विषयों का अध्ययन करने जा रहे है।

भारतवर्ष में वेध परम्परा का प्रादुर्भव वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था। कालान्तर में उसका क्रियान्वयन का स्वरूप समय-समय पर परिवर्तित होते रहा है। कभी तपोबल से समस्त ग्रहों की स्थितियों को जान लिया जाता था, फिर ग्रहों को प्राचीन वेध-यन्त्रों से देखा जाने लगा। सम्प्रति अत्याधुनिक वेध-यन्त्रों से आकाशीय पिण्डों का अध्ययन करने की परम्परा आरम्भ हो चुकी है। सिद्धान्त ज्योतिष के लिए वेध प्रक्रिया एवं वेध के लिए वेधशाला आदि महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिष शास्त्रीय वेध परम्परा का ज्ञान एवं वेधशालाओं के स्वरूप को जानने का प्रयास करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि यन्त्र क्या है?
- यन्त्रों का निर्माण भारतवर्ष में कब आरम्भ हुई ?
- प्रमुख वेध-यन्त्र कौन-कौन से हैं?
- वेधशालाओं में यन्त्रों की क्या आवश्यकता है?
- यन्त्र का बोध करने में समर्थ हो जायेंगे।

2.3 यन्त्र परिचय

प्रत्येक युग में स्वयं भगवान भास्कर ने महर्षियों को ज्योतिर्विज्ञान का उपदेश दिया है। वही ज्ञान सूर्यांशपुरूष ने मय को बताया। उनके संवाद स्वरूप आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में इस वेधपरम्परा का प्रामाणिक निर्देश प्राप्त होता है। ग्रहों की गति के कारण उनके दैनिक वेध करने तथा गणित से उनकी यथार्थ स्थिति का पता लगाने के लिए भी वहाँ स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहा:।

प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

प्रयोजन के साथ ही विविध प्रकार के वेधयन्त्रों का परिचय भगवान सूर्य ने इस प्रकार निर्देशित किया है –

कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि साधयेत्।
एकाकी योजयेद् बीजं यन्त्रं विस्मयकारिणि।।
शंकु यष्टि धनुश्चक्रै श्छायायन्त्रैरनेकधा।
गुरूपदेशाद् विज्ञेयं कालज्ञानमतीन्द्रितै:।।
तोययन्त्रकलापाद्यैर्मयूरनर वानरै:।
ससूत्ररेणुगर्भैश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत्।।
पारदाराम्बुसूत्राणि शुल्वतैलजलानि च।
बीजानि पांसवस्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभा:।।
ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि।
षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्।।
नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ ।
छायासंसाधनै: प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम्।।

यहाँ पर निम्नलिखित यन्त्रों का विवेचन प्राप्त होता है-

1. शंकुयन्त्र 2. यष्टियन्त्र 3. धनुषयन्त्र 4. चक्रयन्त्र 5. तोययन्त्र 6. मयूर यन्त्र 7. नर यन्त्र 8. वानर यन्त्र।

सूर्यसिद्धान्त में इन यन्त्रों का निर्माण विधियों के साथ ही वेध के प्रकारों का भी उल्लेख है। उदाहरण स्वरूप 'तोय यन्त्र' को बनाने की विधि इस प्रकार है – अभीष्ट माप का एक ताम्र पात्र लेकर उसके तल में एक छिद्र करें। वह छिद्र इस तरह बनावें कि जल से परिपूर्ण ताम्रपात्र के उस छिद्र से पानी निकलता हुआ एक घण्टे या एक दिन में अथवा निश्चित समयावधि का ज्ञान तथा अनुपात से मध्यकालिक समय का ज्ञान भी आसानी से हो जाता है। समय ज्ञान में प्रयुक्त जल के कारण ही इसका नाम तोययन्त्र या जल यन्त्र, कपाल के समान आकृति होने के कारण कपाल यन्त्र तथा घटयात्मक काल का बोध होने से इसका नाम घटीयन्त्र है।

वसिष्ठ सिद्धान्त में वेधसिद्ध तिथि-नक्षत्रादि के निर्णय को ही स्वीकार करने का निर्देश मिलता है-

यस्मिन् पक्षे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्।

दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादिनिर्णयम्।।

आर्ष ग्रन्थों के उपरान्त प्रसिद्ध खगोलवेत्ता तथा वेध-निपुण आचार्य आर्यभट्ट (४९९ ई0) हुये। इन्होंने वेध परम्परा को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर कई खगोलीय सिद्धान्त प्रतिपादित किये। इनके द्वारा प्रयोग में लिये यन्त्रों में से गोल यन्त्र का स्वरूप निम्नवत् है –

पूर्वापरमध उर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरंचैव।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ।।
पूर्वापरादिग्लग्नं क्षितिजाग्रयोश्च लग्नं यत्।
उन्मण्डलं भवेत्तत् क्षयवृद्धी यत्र दिवसनिशो:।।
काष्ठमयं समवृत्तं समन्तत: समगुरूं लघुं गोलम्।
पारदतैलजलैस्तं भ्रमयेत् स्वधिया च कालसमम्।।

ज्योतिर्विज्ञान के तीनों स्कन्धों में समान अधिकार रखने वाले विख्यात दैवज्ञ वराहमिहिर ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ पंचसिद्धान्तिका में अनेक यन्त्रों का विस्तार से वर्णन किया है। शंकु अथवा दण्ड से ध्रुव का वेध निर्दिष्ट करते हुए शंकु के अग्र भाग से इच्छित स्थान के अक्षांश आदि का ज्ञान भी उन्होंने प्रतिपादित किया है। मुख्य रूप से उन्होंने जलघटीयन्त्र के द्वारा समय ज्ञान का नूतन आविष्कार किया है। उनके द्वारा निर्मित मीनार के समान वेधशाला आज भी दिल्ली में स्थित है।

आचार्य लल्ल (५५०-६२५ ई0) ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ 'शिष्यधीवृद्धिदम्' ग्रन्थ में बारह प्रकार के यन्त्रों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। जैसे –

गोलो भगणश्चक्रं धनुर्घटीशंकुशकटकर्त्रय:।
पीठकपालशलाका द्वादशयन्त्राणि सह यष्टया।।

आचार्य द्वारा विवेचित यन्त्रों के नाम इस प्रकार हैं –

1. गोल यन्त्र 2. भगणयन्त्र 3. चक्रयन्त्र 4. धनुर्यन्त्र 5. घटीयन्त्र
2. शंकुयन्त्र 7. शकटयन्त्र 8. कर्तरीयन्त्र 9. पीठयन्त्र 10. कपालयन्त्र
11. शलाकायन्त्र 12. यष्टियन्त्र

खगोल एवं सिद्धान्तज्योतिष के वैश्विक स्तर पर उद्भट विद्वान आचार्य ब्रह्मगुप्त (शक ५१८) का नाम आज भी सम्मान से लिया जाता है। इन्होंने प्रतिदिन यन्त्रों से वेध करने हेतु निर्देश दिये हैं। आपके मत से प्रामाणिक रूप से दृग्गणित साधन करने के लिये अहर्निश वेध करना नितान्त आवश्यक है। आपका मत है कि –

तन्त्रभ्रंशे प्रतिदिनमेव विज्ञाय धीमता यत्न:।

कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति।।

आचार्य श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर ग्रन्थ में अनेक वेधयन्त्रों व वेध विधियों पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं –

गोलश्चक्रं कार्मुकं कर्तरी च।
कालज्ञाने यन्त्रमन्यत् कपालम्।।
पीठं शंकु: स्याद्घटीयष्टिसंज्ञम्।
गन्त्रीयन्त्राण्यत्र दिक्सम्मितानि।।

उनके द्वारा निर्देशित वेधयन्त्र निम्न है –

१. गोलयन्त्र २. चक्रयन्त्र ३. कार्मुकयन्त्र ४. कर्तरीयन्त्रम् ५. कपालयन्त्र ६. पीठयन्त्र ७. शंकुयन्त्र ८. घटीयन्त्र ९. यष्टियन्त्र १०. गन्त्रीयन्त्र।

आचार्य श्रीपति ने वेधयन्त्रों के निर्माण की विधियों पर भी प्रकाश डाला है। घटीयन्त्र के निर्माण के प्रसंग में वे लिखते हैं कि –

शुल्वस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत्
षडंगुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।।
तदम्भसा षष्टिपलै: प्रपूर्य।
पात्रं घटार्थप्रमितं घटी स्यात्।।
सत्रयंशमाषत्रयनिर्मिता या
हेम्न: शलाका चतुरंगुला स्यात्।।
विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं।
प्रपूर्यते नाडिकयाऽम्बुना तत्।।

सिद्धान्त ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्य भास्कराचार्य जी ने यात्रा, विवाह, मांगलिक कार्य, उत्सव तथा जातकीय कार्यों में वेधसिद्ध ग्रहगणित द्वारा ही प्रत्यक्ष फलप्राप्ति के कारण वेधकर्म की अनिवार्यता प्रतिपादित की है। वेधकर्म की आवश्यकता के कारण ही उन्होंने स्वतन्त्र रूप से यन्त्राध्याय में विविध यन्त्रों के निर्माण तथा उनके वेध प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनके मत से दिन-रात्रि के काल मान की इकाईयों का यथार्थ ज्ञान यन्त्रों के बिना असम्भव रहता है। सिद्धान्तशिरोमणि में अनेक प्राचीन एवं नवीन आविष्कृत यन्त्रों का प्रतिपादन उन्होंने किया है। इनका वर्णन इस प्रकार हैं –

गोलो नाडीवलयं यष्टि: शंकुर्घटीचक्रम्।
चापं तुर्यं फलकं धीरेकम्पारमार्थिकं यन्त्रम्।।

ये यन्त्र हैं - १. गोल यन्त्र २. नाड़ीवलय यन्त्र ३. यष्टियन्त्र ४. शंकुयन्त्र ५. घटीयन्त्र ६. चक्रयन्त्र ७. चापयन्त्र ८. तुरीय यन्त्र ९. फलकयन्त्र १०. धीयन्त्र।

जल, स्थल व आकाशवर्ति पदार्थों का वेध करने के लिए भास्कराचार्य ने पारे की सहायता से 'स्वयंवह' नामक एक नवीन यन्त्र का भी आविष्कार किया है। उसका निर्माण प्रकार इस प्रकार है –

लघुदारूजसमचक्रे समसुषिरारा: समान्तरा नेम्याम्।
किंचिद्वक्रा योज्या: सुषिरस्याध: पृथक् तासाम्।।
रसपूर्णे तच्चक्रं द्वायाधाराक्षस्थित स्वयं भ्रमति।

वेधकर्म में निपुण गोलवेत्ता विद्वान् महेन्द्रसूरी ने 'यन्त्रराज' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में उन्होंने यन्त्रराज नामक यन्त्र के निर्माण की विधि तथा उससे समस्त वेधविधान का विस्तृत विवेचन किया है। समस्त वेधकार्य व गोलीय पदार्थों का यथार्थ परिज्ञान अकेले इस यन्त्र से हो जाने के फलस्वरूप ही इसका नामकरण यन्त्रराज किया गया है। यन्त्रराज की सहायता से महेन्द्रसूरी ने सूर्य की परमक्रान्ति २३/४५ तथा वार्षिक अयन गति ५४ विकला सिद्ध की है जो वर्तमान में भी प्रामाणिक रूप से स्वीकृत है।

पद्मनाभाचार्य (शक १३२०) ने वेधयन्त्रों पर आधारित प्रसिद्ध 'नलिकायन्त्राध्याय:' ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का ही अन्य नाम 'ध्रुवभ्रम:' है। आकाशीय पिण्डों की गतिविधयों व गणनाओं का ज्ञान विविध यन्त्रों व प्रकारों से इसमें विवेचित हुआ है। रात्रि में ध्रुवतारे के दर्शन से उसी दिशा व उन्नति के आधार पर अभीष्ट स्थान के दिग् देश व काल के निर्धारण का विधान भी यहाँ विवेचित हुआ है।

लब्धप्रतिष्ठित 'विश्राम' नाम के आचार्य (शक १५३७) ने 'यन्त्रशिरोमणि' ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसमें उन्होंने छ: प्रकार के यन्त्रों की रचना करते हुए उनसे वेध करने का प्रकार प्रतिपादित किया है। वे यन्त्र हैं –

1. नर यन्त्र 2. जल यन्त्र 3. यन्त्रराज
4. चाप यन्त्र 5. तुरीय यन्त्र 6. नलिका यन्त्र

ज्योतिष शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य गणेश दैवज्ञ (ई. १५०२) ने वेध और अनुसन्धान के क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित किये। उनके द्वारा आविष्कृत प्रतोदयन्त्र एक महनीय यन्त्र है। इसके निर्माण की दिशा में उन्होंने इसी नाम से एक ग्रन्थ की रचना भी की है। प्रतोदयन्त्र से अत्यल्प समय में ही काल का सूक्ष्मज्ञान सम्भव है। इसका रचना प्रकार निम्न है –

गणेशोदितं यन्त्रमेतत्प्रतोद

मनायासकालावबोधं प्रवच्मि।
निजेच्छावशादिष्टदैर्ध्य: सुदण्डो
ऽनितस्थूलक: शिंशिवृक्षादिजात:।।
परात्पाहमानापरद्युप्रमाणं यया संख्यया तत्प्रमित्यस्रकै: स:।
समस्थान दैर्घ्यो विधेयोऽस्य शीर्षे, सदा श्रृंखला धारणार्थं नियोजया।।
आधारतोऽध: परित: समस्य दैर्घ्यादिभागे नरवेशनार्थम्।
छिद्राणि कार्याणि तथा यथाऽत्र स्पृष्टानि गर्भे न भवन्ति तानि।।
शीर्षे छिद्रं गर्भमध्ये विधेयमाधारान्ते शंकुलोपार्थमस्मिन्।
पूर्वच्छिद्राद् बाह्यत: शंकुमानं यन्त्रांगाशासन्नमेवं नर: स्यात्।।
बाह्यस्थ शंक्कर्क लव: प्रतोदयन्त्रे भवेदंगुलमानमस्मिन्।
पूर्वोक्तरीत्येष्टघटीनतांशोन्नतांशजीवे सुधिया प्रसाध्ये।।
सूर्यघ्न्युन्नत लव मौर्विका नतज्यासंभक्ताभिमतघटीभवांगुलानि।
एकाद्रिष्वभिमतनाडिकोन्नतेषु रन्ध्रात् स्वांगुलकमिति: समस्थलेऽङ्क्या।।
स्वाहर्मान समस्थलस्य सुषिरे शंकुर्निधेयस्तथा।
यन्त्रे श्रृंखलिकाधृते पतति तद्भा तत्समस्थानके।।
छायाग्रावधि रन्ध्रतश्च गणयेन्नाडी: दिनाद्यार्धके।
याता: शेषमिता: परत्र यदि भा मध्येऽनुपातो भवेत्।।
दण्डो भूमिस्तत्र सूर्योदयो स्याद्भाऽभावो भाऽनन्तरूपा खमध्ये।
तस्या: दृग्ज्याशंकोनृरूप दृग्ज्यातो भायामंगुलान्युक्तरीत्या।।

इस प्रकार गणेशदैवज्ञ ने प्रतोदयन्त्र की रचना कर उससे प्राचीन आचार्यों के मतों का प्रतयक्ष अवलोकन कर, उनकी सत्यता की परीक्षा कर, आये हुए शैथिल्य व अन्तर को संशोधित कर, सुस्पष्ट काल का निर्णय कर अपना मत दृढ़ता से प्रतिपादित किया।

आचार्य गणेश दैवज्ञ ने एक और यन्त्र 'सुधीरंजन' का भी आविष्कार किया था, उसके निर्माण की दिशा में वे लिखते हैं –

यन्त्रं कुर्याद्धातुजं दारूजं वा।
पट्याकारं दैर्घ्यतस्त्वेकहस्तम्।।
दैर्घ्येऽत्राङ्कया: षष्टिभागा: समाना:।
कस्मिंश्चिद्वाप्यत्र यन्त्रस्य कुक्षौ।।

इनके अतिरिक्त भी आर्यभट्ट (ई0 ४९९) ने आर्यभट्टीय ग्रन्थ में, ज्ञानराज ने (ई0 १५०३) सिद्धान्तसुन्दर में, मुनीश्वर ने सिद्धान्तसार्वभौम में, आचार्य मथुरानाथ ने यन्त्रराजघटना में, चिन्तामणि दीक्षित ने गोलानन्द में, आचार्य कमलाकर (ई. १६१६) ने सिद्धान्ततत्वविवेक में और इससे भी अधिक अन्य आचार्यों ने भी अनेक वेधयन्त्रों का निर्माण एवं वेध प्रकारों का विस्तार से विवेचन किया है। तुरीययन्त्र की रचना के सन्दर्भ में आचार्य कमलाकर लिखते हैं –

उर्ध्वाधरा तथा तिर्यग्रेरखा चक्रस्य मध्यगा।
कार्या चक्राङ्घयस्ताभ्यां चत्वार: स्यु: समा इह।।
तदेकाङ्घ्रिस्वरूपाच्च यन्त्रादेव यथा भवेत्।
ज्ञानं दिग्देशकालानां तथा सूक्ष्मं वदाम्यहम्।।

खगोलीय वेध परम्परा के उन्नायक, सिद्धान्त ज्योतिष के युग प्रवर्तक तथा महान ज्योतिर्वेता जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (द्वितीय) का नाम वेधपरम्परा में युगन्धर के रूप में आदरपूर्वक लिया जाता है। महाराजा ने लोकोपकार की दिशा में जन साधारण में ज्योतिष के प्रति रूचि उत्पन्न करने, ज्योतिष के आचार्यों व शोधकर्ताओं तथा जिज्ञासुओं को मानसिक भोजन उपलब्ध कराने के क्रम में प्राच्य व पाश्चात्य विद्वानों के सहयोग से श्रमपूर्वक भारतवर्ष के पाँच विशिष्ट महत्व वाले सांस्कृतिक महानगरों में वेधशालाओं की स्थापना कर उनमें वेधयन्त्रों का निर्माण कराया। समय-समय पर चूने से निर्मित इन यन्त्रों के नष्ट होने व विकृत होने के कारण नया स्वरूप प्रदान किया गया है। इस प्रकार से यन्त्र आज भी सूक्ष्म व प्रामाणिक फल देने में सक्षम है।

अभ्यास प्रश्न –

1. निम्न में 'सूर्यसिद्धान्त' है –
   क. आर्षग्रन्थ ख. भगवान सूर्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ ग. सूर्य-मयासुर संवाद रूपी ग्रन्थ घ. उपर्युक्त सभी
2. आर्य सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन है?
   क. आर्यभट्ट ख. वराहमिहिर ग. भास्कराचार्य घ. गणेश दैवज्ञ
3. सिद्धान्तसुन्दर किसकी रचना है?
   क. ज्ञानराज ख. मुनीश्वर ग. मथुरानाथ घ. आर्यभट्ट
4. 'यन्त्रशिरोमणि' के लेखक कौन है?
   क. मुनीश्वर ख. विश्राम ग. मथुरानाथ घ. लल्ल
5. दिन-रात्रि के काल मान की इकाईयों का यथार्थ ज्ञान किसके द्वारा सम्भव है?

क. यन्त्रों के द्वारा ख. ग्रहों के द्वारा ग. वेध के द्वारा घ. कोई नहीं

6. जल, स्थल व आकाशवर्ति पदार्थों का वेध करने के लिए भास्कराचार्य ने किस यन्त्र का निर्माण किया था?

क. तुरीय यन्त्र ख. स्वयंवह यन्त्र ग. नाड़ी यन्त्र घ. गोल यन्त्र

वेधपरम्परा के अन्तर्गत ही सम्प्रति राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त स्व. पं. कल्याण दत्त शर्मा जी का नाम अग्रगण्य है। जयपुरस्थ वेधशाला में अधीक्षक पद पर सेवायें दे चुके आचार्य जी ने समग्र देश में अनेक स्थानों पर वेधशालाओं का निर्माण कराया है। आपके द्वारा श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नईदिल्ली, शांतिकुंज हरिद्वार, गलतातीर्थ जयपुर, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में स्थापित वेधशालायें परम प्रामाणिक व सुसूक्ष्म दृग्गणित के उपयुक्त हैं। आपके द्वारा जगद्गुरू रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर में भी वेधशाला के निर्माण कार्य में योगदान दिये गये हैं।

आइये अब हम विविध यन्त्रों के बारे में जानने का प्रयास करते हैं। क्रमवार प्रमुख यन्त्रों का परिचय इस प्रकार हैं -

1. **चक्र यन्त्र** - ध्रुवतारें की ओर उन्मुख होता हुआ, यह यन्त्र धातु से बनाया जाता है। यह वृत्ताकार परिधिस्वरूप होता है। इसकी परिधि में ३६० अंश अंकित किये जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक अंश में १०-१० कलाओं के विभाग भी अंकित कर दिये जाते हैं। वृत्त के केन्द्र में एक वेधपट्टिका को व्यास रेखा के समान नलिका से लगाकर स्थापित करते हैं। इसको घुमाने से प्रत्येक वृत्त के दक्षिण में कोण से नीचे साठ घड़ी अंकित आधार वृत्त बनाते हैं। इसी प्रकार पूर्व में कहे भाग से ही दक्षिण में एक छिद्र बनाते हैं। इस छिद्र में आधार वृत्त को स्पर्श करती हुई सुई के आकार की आधारवृत्त की ही वेधपट्टिका स्थापित कर उसी से ग्रहों का वेध किया जाता है।

2. पूर्व कपाली यन्त्र – यह यन्त्र कपाल के समान आकार का होता है। गोलीय दृष्टि से खगोल को याम्योत्तर वृत्त से विभाजित करने पर खगोल के दो भाग हो जाते हैं। इनमें प्रथम पूर्व दिशा के खगोलार्द्ध को बताने वाला पूर्वकपालीयन्त्र तथा पश्चिम दिशा वाले खगोलार्द्ध के रूप में पश्चिम कपाली यन्त्र होता है। पूर्वदिशा में प्रयुक्त कपालीयन्त्र से पूर्वभाग वाले खगोलार्द्ध के पदार्थों का सहजता से परिज्ञान हो जाता है। गोलीय क्षेत्रों, स्थितियों, अक्षक्षेत्रों व ग्रहादि का ज्ञान इस यन्त्र से होता है। इसके द्वारा वेध प्रकार आदि का ज्ञान पश्चिम यन्त्र के समान ही समझना चाहिये।

3. पश्चिम कपाली यन्त्र - पश्चिम कपाल यन्त्र की वृत्ताकार परिधि में ३६० अंश लिखे जाते हैं।

वस्तुत: यही हमारा क्षितिजवृत्त होता है। इसके उपरान्त ६-६ अंशों के अन्तर से क्रमश: दक्षिणध्रुवस्थान, नाड़ीवृत्त विषुवद्वृत्त, बारह राशियों के अहोरात्रवृत्त, दक्षिणोत्तरवृत्त, समवृत्त और नतांशवृत्त अंकित किये जाते हैं। उसी प्रकार इस यन्त्र में दोनों ध्रुवों पर गया हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त, खस्वस्तिक से क्षितिज पर्यन्त दृग्वृत्त तथा क्रान्तिवृत्त इत्यादि स्थापित किये जाते हैं। कपालीयन्त्र में चारों दिशाओं के बिन्दुओं पर से लोहे के तारों से बांधी हुई चतु:सूत्री स्थापित करते हैं। इन तारों में से एक सीधा तार पूर्व तथा पश्चिम दिग्बिन्दुओं से तथा दूसरा तार उत्तर व दक्षिण दिग्बिन्दुओं से बांधा जाता है। जहाँ से दोनों तार मध्य में एक स्थान पर मिलते हैं, वहाँ एक लोहे या ताँबे का गोल पत्र बांध दिया जाता है, जिसके मध्य में एक छेद भी होता है।

4. राम यन्त्र – रामयन्त्र दो भागों में बनाया जाता है। इसके एक भाग में जहाँ कलिका समान पट्टिका बनी होती है, उस स्थान पर दूसरे भाग में रिक्त स्थान होता है और इसी प्रकार दूसरे भाग में जानना चाहिये। इस रिक्त स्थान में खड़े होकर गोलीय पदार्थों का भली-भाँति वेध किया जाता है। रामयन्त्र के ठीक मध्य में एक लोहे का शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु का मूलभाग अध: खस्वस्तिक के नाम से जाना जाता है। यन्त्र का ऊपरी गोलाकार परिधि स्वरूप भाग उस स्थान का स्पष्ट क्षितिज वृत्त होता है। इस क्षितिज वृत्त से शंकु के मूल भाग तक ९० अंश उट्टंकित कर दिये जाते हैं। इन अंशों से नतांश व उन्नतांश का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तर बिन्दु से ३६० अंश तथा कुछ स्थूल कलाएं भी टंकित की जाती हैं। इनसे दिगंश का ज्ञान किया जाता है।

5. दिगंश यन्त्र - एक-दूसरे के मध्य में विद्यमान तीन गोलाकार समानान्तरित भित्तियों के रूप में इस यन्त्र की रचना की जाती है। इस यन्त्र की तीनों भित्तियों का विवेचन निम्नलिखित है-

प्रथम भित्ति – यन्त्र के मध्य भाग में शंकु भित्ति के रूप में यह प्रथम भित्ति होती है। इसके केन्द्र में सूत्र बांधने की दृष्टि से छिद्र सहित एक शंकु भी होता है।

द्वितीय भित्ति – प्रथम एवं तृतीय भित्ति के मध्य में स्थित यह द्वितीय भित्ति इस यन्त्र में प्रमुखता से निर्मित की जाती है।

तृतीय भित्ति – इन दोनों भित्तियों से दुगुनी ऊँचाई पर उन्हीं के समानान्तरित बाहरी भाग में यह तृतीय भित्ति बनाई जाती है।

इन भित्तियों में ३६० अंश तथा स्थूल रूप से कलाएँ अंकित की जाती हैं। साथ ही बाहरी भाग में स्थित सबसे ऊँची भित्ति पर एक चतु:सूत्री स्थापित की जाती है, जिसके मध्यभाग में छिद्र सहित एक लोहे का पत्र बाँधा जाता है।

6. जयप्रकाश यन्त्र - रामयन्त्र के समान ही जयप्रकाश यन्त्र भी विशालकाय तथा दो भागों में

बनाया जाता है। इसके परस्पर पूरक दोनों भागों को मिलाकर ही इस यन्त्र की पूर्णता सिद्ध होती है। इसका कारण यह है कि इसके प्रथम भाग में जहाँ पत्थर की कलियाँ बनी होती हैं, उस स्थान पर द्वितीय भाग में रिक्तता रहती है तथा प्रथम भाग में जहाँ रिक्तता होती है, उस स्थान पर द्वितीय भाग में कलियाँ बना दी जाती हैं। यह रिक्त स्थान वस्तुत: ज्योतिषियों अथवा वेधकर्ता जिज्ञासुओं के आवागमन व वेध के सहज ज्ञान के लिए बनाया जाता है। यहाँ खड़े होकर गणितकर्ता अपनी गणित की शुद्धता का परीक्षण तथा ग्रहों का प्रत्यक्षत: वेध करता है।

इस यन्त्र के दोनों ही भागों का जो उर्ध्व प्रदेश होता है, वह वृत्ताकार भाग ही क्षितिजवृत्त कहलाता है। इस वृत्त में ३६० अंश लिख देने चाहिये। यन्त्र के दक्षिण भाग में अभीष्ट स्थान के अक्षांशों के समान स्थान पर क्षितिज से नीचे की ओर ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। वृत्त के केन्द्र स्थान को अध: खस्वस्तिक कहा जाता है। यहीं पर पूर्व पश्चिम अध: खस्वस्तिकों पर गया हुआ समवृत्त भी अंकित कर देना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर ध्रुवों के मध्य खस्वस्तिक से होकर गया हुआ दक्षिणोत्तरवृत्त उट्टंकित करें। पूर्व एवं पश्चिम दिग् बिन्दुओं से लगा हुआ तथा अध: खस्वस्तिक से उत्तर दिशा में अक्षांशों के समान अन्तर से नाड़ीवृत्त का निर्माण करना चाहिये। इसी प्रकार नाड़ीवृत्त से समानान्तरित स्थूल रूप से कुछ छोटे आकार के अहोरावृत्त भी बना देने चाहिये। मुख्यतया छ: अहोरात्रवृत्त तो होने ही चाहिये जो द्वादश राशियों का निर्देश करने वाले होते हैं। इनमें से तीन अहोरात्रवृत्त नाड़ीवृत्त से उत्तर दिशा में तथा तीन वृत्त उससे दक्षिण दिशा में बनाने चाहिये। सूक्ष्मता की दृष्टि से इन अहोरात्र वृत्तों की संख्या ३६० अंश या इससे अधिक भी हो सकती है।

7. षष्ठांश यन्त्र - मध्याह्नकाल में सूर्य के नतांश-उन्नतांश व क्रान्त्यादि जानने के लिए षष्ठांश यन्त्र की रचना की जाती है। कक्ष का निर्माण कर उसमें इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। कक्ष के दक्षिणी भाग की दीवार पर पूर्व और पश्चिम दिशा के कोणों से एक अधोमुखी अर्द्धगोलाकार आकृति का निर्माण किया जाता है। यह आकृति सफेद चूने या रंग से बना सकते हैं। इस आकृति में अंश कला व स्थूल विकलादि का अंकन किया जाता है। जिस स्थान पर से इन वृत्त खण्डों पर अंशादि का अंकन आरम्भ किया गया हो, उस बिन्दु के दोनों ओर अध: खस्वस्तिक का निर्माण करना चाहिये। दोनों बिन्दुओं के ऊपर कक्ष के उपरी भाग में छत में दो छिद्र किये जाते हैं। ये दोनों छिद्र ही षष्ठांश यन्त्र में वेध में प्रयुक्त होने वाले मुख्य उपकरण हैं।

8. दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र – याम्योत्तर रेखा पर ध्रुवाभिमुख इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। भित्ति या सीधी दीवार के समान निर्मित इस यन्त्र की पूर्व दिशा एवं पश्चिम दिशा की ओर वेध के उपयोगी चिह्न एवं उपकरण स्थापित किये जाते हैं। इस यन्त्र के पूर्वी भाग से वेध की क्रिया की जाती

है।

9. नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र – नाड़ीवलय का यह भाग दक्षिण दिशा की ओर झुका हुआ रहता है। इस नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक लोहे का शंकु लगा दिया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु को केन्द्र मानकर इससे वृहद्वृत्त, समवृत्त और लघुवृत्तों का निर्माण किया जाता है। इन वृत्तों में उर्ध्व- अधो रेखा तथा तिर्यक् रेखा बना दी जाती है। महद् और लघु इन दो वृत्तों में घण्टा, मिनटादि समय का उल्लेख कर दिया जाता है तथा तीसरे मध्यमाकार वाले वृत्त में नतघटी के चिह्न लगा दिये जाते है। इस प्रकार वृत्तों में चिह्न अंकित करने के पश्चात् यह यन्त्र वेध प्रयुक्त हो जाता है।

10. नाड़ीवलय उत्तर गोल यन्त्र – नाड़ीवलय यन्त्र का उत्तरी भाग ही नाड़ीवलय उत्तरगोल यन्त्र कहलाता है। इस यन्त्र से उत्तरगोलीय ग्रहों व नक्षत्रों का वेध किया जाता है। इस यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित किया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु से एक वृहद् वृत्त की रचना की जाती है। इस वृहद् वृत्त में घण्टा, मिनटादि समय का लेखन कर दिया जाता है।

11. दिगंश यन्त्र सहित पलभा यन्त्र (धूपघटी) – पलभा यन्त्र में केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित कर दिया जाता है। यन्त्र की परिधि में ३६० अंश अंकित कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार वही समय जानने के लिए यहाँ ३० घटिकायें अथवा घण्टा, मिनटादि अंकित कर दिये जाते हैं।

12. क्रान्तिवृत्त यन्त्र - क्रान्तिवृत्त का निर्माण ध्रुव की ओर अभिमुख करते हुए पत्थर से किया जाता है। ६० घट्यात्मक तथा स्थूल रूप से पलाओं के सहित इसका निर्माण किया जाता है। इसके निचले भाग में एक बिन्दु बनाया जाता है। इस यन्त्र में यह बिन्दु ही वेध के समय मुख्य होता है। इस यन्त्र के मध्य भाग में केन्द्र स्थान पर लोहे का एक शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु को घुमाने पर धातु से निर्मित दो वृत्त एक स्थान पर सम्मिलित आकार के हो जाते है।इस सम्मिलन स्थान से पुन: क्रमश: उनके अन्तर में वृद्धि होती जाती है तथा सम्मुख होने पर उनमें परम अन्तर हो जाता है। इनके परम अन्तर पर एक धातु निर्मित पट्टिका लगा देनी चाहिये। यह वेध पट्टिका वेध के लिए प्रयुक्त की जाती है। इस वेध पट्टिका के दोनों भागों में दो तुरीय यन्त्र बना दिये जाते हैं। इनके माध्यम से ग्रहों का स्पष्टीकरण व शर इत्यादि का साधन किया जाता है।

13. यन्त्रराज – यन्त्रों में अत्यधिक महत्व तथा समस्त खगोलीय घटनाओं को इस एक ही यन्त्र द्वारा वेध कर सकने की योग्यता के कारण ही इसे 'यन्त्रराज' कहा गया है। यह धातु से बनाया हुआ होता है तथा कील में पिरोकर सभी दिशाओं में घूमता हुआ रखकर उसे लटकता हुआ रखा जाता है। यन्त्र के मध्य में गोलाकार क्षेत्र में ३६० अंश अंकित करने चाहिये। इसकी एक घड़ी ६ अंशों की

जाननी चाहिये। इसमें एक रेखा उर्ध्व – अध: तथा एक तिरछी रेखा बनानी चाहिये। इस यन्त्र को इस प्रकार स्थापित करें कि जब हम इस यन्त्र के सामने रहें तो हमारी बाईं ओर पूर्व दिशा, दाईं ओर पश्चिम दिशा, उर्ध्व- अधो रेखा में उपरी भाग में दक्षिण दिशा तथा नीचे की ओर उत्तर दिशा होनी चाहिये। इस यन्त्र को स्थिर करके इसमें सिद्धान्त ग्रन्थों में बतायी विधियों से नक्षत्रों के साथ सप्तर्षि, प्रजापति, लुब्धक, अगस्त्य आदि तारों के वेध स्थानों के नामों का भी उल्लेख वहाँ कर देना चाहिये। यन्त्र में क्षितिज वृत्त बनाकर उसमें ९० उन्नतांश वृत्तों को बनाना चाहिये। इसी प्रकार इस यन्त्र में नाड़ीवृत्त, कर्कराशिवृत्त, समवृत्त, दिगंशवृत्त तथा होरावृत्त आदि को भी यथास्थान चिह्नित कर देना चाहिये। यन्त्रराज के महद्वृत्त के केन्द्र स्थान में ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। इसके उपर अत्यधिक भार से युक्त भ्रमणशील क्रान्तिवृत्त भी संलग्न कर देना चाहिये। इसी प्रकार यहाँ बारह राशियाँ भी अंशों के साथ टंकित करनी चाहिये। इस केन्द्र में ही हमारे लिये वेध कार्य में उपयोगी धातु से बनी हुई वेधपट्टिका स्थापित करनी चाहिये। इस यन्त्र के द्वारा तात्कालिक समय का ज्ञान, लग्न, दशमलग्न इत्यादि का साधन, ग्रहस्पष्टीकरण, ग्रहण व नक्षत्र दर्शन तथा समस्त प्रकार की गोलीय गतिविधियों का ज्ञान आसानी से पलक झपकते ही किया जा सकता है।

14. उन्नतांश यन्त्र - यन्त्रराज के समान ही उन्नतांश यन्त्र भी बड़े आकार में उपयोगी बनाया जाता है। यह यन्त्र धातु से बना हुआ चारों दिशाओं में घुमा सकने वाला तथा कील या दण्ड के सहारे लटकता हुआ स्थिर किया जाना चाहिये।

15. राशिवलय यन्त्र - जयपुर की वेधशाला में वृहत् सम्राट यन्त्र के पश्चिमी भाग में द्वादश राशियों के यन्त्र बने हुए हैं। इनका स्वरूप प्रामाणिक है तथा इनसे सूक्ष्मता से वेध कर परिणाम जाने जा सकते हैं। राशिवलय यन्त्रों से सायन ग्रहों का स्पष्टीकरण तथा शर इत्यादि का साधन किया जाता है। इन यन्त्रों की यह विशेषता है कि एक राशिवलय यन्त्र एक अहोरात्र में एक बार ही प्रयोग में आता है। राशिवलय यन्त्र का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि जिससे सायन राशि का प्रारम्भिक चिह्न जब दक्षिणोत्तर वृत्त में लगता है तब उस राशि का सायन दशम लग्न होता है। उसी समय वह राशियन्त्र वेध के लिए उपयोगी होता है।

16. सम्राट यन्त्र – सम्राट यन्त्र विशाल आकार में पत्थरों से बनाया जाता है। इसकी रचना विषुवद्वृत्तीय धरातल पर की जाती है। विषुवदवृत्तीय धरातल पर दक्षिणोत्तरवृत्त के सामने इस यन्त्र को बनाया जाता है। सर्वप्रथम वहाँ एक शंकुभित्ति का निर्माण किया जाता है। इसकी उन्नति उत्तर में (जयपुर या उत्तरी गोल वाले देशों में) अक्षांश के बराबर रखी जाती है। उसकी पाली में दृष्टि लगाकर शंकु के अग्रभाग पर देखने से ध्रुवतारा दिखाई देता है।

शंकुभित्ति पर सीढ़ियाँ भी बनानी चाहिये, जिससे कि दिन व रात्रि में यथासमय ग्रहों की स्थिति, क्रान्ति, शर, नतांश, उन्नतांश आदि को सूक्ष्मता से जानने के लिए शंकुभित्ति के दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम वृत्त चतुर्थांश बना देने चाहिये। इनमें भी पूर्व दिशा की ओर वृत्तचतुर्थांश तथा पश्चिम दिशा की ओर पश्चिम वृत्तचतुर्थांश बनाना चाहिये। तिर्यक् बनाए हुए वृत्त चतुर्थांशों की उपरी पाली को उर्ध्वपाली तथा नीचे पाली को अधोपाली नाम दिया जाता है। इस वृत्त पाली में १२ घण्टों के चिह्न मिनटों के संकेत देते हुए बनाने चाहिए। इन वृत्त चतुर्थांशों से समय का ज्ञान किया जा सकता है। जैसे कि मध्याह्न से पूर्व समय जानने के लिए पश्चिम वृत्तचतुर्थांश तथा मध्याह्न के पश्चात् समय जानने के लिए पूर्ववर्ती वृत्तचतुर्थांश उपयुक्त रहता है।

सम्राट यन्त्र में स्थानीय याम्योत्तरवृत्त पर बनाई गई दक्षिणोत्तर भित्तिरूपा शंकुपाली कहलाती है। इस पर मध्य स्थान से परमक्रान्तितुल्य अंशादि मान को लिख देना चाहिए। लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उर्ध्व बिन्दु से नीचे की ओर शंकुपाली पर दक्षिण क्रान्ति को जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए तथा निम्न बिन्दु से उपर की ओर उत्तराक्रान्ति जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए।

17. वृहत् सम्राट यन्त्र - ग्रहों की गति, स्थिति व प्रकृति का प्रभावी व सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए इसका निर्माण किया जाता है। जयपुर की वेधशाला में इसे विश्व की सबसे बड़ी सूर्य घड़ी के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना का प्रकार तथा इससे वेध करने की प्रक्रिया पूर्वोक्त सम्राट यन्त्र के समान ही समझनी चाहिये। वृहत् आकार का होने से इससे सेकेण्ड तक का सूक्ष्म समय का ज्ञान किया जाता है। इसी प्रकार क्रान्ति, नतांश, उन्नतांश, दिगंश, शर इत्यादि का ज्ञान भी कला, विकला पर्यन्त किया जाता है। संक्षेपत: यह सम्राट यन्त्र का ही विराट् स्वरूप है।

18. अग्रा यन्त्र – सूर्योदय का समय जानने, सूर्य की दैनिक गति पता लगाने और पूर्व स्वस्तिक से अभीष्ट अहोरात्रवृत्त के अन्तर के समान अग्रा का स्पष्टमान साधन करने के लिए अग्रा यन्त्र का निर्माण किया गया है। शंकु के अग्रभाग में समय आदि जानने के लिए अंशादिभाग तथा मिनटादिभाग लिख दिये जाते हैं। सायन मेष और तुला राशियों के प्रारम्भिक चिह्न पर (२१ मार्च व २३ सितम्बर को) भगवान सूर्य नाड़ी वृत्त में ही विचरण करते हैं। इन दिनों में प्रात: ६ बजे शंकु की छाया पश्चिम भाग में पड़ेगी। इसके अतिरिक्त दिनों में अग्रा के समान अन्तर के तुल्य उत्तर या दक्षिण में शंकु की छाया पड़ेगी। इस छाया से अग्रा के अंशों तथा तात्कालिक समय का पता लगाया जाता है।

19. शंकु यन्त्र - इस यन्त्र का निर्माण बाद में वेधशाला के अधीक्षक जी. एस. आप्टे जी ने मौलिक

चिन्तन के आधार पर कराया था। इससे दिक्, देश और काल का ज्ञान सरलता से किया जाता है। समतल भूमि पर दिगंश यन्त्र के समान बने इस यन्त्र के द्वारा सूर्य के सायन मेषादि राशियों में संक्रमण के समय को स्पष्टता से जाना जाता है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि प्रत्येक युग में स्वयं भगवान भास्कर ने महर्षियों को ज्योतिर्विज्ञान का उपदेश दिया है। वही ज्ञान सूर्यांशपुरूष ने मय को बताया। उनके संवाद स्वरूप आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में इस वेधपरम्परा का प्रामाणिक निर्देश प्राप्त होता है। ग्रहों की गति के कारण उनके दैनिक वेध करने तथा गणित से उनकी यथार्थ स्थिति का पता लगाने के लिए भी वहाँ स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहा:।
प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

प्रयोजन के साथ ही यहाँ पर विविध प्रकार के भगवान सूर्य के द्वारा बताए निम्नलिखित यन्त्रों का विवेचन प्राप्त होता है-

1. शंकुयन्त्र 2. यष्टियन्त्र 3. धनुषयन्त्र 4. चक्रयन्त्र 5. तोययन्त्र 6. मयूर यन्त्र 7. नर यन्त्र 8. वानर यन्त्र।

सूर्यसिद्धान्त में इन यन्त्रों का निर्माण विधियों के साथ ही वेध के प्रकारों का भी उल्लेख है। उदाहरण स्वरूप तोय यन्त्र को बनाने की विधि इस प्रकार है – अभीष्ट माप का एक ताम्र पात्र लेकर उसके तल में एक छिद्र करें। वह छिद्र इस तरह बनावें कि जल से परिपूर्ण ताम्रपात्र के उस छिद्र से पानी निकलता हुआ एक घण्टे या एक दिन में अथवा निश्चित समयावधि का ज्ञान तथा अनुपात से मध्यकालिक समय का ज्ञान भी आसानी से हो जाता है। समय ज्ञान में प्रयुक्त जल के कारण ही इसका नाम तोययन्त्र या जल यन्त्र, कपाल के समान आकृति होने के कारण कपाल यन्त्र तथा घटयात्मक काल का बोध होने से इसका नाम घटीयन्त्र है।

वसिष्ठ सिद्धान्त में वेधसिद्ध तिथि-नक्षत्रादि के निर्णय को ही स्वीकार करने का निर्देश मिलता है-

यस्मिन् पक्षे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्।
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादिनिर्णयम्।।

आर्ष ग्रन्थों के उपरान्त प्रसिद्ध खगोलवेत्ता तथा वेध-निपुण आचार्य आर्यभट्ट (४९९ ई0) हुये। इन्होंने वेध परम्परा को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर कई खगोलीय सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेध – वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना।

यन्त्र – जिन अवयवों के द्वारा ग्रहों का वेध किया जाता है, उसे यन्त्र कहते है।

वेधशाला – वेधानां शाला इति वेधशाला। अर्थात् वह स्थान जहाँ ग्रहों के वेध, वेध-यन्त्रों द्वारा किया जाता जाता है, उसका नाम वेधशाला है।

शंकु यन्त्र – पलभा मापक यन्त्र का नाम शंकु है। इससे दिक्, देश तथा काल का ज्ञान भी सम्यक् रूप से किया जा सकता है।

दिगंश यन्त्र – गोल एवं वर्तुलाकार तीन भित्तियों के रूप में यह यन्त्र ग्रहों की दिशा व दशा जानने के लिए बनाया गया है।

क्रान्ति यन्त्र – सूर्य की स्थिति जानने के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.घ 2. क 3. क 4. ख 5. क 6. ख

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

(ग) भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय वेधपथ प्रदर्शक – पं0 गोकुल चन्द्र भावन

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) प्रस्तरवेधशाला – प्रोफेसर भास्कर शर्मा 'श्रोत्रिय'

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सवाईजयसिंहस्यज्योतिषेऽवदानम्– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

वेधशालावैभवम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यन्त्र प्रयोजन का लेखन कीजिये।
2. भास्कराचार्य द्वारा प्रणीत यन्त्रों का वर्णन कीजिये।
3. दिगंश यन्त्र, शंकु यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र तथा सम्राट यन्त्र का परिचय दीजिये।
4. सूर्यसिद्धान्तोक्त यन्त्रों का उल्लेख कीजिये।
5. यन्त्रों का महत्व क्या है?

इकाई - 3 प्रमुख यन्त्रों का नाम व उपयोग

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 प्रमुख यन्त्रों का परिचय
3.4 यन्त्रों का उपयोग
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सहायक पाठ्यसामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-104 के तृतीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – प्रमुख यन्त्रों का नाम व उपयोग। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने वेधशाला, यन्त्र परिचय आदि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप प्रमुख यन्त्र एवं उसके उपयोग से जुड़े विषयों का अध्ययन करने जा रहे है।

सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहवेध के लिए वेध-यन्त्रों की आवश्यकता होती है। हमारे ज्योतिष के आचार्यों ने कई प्रकार के यन्त्रों के बारे में बतलाया है। उन यन्त्रों में प्रमुख यन्त्र कौन-कौन से है तथा उनकी उपयोगिता क्या है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमें इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त हो जायेगा।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिषोक्त प्रमुख यन्त्रों का नाम व उनके उपयोग को जानने का प्रयास करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि प्रमुख यन्त्र कौन-कौन से है?
- समझ जायेंगे कि यन्त्रों की उपयोगिता क्या है?
- प्रमुख यन्त्रों की क्या विशेषता है?
- यन्त्रों के निर्माण का प्रयोजन क्या है?

3.3 प्रमुख यन्त्र

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में ग्रहवेध हेतु यन्त्रों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन व अर्वाचीन आचार्यों ने विविध यन्त्रों का उपयोग अपने-अपने कालखण्डों में विधिवत् किया है। उन यन्त्रों में प्रमुखता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित यन्त्रों के नाम आते हैं –

शंकु यन्त्र, आधुनिक कम्पास यन्त्र, आधुनिक नलिका यन्त्र, कपाल यन्त्र, आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र, आधुनिक तारा मण्डप, आधुनिक ग्लोब यन्त्र, मिश्र यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र, अष्टमांश यन्त्र, गोल यन्त्र एवं धूपघटिका यन्त्र, आधुनिक बायनाकूल व चित्रालग्नमापक यन्त्र, वृहद्सम्राट यन्त्र, लघुसम्राट यन्त्र, नाड़ीवलय यन्त्र, क्रान्ति यन्त्र, जयप्रकाश यन्त्र, षष्ठांश यन्त्र, दिगंश यन्त्र, तुरीय, द्वादश राशि वलय, धूपघटिका, यन्त्रराज, उन्नतांश, गोल, राम यन्त्र, ध्रुवदर्शक यन्त्र एवं चक्र

यन्त्र।

आप क्षेत्र में शंकु यन्त्र को देख सकते है। सम्प्रति यह यन्त्र लगभग उन सभी संस्थानों में उपलब्ध हैं, जहाँ पारम्परिक रूप से ज्योतिष विषय का अध्ययन-अध्यापन होता है। इसके अतिरिक्त उज्जैन की वेधशाला, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की वेधशाला, जयपुर की वेधशाला आदि में भी वेधकार्य तथा शोधकार्य के लिए यह उपलब्ध है। इस यन्त्र का निर्माण बाद में वेधशाला के अधीक्षक जी. एस. आप्टे जी ने मौलिक चिन्तन के आधार पर कराया था। इससे दिक्, देश और काल का ज्ञान सरलता से किया जाता है। समतल भूमि पर दिगंश यन्त्र के समान बने इस यन्त्र के द्वारा सूर्य के सायन मेषादि राशियों में संक्रमण के समय को स्पष्टता से जाना जाता है। इस यन्त्र के माध्यम से पलभा का भी ज्ञान किया जाता है।

आप चित्र में आधुनिक कम्पास तथा नलिका यन्त्र को देख रहे होंगे। इस यन्त्र का उपयोग दिक् साधन (दिशाओं का ज्ञान) में किया जाता है। इस यन्त्र के माध्यम से व्यक्ति कहीं भी किसी दिशा में स्थित होकर वहाँ से दिशाओं का ज्ञान कर सकता है। इस यन्त्र में पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण

दिशाओं के लिए प्रतीकात्मक E (EAST), W(WEST), N(NORTH), S(SOUTH) लिखा रहता है। जिससे स्पष्टतया दिशाओं का ज्ञान हो जाता है। आधुनिक कम्पास यन्त्र दिशा ज्ञान के लिए उत्तम यन्त्र माना जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इसका उपयोग दिशा ज्ञान के लिए करते हैं।

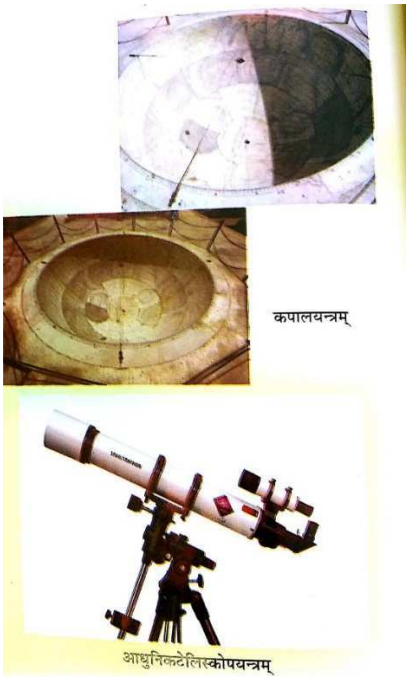

आप उपर के चित्र में कपाल यन्त्र को देख रहे होंगे। यह दो प्रकार का होता है – पूर्व कपाली तथा पश्चिम कपाली।

पूर्व कपाली यन्त्र – यह यन्त्र कपाल के समान आकार का होता है। गोलीय दृष्टि से खगोल को याम्योत्तर वृत्त से विभाजित करने पर खगोल के दो भाग हो जाते हैं। इनमें प्रथम पूर्व दिशा के खगोलार्द्ध को बताने वाला पूर्वकपालीयन्त्र तथा पश्चिम दिशा वाले खगोलार्द्ध के रूप में पश्चिम कपाली यन्त्र होता है। पूर्वदिशा में प्रयुक्त कपालीयन्त्र से पूर्वभाग वाले खगोलार्द्ध के पदार्थों का सहजता से परिज्ञान हो जाता है। गोलीय क्षेत्रों, स्थितियों, अक्षक्षेत्रों व ग्रहादि का ज्ञान इस यन्त्र से होता है। इसके द्वारा वेध प्रकार आदि का ज्ञान पश्चिम यन्त्र के समान ही समझना चाहिये।

पश्चिम कपाली यन्त्र - पश्चिम कपाल यन्त्र की वृत्ताकार परिधि में ३६० अंश लिखे जाते हैं। वस्तुत: यही हमारा क्षितिजवृत्त होता है। इसके उपरान्त ६-६ अंशों के अन्तर से क्रमश: दक्षिणध्रुवस्थान, नाड़ीवृत्त विषुवद्वृत्त, बारह राशियों के अहोरात्रवृत्त, दक्षिणोत्तरवृत्त, समवृत्त और नतांशवृत्त अंकित किये जाते हैं। उसी प्रकार इस यन्त्र में दोनों ध्रुवों पर गया हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त,

खस्वस्तिक से क्षितिज पर्यन्त दृग्वृत्त तथा क्रान्तिवृत्त इत्यादि स्थापित किये जाते हैं। कपालीयन्त्र में चारों दिशाओं के बिन्दुओं पर से लोहे के तारों से बांधी हुई चतु:सूत्री स्थापित करते हैं। इन तारों में से एक सीधा तार पूर्व तथा पश्चिम दिग्बिन्दुओं से तथा दूसरा तार उत्तर व दक्षिण दिग्बिन्दुओं से बांधा जाता है। जहाँ से दोनों तार मध्य में एक स्थान पर मिलते हैं, वहाँ एक लोहे या ताँबे का गोल पत्र बांध दिया जाता है, जिसके मध्य में एक छेद भी होता है।

कपाल यन्त्र का उपयोग - स्पष्ट क्रान्ति सिद्ध करने में, सूर्य के नतांश स्पष्ट करने में, दिगंश कोटयंश ज्ञान के लिए उपयोगी। इस यन्त्र से ग्रहों व नक्षत्रों के याम्योत्तरलंघन काल का साधन, पलभा साधन, ग्रहों की राशिगत, स्थिति का साधन तथा सायन लग्न और दशम लग्नादि का यथार्थ ज्ञान किया जाता है। यह यन्त्र समस्त गोलीय पदार्थों का सर्वविध साक्षात्कार कराता है।

वेध का प्रकार – जब हम इस यन्त्र से दिन में वेध करते हैं तो सर्वप्रथम चतु:सूत्री में मध्य स्थित लोहपत्र के छेद से यन्त्र में प्रकाशबिन्दु कहाँ पड़ रहा है, उसे देखना चाहिये। वस्तुत: जहाँ यह प्रकाशबिन्दु पड़ता है, वही हमारा दृष्टिस्थान होता है। उस दृष्टि स्थान से नाड़ीवृत्त पर्यन्त ध्रुवप्रोतवृत्त में स्पष्ट क्रान्ति सिद्ध हो जाती है।

क्षितिज से दृष्टि स्थान तक ६-६ अंशों वाले जितने उन्नतांशवृत्त हों उनका छ: गुणा सूर्य का उन्नतांश हो जाता है और यदि प्रकाश बिन्दु दो उन्नतांश वृत्तों के मध्य हो तो अनुपात करने पर स्पष्ट उन्नतांश होता है। इस उन्नतांशमान को ९० अंशों में घटाने पर सूर्य के नतांश स्पष्ट होते हैं।

यन्त्र में उस दिछ्र से आये प्रकाश बिन्दु के उपर से खस्वस्तिक पर से किया हुआ सूत्र क्षितिज में जिस स्थान पर लगे, उस स्थान से पूर्व दिशा या पश्चिम दिशा के बिन्दु तक जो भी निकट हो, जितने अंश होते हैं, उतने ही दिगंश कहलाते हैं। इसी प्रकार उस सूत्र व क्षितिज के संयोग स्थान से उत्तरदिशा या दक्षिण दिशा के बिन्दु तक दिगंश कोट्यंश कहलाती है।

भास्कराचार्य जी ने इस यन्त्र का नामकरण तोययन्त्र या जलयन्त्र के रूप में किया हैं, क्योंकि इसके तल में जल प्रवाह के लिए एक छिद्र होता है। सम्पूर्ण रूप से जल से भरे इस यन्त्र के छिद्र से एक निश्चित काल (दिन/घण्टे) में जल निकल जाता है और यन्त्र जल रहित हो जाता है। इस प्रकार जल की मात्रा से समय का पता लगाने के कारण इसे घटी यन्त्र भी कहा जात है। इस प्रकार समस्त गोलीय गतिविधियों का ज्ञान सहजतया हो जाने के कारण ही यह महत्वपूर्ण यन्त्र माना जाता है।

आप चित्र में कपाल यन्त्र के साथ आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र को भी देख रहे होंगे। इसके माध्यम से खगोलीय पिण्डों को देखकर उसकी वस्तु स्थिति पता लगाया जा सकता है। ग्रहण काल के दौरान भी पिण्ड को देखने में इस यन्त्र का उपयोग किया जाता है।

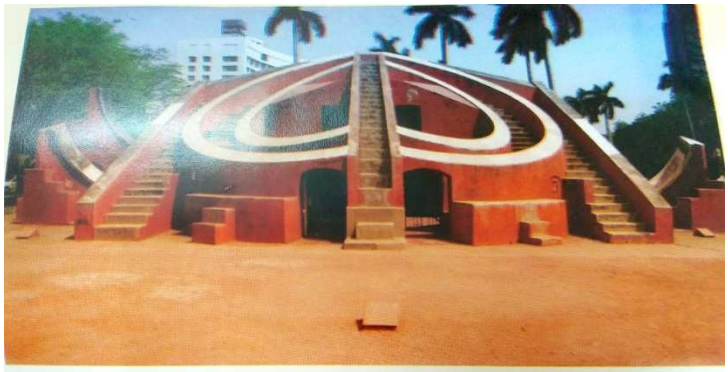

मिश्रयन्त्रम्

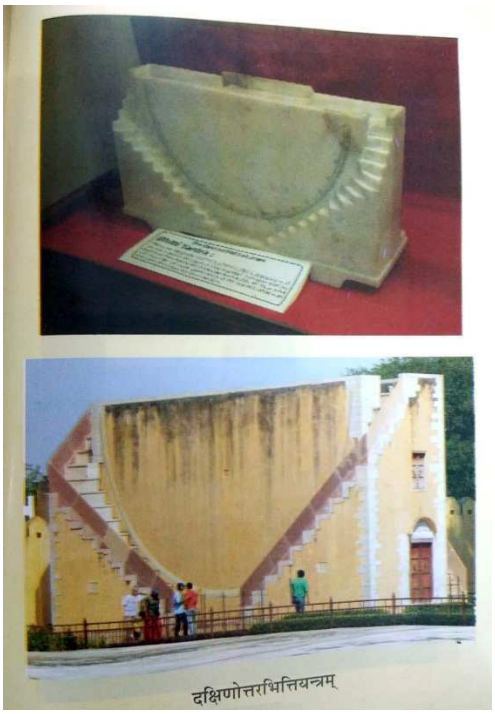

दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्रम्

आप दिल्ली शहर में अजमेरी द्वार से करीब 1.5 मील दूरी पर कुतुबमीनार सड़क पर बायीं और जयसिंहपुर के वेधशाला में मिश्र यन्त्र को देख सकते हैं। इस वेधशाला के सब यन्त्रों के उत्तर में प्रथम मिश्र यन्त्र हैं। मिश्र यन्त्र के पूर्व दिशा में दक्षिणोत्तरभित्ति यन्त्र स्थित है। आप दोनों ही यन्त्रों का छायाचित्र उपर के चित्र में देख सकते हैं। मिश्र यन्त्र में चार यन्त्र है - १. सम्राट यन्त्र, २. नियतचक्र

यन्त्र, ३. नीति यन्त्र तथा ४. कर्कराशिवलय यन्त्र।

सम्राट यन्त्र – सम्राट यन्त्र विशाल आकार में पत्थरों से बनाया जाता है। इसकी रचना विषुवद्वृत्तीय धरातल पर की जाती है। विषुवदवृत्तीय धरातल पर दक्षिणोत्तरवृत्त के सामने इस यन्त्र को बनाया जाता है। सर्वप्रथम वहाँ एक शंकुभित्ति का निर्माण किया जाता है। इसकी उन्नति उत्तर में (जयपुर या उत्तरी गोल वाले देशों में) अक्षांश के बराबर रखी जाती है। उसकी पाली में दृष्टि लगाकर शंकु के अग्रभाग पर देखने से ध्रुवतारा दिखाई देता है।

शंकुभित्ति पर सीढ़ियाँ भी बनानी चाहिये, जिससे कि दिन व रात्रि में यथासमय ग्रहों की स्थिति, क्रान्ति, शर, नतांश, उन्नतांश आदि को सूक्ष्मता से जानने के लिए शंकुभित्ति के दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम वृत्त चतुर्थांश बना देने चाहिये। इनमें भी पूर्व दिशा की ओर वृत्तचतुर्थांश तथा पश्चिम दिशा की ओर पश्चिम वृत्तचतुर्थांश बनाना चाहिये। तिर्यक् बनाए हुए वृत्त चतुर्थांशों की उपरी पाली को उर्ध्वपाली तथा नीचे पाली को अधोपाली नाम दिया जाता है। इस वृत्त पाली में १२ घण्टों के चिह्न मिनटों के संकेत देते हुए बनाने चाहिए। इन वृत्त चतुर्थांशों से समय का ज्ञान किया जा सकता है। जैसे कि मध्याह्न से पूर्व समय जानने के लिए पश्चिम वृत्तचतुर्थांश तथा मध्याह्न के पश्चात् समय जानने के लिए पूर्ववर्ती वृत्तचतुर्थांश उपयुक्त रहता है।

सम्राट यन्त्र में स्थानीय याम्योत्तरवृत्त पर बनाई गई दक्षिणोत्तर भित्तिरूपा शंकुपाली कहलाती है। इस पर मध्य स्थान से परमक्रान्तितुल्य अंशादि मान को लिख देना चाहिए। लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उर्ध्व बिन्दु से नीचे की ओर शंकुपाली पर दक्षिण क्रान्ति को जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए तथा निम्न बिन्दु से उपर की ओर उत्तराक्रान्ति जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न –

1. यन्त्र की आवश्यकता होती है?
   क. ग्रहवेध के लिए ख. प्रयोगशाला में रखने के लिए ग. परीक्षण के लिए घ. उक्त सभी
2. शंकु यन्त्र का प्रयोग होता है?
   क. दिक् साधन में ख. पलभा साधन में ग. दिक्देशकाल साधन में घ. कोई नहीं
3. दिगंश कोटयंश ज्ञान के लिए किस यन्त्र का प्रयोग किया जाता है।
   क. कपाल यन्त्र ख. राम यन्त्र ग. सम्राट यन्त्र घ. दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र

4. उन्नतांश में ९० अंश घटाने पर क्या मिलता है?
   क. नतांश ख. अक्षांश ग. देशान्तर घ. चरान्तर
5. किस यन्त्र के वृत्तार्द्ध में शंकु होता है?
   क. सम्राट यन्त्र ख. पलभा यन्त्र ग. कर्क राशिवलय यन्त्र घ. कोई नहीं

वृहत् सम्राट यन्त्र - ग्रहों की गति, स्थिति व प्रकृति का प्रभावी व सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए इसका निर्माण किया जाता है। जयपुर की वेधशाला में इसे विश्व की सबसे बड़ी सूर्य घड़ी के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना का प्रकार तथा इससे वेध करने की प्रक्रिया पूर्वोक्त सम्राट यन्त्र के समान ही समझनी चाहिये। वृहत् आकार का होने से इससे सेकेण्ड तक का सूक्ष्म समय का ज्ञान किया जाता है। इसी प्रकार क्रान्ति, नतांश, उन्नतांश, दिगंश, शर इत्यादि का ज्ञान भी कला, विकला पर्यन्त किया जाता है। संक्षेपत: यह सम्राट यन्त्र का ही विराट् स्वरूप है।

कर्क राशिवलय यन्त्र - इस यन्त्र के वृत्तार्द्ध में शंकु है। इस वृत्तार्ध के पूर्व बिन्दु से प्रारम्भ कर नीचे तक ९० अंश अक्षर व कला भाग अंकित है। तथा पश्चिम बिन्दु से वैसे ही ९० अंश और कला भाग अंकित कर दिये गये हैं। जब कर्क राशि का प्रारम्भिक बिन्दु दशम होता है, तब ही यह वेधोपयोगी होता है। इस गणित राशि वलय यन्त्रों की गणितानुसार होती है। विशेष बात यह है कि वेध समय में गृह नक्षत्रादि पश्चिम कपाल में हो तो सायन स्पष्ट आदि हो जाता है, परन्तु पूर्व कपाल वाले ग्रह-नक्षत्रादि वेध द्वारा जितने अंशादि प्राप्त हो उनको ६ राशि में घटाने से सायन स्पष्ट होते है।

दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र – याम्योत्तर रेखा पर ध्रुवाभिमुख इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। भित्ति या सीधी दीवार के समान निर्मित इस यन्त्र की पूर्व दिशा एवं पश्चिम दिशा की ओर वेध के उपयोगी चिह्न एवं उपकरण स्थापित किये जाते हैं। इस यन्त्र के पूर्वी भाग से वेध की क्रिया की जाती है।

वेध रीति व उपयोग – मध्य के शंकु के पश्चिम किनारें में इन दोनों वृत्तार्द्धों के केन्द्र हैं। केन्द्र स्थान पर शंकु रखने के लिए छिद्र बने हैं। शंकुओं के स्थिर करने से नियत समय शंकु छाया अपने-अपने वृत्तार्धों पर जहाँ पर लगती हैं वह स्थान दृष्टि स्थान है अथवा वृत्तपाली में नेत्र लगाकर देखने से सूर्य शंकु से सटा हुआ जहाँ दीखे, वह दृष्टि स्थान है। उस स्थान पर जितने अंशादिक होते हैं, वह ही स्पष्ट क्रान्ति है। अथवा वृत्तार्द्धों के मध्य बिन्दु से क्रान्ति के अंशादिक गणना करें। दृष्टि स्थान से मध्य बिन्दु दक्षिण हो तो दक्षिणा क्रान्ति और उत्तर हो तो उत्तरा क्रान्ति होती है।

रात्रि में सावधानीपूर्वक इष्ट नक्षत्र ग्रह को देखे। जिस समय वह ग्रह-नक्षत्रादि जिस स्थान से शंकु

संलग्न दीखे वह दृष्टि स्थान है। अत: दृष्टि स्थान जानकर पूर्ववत् उत्तरा व दक्षिणा क्रान्ति का ज्ञान होता है। इस तरह से ध्यानपूर्वक देखने से रात्रि में इष्ट, ग्रह, नक्षत्रादि की क्रान्ति ज्ञात करना इस यन्त्र के माध्यम से सुगम है।

शंकु के पूर्व भाग में भी दो वृत्तार्द्ध हैं। उनमें तीसरे भीतर वाले 'ग' वृत्तार्द्ध में मध्याह्न के पश्चात् ४ घण्टा ३६ मिनट पर वेध किया जाता है। तथा शंकु से पूर्व चौथे बाहर वाले घ वृत्तार्ध पर सायंकाल ५घंटा ८ मिनट वेध करने से स्पष्ट क्रान्ति ज्ञात होती है। वेध विधि दिन-रात्रि में पश्चिम वृत्तार्धों के अनुसार ही है।

इस यन्त्र की यह विशेषता यह है कि पहला 'क' वृत्तार्ध जापान के 'नाटके' नामक नगर के मध्याह्न वृत्त के तुल्य है। अर्थात् जब वहाँ मध्याह्न होता है तब इस 'क' वृत्तार्द्ध पर शंकु छाया गिरती है।

दूसरा ख वृत्तार्ध 'पिक' नामक टापू में स्थित स्यूरिचेव स्थान का मध्याह्न वृत्त है।

तीसरा ग वृत्तार्ध इटली स्थित ज्यूरिच स्थान का मध्याह्न वृत्त है। यहाँ वेधशाला भी है।

चौथा घ वृत्तार्द्ध ब्रिटेन स्थित ग्रीनविच स्थान का मध्याह्न वृत्त है। यहाँ भी बहुत बड़ी वेधशाला है।

आप उपर के चित्र में वृहत् सम्राट यन्त्र और नाड़ीवलय यन्त्र को देख रहे हैं। आइए उसके बारे में जानते है।

वृहत् सम्राट यन्त्र - ग्रहों की गति, स्थिति व प्रकृति का प्रभावी व सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए इसका निर्माण किया जाता है। जयपुर की वेधशाला में इसे विश्व की सबसे बड़ी सूर्य घड़ी के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना का प्रकार तथा इससे वेध करने की प्रक्रिया पूर्वोक्त सम्राट यन्त्र के समान ही समझनी चाहिये। वृहत् आकार का होने से इससे सेकेण्ड तक का सूक्ष्म समय का ज्ञान किया जाता है। इसी प्रकार क्रान्ति, नतांश, उन्नतांश, दिगंश, शर इत्यादि का ज्ञान भी कला, विकला पर्यन्त किया जाता है। संक्षेपत: यह सम्राट यन्त्र का ही विराट् स्वरूप है।

नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र – नाड़ीवलय का यह भाग दक्षिण दिशा की ओर झुका हुआ रहता है। इस नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक लोहे का शंकु लगा दिया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु को केन्द्र मानकर इससे वृहद्वृत्त, समवृत्त और लघुवृत्तों का निर्माण किया जाता है। इन वृत्तों में उर्ध्व- अधो रेखा तथा तिर्यक् रेखा बना दी जाती है। महद् और लघु इन दो वृत्तों में घण्टा, मिनटादि समय का उल्लेख कर दिया जाता है तथा तीसरे मध्यमाकार वाले वृत्त में नतघटी के चिह्न लगा दिये जाते है। इस प्रकार वृत्तों में चिह्न अंकित करने के पश्चात् यह यन्त्र वेध प्रयुक्त हो जाता है।

नाड़ीवलय उत्तर गोल यन्त्र – नाड़ीवलय यन्त्र का उत्तरी भाग ही नाड़ीवलय उत्तरगोल यन्त्र कहलाता है। इस यन्त्र से उत्तरगोलीय ग्रहों व नक्षत्रों का वेध किया जाता है। इस यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित किया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु से एक वृहद् वृत्त की रचना की जाती है। इस वृहद् वृत्त में घण्टा, मिनटादि समय का लेखन कर दिया जाता है।

क्रान्तिवृत्तयन्त्रम्

क्रान्तिवृत्त यन्त्र - क्रान्तिवृत्त का निर्माण ध्रुव की ओर अभिमुख करते हुए पत्थर से किया जाता है। ६० घट्यात्मक तथा स्थूल रूप से पलाओं के सहित इसका निर्माण किया जाता है। इसके निचले भाग में एक बिन्दु बनाया जाता है। इस यन्त्र में यह बिन्दु ही वेध के समय मुख्य होता है। इस यन्त्र के मध्य भाग में केन्द्र स्थान पर लोहे का एक शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु को घुमाने पर धातु से निर्मित दो वृत्त एक स्थान पर सम्मिलित आकार के हो जाते है।इस सम्मिलन स्थान से पुन: क्रमश: उनके अन्तर में वृद्धि होती जाती है तथा सम्मुख होने पर उनमें परम अन्तर हो जाता है। इनके परम अन्तर पर एक धातु निर्मित पट्टिका लगा देनी चाहिये। यह वेध पट्टिका वेध के लिए प्रयुक्त की जाती है। इस वेध पट्टिका के दोनों भागों में दो तुरीय यन्त्र बना दिये जाते हैं। इनके माध्यम से ग्रहों का स्पष्टीकरण व शर इत्यादि का साधन किया जाता है।

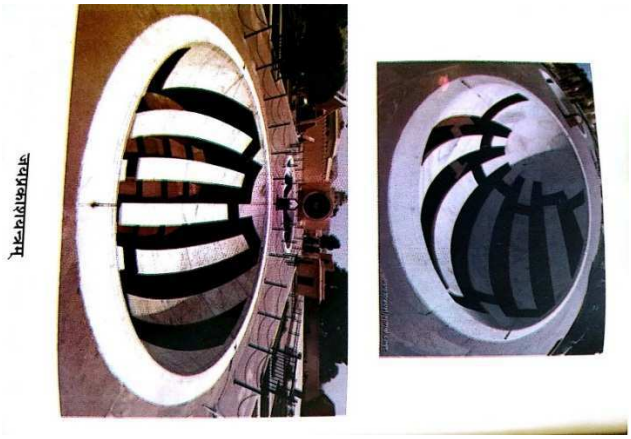

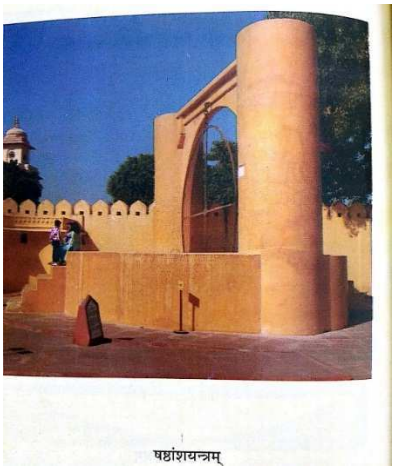

जयप्रकाश यन्त्र - रामयन्त्र के समान ही जयप्रकाश यन्त्र भी विशालकाय तथा दो भागों में बनाया जाता है। इसके परस्पर पूरक दोनों भागों को मिलाकर ही इस यन्त्र की पूर्णता सिद्ध होती है।

इसका कारण यह है कि इसके प्रथम भाग में जहाँ पत्थर की कलियाँ बनी होती हैं, उस स्थान पर द्वितीय भाग में रिक्तता रहती है तथा प्रथम भाग में जहाँ रिक्तता होती है, उस स्थान पर द्वितीय भाग में कलियाँ बना दी जाती हैं। यह रिक्त स्थान वस्तुत: ज्योतिषियों अथवा वेधकर्ता जिज्ञासुओं के आवागमन व वेध के सहज ज्ञान के लिए बनाया जाता है। यहाँ खड़े होकर गणितकर्ता अपनी गणित की शुद्धता का परीक्षण तथा ग्रहों का प्रत्यक्षत: वेध करता है।

इस यन्त्र के दोनों ही भागों का जो उर्ध्व प्रदेश होता है, वह वृत्ताकार भाग ही क्षितिजवृत्त कहलाता है। इस वृत्त में ३६० अंश लिख देने चाहिये। यन्त्र के दक्षिण भाग में अभीष्ट स्थान के अक्षांशों के समान स्थान पर क्षितिज से नीचे की ओर ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। वृत्त के केन्द्र स्थान को अध: खस्वस्तिक कहा जाता है। यहीं पर पूर्व पश्चिम अध: खस्वस्तिकों पर गया हुआ समवृत्त भी अंकित कर देना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर ध्रुवों के मध्य खस्वस्तिक से होकर गया हुआ दक्षिणोत्तरवृत्त उट्टंकित करें। पूर्व एवं पश्चिम दिग् बिन्दुओं से लगा हुआ तथा अध: खस्वस्तिक से उत्तर दिशा में अक्षांशों के समान अन्तर से नाड़ीवृत्त का निर्माण करना चाहिये। इसी प्रकार नाड़ीवृत्त से समानान्तरित स्थूल रूप से कुछ छोटे आकार के अहोरावृत्त भी बना देने चाहिये। मुख्यतया छ: अहोरात्रवृत्त तो होने ही चाहिये जो द्वादश राशियों का निर्देश करने वाले होते हैं। इनमें से तीन अहोरात्रवृत्त नाड़ीवृत्त से उत्तर दिशा में तथा तीन वृत्त उससे दक्षिण दिशा में बनाने चाहिये। सूक्ष्मता की दृष्टि से इन अहोरात्र वृत्तों की संख्या ३६० अंश या इससे अधिक भी हो सकती है।

षष्ठांश यन्त्र - मध्याह्नकाल में सूर्य के नतांश-उन्नतांश व क्रान्त्यादि जानने के लिए षष्ठांश यन्त्र की रचना की जाती है। कक्ष का निर्माण कर उसमें इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। कक्ष के दक्षिणी भाग की दीवार पर पूर्व और पश्चिम दिशा के कोणों से एक अधोमुखी अर्द्धगोलाकार आकृति का निर्माण किया जाता है। यह आकृति सफेद चूने या रंग से बना सकते हैं। इस आकृति में अंश कला व स्थूल विकलादि का अंकन किया जाता है। जिस स्थान पर से इन वृत्त खण्डों पर अंशादि का अंकन आरम्भ किया गया हो, उस बिन्दु के दोनों ओर अध: खस्वस्तिक का निर्माण करना चाहिये। दोनों बिन्दुओं के ऊपर कक्ष के उपरी भाग में छत में दो छिद्र किये जाते हैं। ये दोनों छिद्र ही षष्ठांश यन्त्र में वेध में प्रयुक्त होने वाले मुख्य उपकरण हैं।

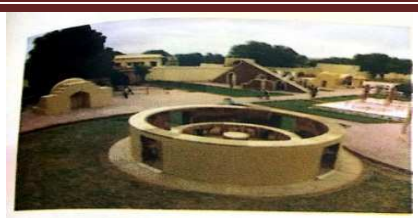

दिगंशयन्त्रम्

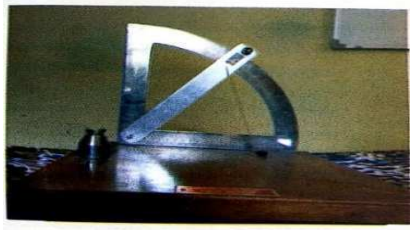

तुरीययन्त्रम्

दिगंश यन्त्र - एक-दूसरे के मध्य में विद्यमान तीन गोलाकार समानान्तरित भित्तियों के रूप में इस यन्त्र की रचना की जाती है। इस यन्त्र की तीनों भित्तियों का विवेचन निम्नलिखित है-

प्रथम भित्ति – यन्त्र के मध्य भाग में शंकु भित्ति के रूप में यह प्रथम भित्ति होती है। इसके केन्द्र में सूत्र बांधने की दृष्टि से छिद्र सहित एक शंकु भी होता है।

द्वितीय भित्ति – प्रथम एवं तृतीय भित्ति के मध्य में स्थित यह द्वितीय भित्ति इस यन्त्र में प्रमुखता से निर्मित की जाती है।

तृतीय भित्ति – इन दोनों भित्तियों से दुगुनी ऊँचाई पर उन्हीं के समानान्तरित बाहरी भाग में यह तृतीय भित्ति बनाई जाती है।

इन भित्तियों में ३६० अंश तथा स्थूल रूप से कलाएँ अंकित की जाती हैं। साथ ही बाहरी भाग में स्थित सबसे ऊँची भित्ति पर एक चतु:सूत्री स्थापित की जाती है, जिसके मध्यभाग में छिद्र सहित एक लोहे का पत्र बाँधा जाता है।

द्वादशराशिवलययन्त्राणि

जयपुर की वेधशाला में वृहत् सम्राट यन्त्र के पश्चिमी भाग में द्वादश राशियों के यन्त्र बने हुए हैं। इनका स्वरूप प्रामाणिक है तथा इनसे सूक्ष्मता से वेध कर परिणाम जाने जा सकते हैं। राशिवलय यन्त्रों से सायन ग्रहों का स्पष्टीकरण तथा शर इत्यादि का साधन किया जाता है। इन यन्त्रों की यह विशेषता है कि एक राशिवलय यन्त्र एक अहोरात्र में एक बार ही प्रयोग में आता है। राशिवलय यन्त्र का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि जिससे सायन राशि का प्रारम्भिक चिह्न जब दक्षिणोत्तर वृत्त में लगता है तब उस राशि का सायन दशम लग्न होता है। उसी समय वह राशियन्त्र वेध के लिए उपयोगी होता है।

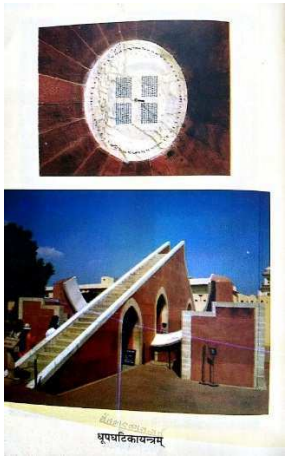

दिगंश यन्त्र सहित पलभा यन्त्र (धूपघटी) – पलभा यन्त्र में केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित कर दिया जाता है। यन्त्र की परिधि में ३६० अंश अंकित कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार वही समय जानने के लिए यहाँ ३० घटिकायें अथवा घण्टा, मिनटादि अंकित कर दिये जाते हैं।

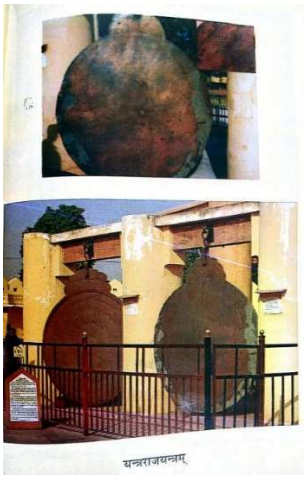

यन्त्रराज – यन्त्रों में अत्यधिक महत्व तथा समस्त खगोलीय घटनाओं को इस एक ही यन्त्र द्वारा वेध कर सकने की योग्यता के कारण ही इसे 'यन्त्रराज' कहा गया है। यह धातु से बनाया हुआ होता है तथा कील में पिरोकर सभी दिशाओं में घूमता हुआ रखकर उसे लटकता हुआ रखा जाता है।

यन्त्र के मध्य में गोलाकार क्षेत्र में ३६० अंश अंकित करने चाहिये। इसकी एक घड़ी ६ अंशों की जाननी चाहिये। इसमें एक रेखा उर्ध्व – अध: तथा एक तिरछी रेखा बनानी चाहिये। इस यन्त्र को इस प्रकार स्थापित करें कि जब हम इस यन्त्र के सामने रहें तो हमारी बाईं ओर पूर्व दिशा, दाईं ओर पश्चिम दिशा, उर्ध्व- अधो रेखा में उपरी भाग में दक्षिण दिशा तथा नीचे की ओर उत्तर दिशा होनी चाहिये। इस यन्त्र को स्थिर करके इसमें सिद्धान्त ग्रन्थों में बतायी विधियों से नक्षत्रों के साथ सप्तर्षि, प्रजापति, लुब्धक, अगस्त्य आदि तारों के वेध स्थानों के नामों का भी उल्लेख वहाँ कर देना चाहिये। यन्त्र में क्षितिज वृत्त बनाकर उसमें ९० उन्नतांश वृत्तों को बनाना चाहिये। इसी प्रकार इस यन्त्र में नाड़ीवृत्त, कर्कराशिवृत्त, समवृत्त, दिगंशवृत्त तथा होरावृत्त आदि को भी यथास्थान चिह्नित कर देना चाहिये। यन्त्रराज के महद्वृत्त के केन्द्र स्थान में ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। इसके उपर अत्यधिक भार से युक्त भ्रमणशील क्रान्तिवृत्त भी संलग्न कर देना चाहिये। इसी प्रकार यहाँ बारह राशियाँ भी अंशों के साथ टंकित करनी चाहिये। इस केन्द्र में ही हमारे लिये वेध कार्य में उपयोगी धातु से बनी हुई वेधपट्टिका स्थापित करनी चाहिये। इस यन्त्र के द्वारा तात्कालिक समय का ज्ञान, लग्न, दशमलग्न इत्यादि का साधन, ग्रहस्पष्टीकरण, ग्रहण व नक्षत्र दर्शन तथा समस्त प्रकार की गोलीय गतिविधियों का ज्ञान आसानी से पलक झपकते ही किया जा सकता है।

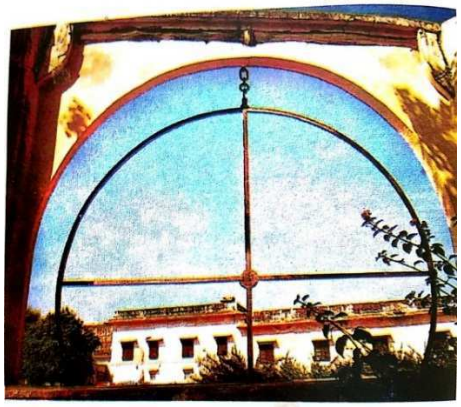

उन्नतांशयन्त्रम्

उन्नतांश यन्त्र - यन्त्रराज के समान ही उन्नतांश यन्त्र भी बड़े आकार में उपयोगी बनाया जाता है। यह यन्त्र धातु से बना हुआ चारों दिशाओं में घुमा सकने वाला तथा कील या दण्ड के सहारे लटकता

हुआ स्थिर किया जाना चाहिये।

गोलयन्त्रम्

गोल यन्त्र – भास्कराचार्य जी सिद्धान्तशिरोमणि के यन्त्राध्याय में गोल यन्त्र के बारे में लिखते है कि –

अपवृत्तगरविचिन्हं क्षितिजे धृत्वा कुजेन संसक्ते।
नाडीवृत्ते बिन्दुं कृत्वा धृत्वाथ जलसमं क्षितिजम्।।
रविचिह्नस्य छाया पतति कुमध्ये यथा तथा विधृते।
उडुगोले कुजबिन्द्वोर्मध्ये नाडयो द्युयाता: स्यु:।।

अर्थात् इस विधि में खगोल के अन्तर्गत भगोल को बाँध कर वहाँ क्रान्तिवृत्त में मेषादि से आरम्भ करके रवि के भुक्त राशि अंशादि पर चिह्न लगायें, उसको क्रान्तिवृत्त पर रवि चिह्न कहते हैं। भगोल में उस बिन्दु को चलाकर क्षितिज के साथ मिलाये। पूर्वी क्षितिज में विषुवद्वृत्त जहाँ सम्पात करता है उस स्थान पर चाक से निशान लगावे। जल से समान की हुई भूमि में गोल यन्त्र को स्थापित करके भगोल को चलाकर इस प्रकार स्थापित करें कि रवि बिम्ब की छाया भूगर्भ में पतित हो। इस प्रकार करने से विषुवद वृत्त में क्षितिज वृत्त और बिन्दु के मध्य जितनी घटियाँ होती हैं उतना काल सूर्योदय के पश्चात् दिन गत का मान ज्ञात होता है और क्रान्तिवृत्त में मेषारम्भ बिन्दु से आगे क्षितिज वृत्त पर्यन्त जितनी राशि अंशादि होती है वह लग्न का मान ज्ञात होता है। यह गोल यन्त्र है।

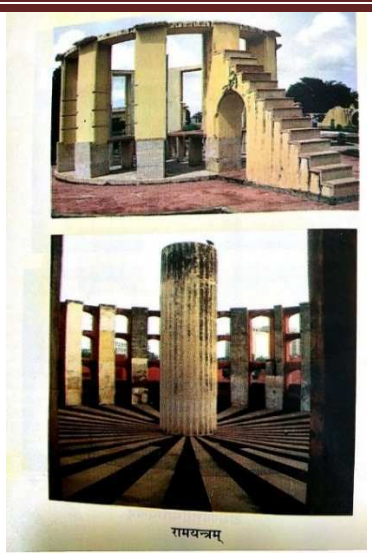
रामयन्त्रम्

राम यन्त्र – रामयन्त्र दो भागों में बनाया जाता है। इसके एक भाग में जहाँ कलिका समान पट्टिका बनी होती है, उस स्थान पर दूसरे भाग में रिक्त स्थान होता है और इसी प्रकार दूसरे भाग में जानना चाहिये। इस रिक्त स्थान में खड़े होकर गोलीय पदार्थों का भली-भाँति वेध किया जाता है। रामयन्त्र के ठीक मध्य में एक लोहे का शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु का मूलभाग अध: खस्वस्तिक के नाम से जाना जाता है। यन्त्र का ऊपरी गोलाकार परिधि स्वरूप भाग उस स्थान का स्पष्ट क्षितिज वृत्त होता है। इस क्षितिज वृत्त से शंकु के मूल भाग तक ९० अंश उट्टंकित कर दिये जाते हैं। इन अंशों से नतांश व उन्नतांश का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तर बिन्दु से ३६० अंश तथा कुछ स्थूल कलाएं भी टंकित की जाती हैं। इनसे दिगंश का ज्ञान किया जाता है।

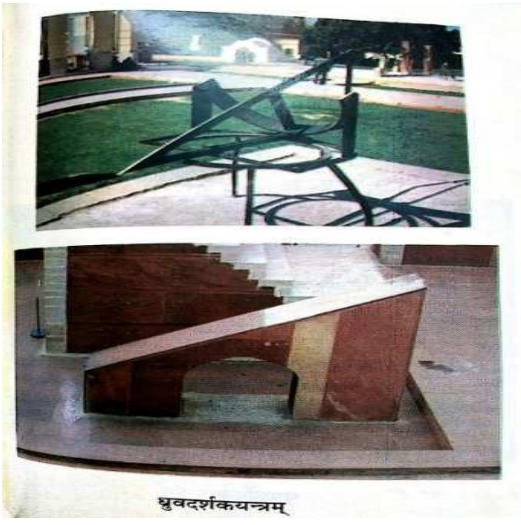
ध्रुवदर्शकयन्त्रम्

ध्रुवदर्शक यन्त्र - इस यन्त्र के द्वारा ध्रुव तारे का वेध किया जाता है, इसीलिये इसका नाम ध्रुवदर्शक यन्त्र रखा गया है। यह यन्त्र याम्योत्तरवृत्त के उपर तदाकाराकारित शंकुभित्ति के रूप में बनाया जाता है। जयपुर की दृष्टि से जहाँ कि ध्रुवोन्नति उत्तर दिशा में रहती है। उत्तर दिशा में इसकी उन्नति अक्षांशों के समानान्तर रखी जानी चाहिए। इससे उत्तर समस्थान से अक्षांशों के समान अन्तर पर उठा हुआ ध्रुव तारा दिखाई देगा।

वेध विधि - दिन में सूर्य के प्रखर तेज के कारण ध्रुव तारे को देखा नहीं जा सकता। इसीलिये रात्रि में शंकु पाली पर दृष्टि लगाकर पाली के उठे हुए अग्र भाग पर देखने से वहाँ जो स्थान दिखाई पड़े, वही ध्रुवस्थान होता है। उस ध्रुव स्थान के निकट जो तारा होता है, वही ध्रुव तारा कहलाता है। यद्यपि इस तारे को ध्रुव तारा कहा जाता है, किन्तु आचार्य कमलाकर ने इस ध्रुव तारे को भी चंचल व गतिशील सिद्ध करते हुए ध्रुव स्थान को ही स्थिर माना है। अत: भ्रमण करते हुए जो भी तारा इस स्थान पर होगा, इसके निकट रहेगा वही ध्रुव तारा कहलाएगा। वर्तमान में भी यह ध्रुव तारा अपने स्थान से कुछ हटा हुआ दिखाई पड़ता है।

चक्र यन्त्र - ध्रुवतारें की ओर उन्मुख होता हुआ, यह यन्त्र धातु से बनाया जाता है। यह वृत्ताकार परिधिस्वरूप होता है। इसकी परिधि में ३६० अंश अंकित किये जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक अंश में १०-१० कलाओं के विभाग भी अंकित कर दिये जाते हैं। वृत्त के केन्द्र में एक वेधपट्टिका को व्यास रेखा के समान नलिका से लगाकर स्थापित करते हैं। इसको घुमाने से प्रत्येक वृत्त के दक्षिण में कोण

से नीचे साठ घड़ी अंकित आधार वृत्त बनाते हैं। इसी प्रकार पूर्व में कहे भाग से ही दक्षिण में एक छिद्र बनाते हैं। इस छिद्र में आधार वृत्त को स्पर्श करती हुई सुई के आकार की आधारवृत्त की ही वेधपट्टिका स्थापित कर उसी से ग्रहों का वेध किया जाता है।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र में ग्रहवेध हेतु यन्त्रों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन व अर्वाचीन आचार्यों ने विविध यन्त्रों का उपयोग अपने-अपने कालखण्डों में विधिवत् किया है। उन यन्त्रों में प्रमुखता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित यन्त्रों के नाम आते हैं – शंकु यन्त्र, आधुनिक कम्पास यन्त्र, आधुनिक नलिका यन्त्र, कपाल यन्त्र, आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र, आधुनिक तारा मण्डप, आधुनिक ग्लोब यन्त्र, मिश्र यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र, अष्टमांश यन्त्र, गोल यन्त्र एवं धूपघटिका यन्त्र, आधुनिक बायनाकूल व चित्रालग्नमापक यन्त्र, वृहद्सम्राट यन्त्र, लघुसम्राट यन्त्र, नाड़ीवलय यन्त्र, क्रान्ति यन्त्र, जयप्रकाश यन्त्र, षष्ठांश यन्त्र, दिगंश यन्त्र, तुरीय, द्वादश राशि वलय, धूपघटिका, यन्त्रराज, उन्नतांश, गोल, राम यन्त्र, ध्रुवदर्शक यन्त्र एवं चक्र यन्त्र।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेध – वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना।

यन्त्र – जिन अवयवों के द्वारा ग्रहों का वेध किया जाता है, उसे यन्त्र कहते है।

वेधशाला – वेधानां शाला इति वेधशाला। अर्थात् वह स्थान जहाँ ग्रहों के वेध, वेध-यन्त्रों द्वारा किया जाता जाता है, उसका नाम वेधशाला है।

शंकु यन्त्र – पलभा मापक यन्त्र का नाम शंकु है। इससे दिक्, देश तथा काल का ज्ञान भी सम्यक् रूप से किया जा सकता है।

दिगंश यन्त्र – गोल एवं वर्तुलाकार तीन भित्तियों के रूप में यह यन्त्र ग्रहों की दिशा व दशा जानने के लिए बनाया गया है।

क्रान्ति यन्त्र – सूर्य की स्थिति जानने के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.घ 2. क 3. क 4. क 5. ग

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

(ग) भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय वेधपथ प्रदर्शक – पं0 गोकुल चन्द्र भावन

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) प्रस्तरवेधशाला – प्रोफेसर भास्कर शर्मा 'श्रोत्रिय'

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सवाईजयसिंहस्यज्योतिषेऽवदानम्– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

वेधशालावैभवम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रमुख यन्त्रों का नाम व उसका उपयोग लिखिये।

2. चक्र एवं राम यन्त्र का परिचय व वेध विधि का वर्णन कीजिये।

3. सम्राट यन्त्र का वर्णन कीजिये।

4. गोल यन्त्र का प्रतिपादन कीजिये।

5. शंकु, वृहद सम्राट, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र तथा दिगंश यन्त्र का उल्लेख कीजिये?

इकाई - 4 प्राच्य एवं अर्वाचीन यन्त्रों का विवेचन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्राचीन यन्त्रों का परिचय
4.4 आधुनिक यन्त्रों का विवेचन
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक पाठ्यसामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-104 के तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – प्राचीन एवं अर्वाचीन यन्त्रों का विवेचन। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने वेधशाला, यन्त्र परिचय, तथा प्रमुख यन्त्रों का परिचय व उसका उपयोग आदि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप प्राचीन एवं अर्वाचीन यन्त्र से जुड़े विषयों का अध्ययन करने जा रहे है।

ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत वेध-यन्त्र द्वारा वेध करने की प्रक्रिया अतिप्राचीन काल से रही है। अत: प्राचीन काल खण्ड में वेध किये गये यन्त्र को प्राचीन यन्त्र तथा अर्वाचीन वाले वर्तमान यन्त्र के रूप में जाने जाते हैं।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिषोक्त प्राचीन एवं अर्वाचीन यन्त्रों का नाम व उनके उपयोग को जानने का प्रयास करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि प्राचीन यन्त्र कौन-कौन से है?
- वेध के लिए अर्वाचीन यन्त्र कौन-कौन से है?
- प्राचीन यन्त्रों की क्या विशेषता थी?
- अर्वाचीन यन्त्रों द्वारा वेध कैसे करते है?

4.3 प्राचीन यन्त्रों का परिचय

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में ग्रहवेध हेतु यन्त्रों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन व अर्वाचीन आचार्यों ने विविध यन्त्रों का उपयोग अपने-अपने कालखण्डों में विधिवत् किया है। परिभाषा रूप में नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है। नलिकादि यन्त्रों से ग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम वेध विश्वविश्रुत है। दृष्टि एवं यन्त्र भेद से वेध दो प्रकार का होता है। वैदिक काल से ही नक्षत्रों, तारापुंजों, सप्तर्षिण्डल एवं नक्षत्रों की युति-अन्तर आदि का वर्णन मिलता है, जिनका ज्ञान वेध के बिना सम्भव नहीं था। वेदों में वर्णित आकाशीय घटनाओं का उल्लेख वेध सम्बन्धित कुछ साक्ष्य उपस्थापित करता है –

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहति:।

वेदों के अवलोकन से प्राप्त ज्योतिषीय तथ्यों के अवगमन द्वारा सारांश रूप में कह सकते हैं कि वैदिक काल में भी वेध-परम्परा प्रचलित थी, परन्तु किन स्थलों (वेधशालाओं) पर किन साधनों (यन्त्रों) द्वारा वेध सम्पादित होते थे, इस विषय में दृढ़तापूर्वक कुछ भी कहना कठिन होगा। शुल्बसूत्रों में यज्ञ-सम्पादन के प्रसंग में कुण्ड-मण्डपादि साधन के लिए शंकु द्वारा दिग् साधन का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत काल में भी ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का समुचित ज्ञान था। शल्यपर्व में शुक्र एवं मंगल के चन्द्रमा से युति का वर्णन प्राप्त होता है। भीष्म पर्व में तो ग्रहों के युति-अन्तरादि विषयों के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

सूर्यसिद्धान्त ज्योतिषशास्त्र का प्रथम स्वीकृत सिद्धान्त माना जाता है। इसके स्पष्टाधिकार के १४ वें श्लोक में स्पष्ट वर्णन है कि जिस विधि से ग्रह दृष्टि में उपलब्ध होते हैं, उस क्रिया को कह रहा हूँ –

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहा:।
प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

ग्रन्थान्त में गोल, बीज, शंकु, कपाल एवं मयूर आदि यन्त्रों का वर्णन मिलता है। परन्तु वहाँ भी यन्त्रों के निर्माण एवं प्रयोग की विधि नहीं दी गयी है, फिर भी वेधविधि विकास पथ में अग्रसरित दिखायी देती है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में 'आर्यभट्टीयम' उपलब्ध है। इसकी रचना ३९८ शक में आर्यभट्ट ने की थी। इस ग्रन्थ में कालमापक यन्त्र की निर्माण एवं प्रयोग विधि निर्दिष्ट है तथा शंकु यन्त्र का भी वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् मध्ययुगीय परम्परा वेध की दिशा में क्रमश: सार्थक प्रयास दिखायी देता है। वराहमिहिर के पंचसिद्धान्तिका में वेध सम्पादनपूर्वक बीजसंस्कार भी दिखायी देता है। वराहमिहिर के अनन्तर वेध परम्परा में ब्रह्मगुप्त का महत्वपूर्ण योगदान है। इनका जन्म ५२० शकाब्द में हुआ था। ब्रह्मगुप्त महान दैवज्ञ वेधकुशल एवं दृक्सिद्ध ग्रहों के पोषक थे। उन्होंने वेध द्वारा यह अनुभव किया कि प्रचलित विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा दृक्सिद्ध ग्रह प्राप्त नहीं होते। अत: ब्रह्मगुप्त ने स्फुट दृक्सिद्ध ग्रहों के आनयन के लिए 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' की रचना की। इस ग्रन्थ में स्पष्ट संकेत होता है कि नलिकादि यन्त्रों द्वारा स्पष्टत्तर बीज का साधन कर उससे संस्कृत ग्रहों द्वारा ही निर्णय एवं आदेश करना चाहिये। ब्रह्मगुप्त के पश्चात् १४४२ शकाब्द तक वेधपरम्परा वृद्धिपथ में दिखायी देती है। इस बीच मुंजाल, श्रीधराचार्य, श्रीपति, भास्कराचार्य, बल्लालसेन, केशवार्क, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, ज्ञानराज आदि वेधनिपुण दैवज्ञों के प्रयास वेध की दिशा में अन्यतम स्थान रखते हैं। दृक्सिद्ध ग्रहसाधन एवं वेधपरम्परा में केशवदैवज्ञ तथा उनके पुत्र गणेशदैवज्ञ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। केशवदैवज्ञ वेधक्रिया में अतीव दक्ष दिखायी देते हैं। १४१८ शक के लगभग उन्होंने ग्रहकौतुक नामक ग्रन्थ लिखा। अपने इस ग्रन्थ की मीताक्षरा टीका में

उन्होंने अभूतपूर्व वेधज्ञान का वर्णन किया है। कालान्तर से इनके ग्रन्थ को भी वेध द्वारा स्थूल देखकर इनके पुत्र गणेश दैवज्ञ ने वेधद्वारा प्राप्त निष्कर्षों से ग्रहलाघव नामक करणग्रन्थ की रचना की। इसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक ज्योतिष एवं वेधपरम्परा का प्रचार-प्रसार सामान्य गति से चलता रहा। इसके बीच अनेक विद्वान हुए जिनमें कमलाकर भट्ट एवं मुनीश्वर आदि प्रमुख हैं। इनके ग्रन्थों में भी वेध-सम्बन्धी पूर्वागत परम्परा का ही परिपालन है। इस तरह सूर्यसिद्धान्त या आर्यभट्ट के काल से आरम्भ कर लगभग १५ वीं शताब्दी तक मुख्यतया शंकुयन्त्र, घटीयन्त्र, नलिकायन्त्र, यष्टियन्त्र, चापयन्त्र, तुरीययन्त्र, फलकयन्त्र, दिगंशयन्त्र, एवं स्वयंवह यन्त्र का प्रयोग दिखायी देता है। यद्यपि इस काल में वेधप्रक्रिया विकसित हो चुकी थी, नये यन्त्रों का आविष्कार भी प्रचलन में था, परन्तु स्थायी वेधशालाओं की चर्चा कहीं प्राप्त नहीं होती। १५ वीं शताब्दी तक यूरोप एवं अरब देशों में वेधप्रक्रिया बहुत विकसित हो चुकी थी। हिपार्कस, टालमी इत्यादि विद्वानों ने अपनी वेधक्षमता से अनेक नूतन तथ्य उपस्थापित किये थे। सन् १३९४ ई0 एवं १४४९ ईसवी के मध्य तैमूरलंग के पौत्र उलूगबेग ने भी वेध के क्षेत्र में सराहनीय प्रयास किया था। उलूगबेग समरकन्द का बादशाह एवं खगोलविद्या का प्रेमी था। अत: उसने अपने राज्य में एक वेधशाला का निर्माण कर वेधद्वारा ग्रह-नक्षत्रों की अनेक सारणियाँ निर्मित की थीं। भारतीय वेधपरम्परा का स्वर्णकाल महाराज सवाई जयसिंह के काल से प्रारम्भ होता है। यद्यपि जयसिंह के पूर्ववर्ती वेधकुशल दैवज्ञों ने वेधशालाओं का निर्माण कर वेधकार्य सम्पादित किया था तथापि वेधशालाओं की परम्परा में सवाई जयसिंह की तरह सुव्यवस्थित एवं व्यापक कार्य भारतीय ज्योतिष शास्त्र के इतिहास में नहीं दिखायी देता। इन्होंने जयपुर, दिल्ली, उज्जैन, वाराणसी तथा मथुरा में वेधशालाओं की स्थापना की। सवाई जयसिंह की इच्छा से इनके गुरू जगन्नाथ सम्राट ने दिल्ली-जयपुर आदि वेधशालाओं में वेध सम्पादित कर प्राप्त परिणामों की समीक्षापूर्वक अरबी भाषा में जिज- ए-मुहम्मदशाही तथा संस्कृत भाषा में सिद्धान्त-सम्राट नामक ग्रन्थों की रचना की।

यन्त्रों के अन्तर्गत मेरी दृष्टि में आरम्भ काल से १५ वीं तथा १६ वीं सदीं के समय तक में अनुमानत: निम्नलिखित **प्राचीन यन्त्रों** के नाम आते हैं जो प्राप्य हैं–

शंकु यन्त्र, कपाल यन्त्र, मिश्र यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र, अष्टमांश यन्त्र, गोल यन्त्र एवं धूपघटिका यन्त्र, मयूर यन्त्र, वृहद्सम्राट यन्त्र, लघुसम्राट यन्त्र, नाड़ीवलय यन्त्र, क्रान्ति यन्त्र, जयप्रकाश यन्त्र, षष्ठांश यन्त्र, दिगंश यन्त्र, तुरीय, द्वादश राशिवलय, धूपघटिका, यन्त्रराज, उन्नतांश, गोल, राम यन्त्र, ध्रुवदर्शक यन्त्र एवं चक्र यन्त्र।

इनके अतिरिक्त भी कई यन्त्र होंगे जो अप्राप्य हैं तथा वर्तमान में उपयोग में नहीं है अथवा ग्रन्थों या वेधशालाओं में द्रष्टय नहीं होता।

उपर्युक्त इन यन्त्रों का आपने पूर्व के अध्याय में परिचयात्मक व विधि सहित अध्ययन कर लिया है।

4.4 आधुनिक यन्त्रों का विवेचन

जयसिंह के अनन्तर आधुनिक वेधकर्ताओं में सर्वप्रथम वेंकटेशबापूशास्त्री केतकर महोदय का नाम स्मरणीय है। इन्होंनें प्राच्य-पाश्चात्य ग्रहगणित के समन्वय से १८१८ शक में सूक्ष्मसिद्धान्त मण्डित केतकीग्रहगणितम् नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसी क्रम में सन् १८३५ ई0 के उड़ीसा प्रान्त के सामन्तचन्द्रशेखर का भी वेध के क्षेत्र में योगदान स्मरणीय है। इन्होंने दृग्गणितैक्य सम्पादन के लिये प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत यन्त्रवर्णन के अनुसार कुछ यन्त्रों का निर्माण कर वेधद्वारा 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की। दृग्गणितैक्य पर आधारित यह अब तक का अन्तिम सिद्धान्त माना जाता है।

ज्योतिषशास्त्र के आधुनिक परम्परा में डॉ. मेघनाथ शाहा का नाम स्मरणीय है। अमेरिका में तीन वेधशालायें प्रमुख हैं – १. लिंगवेधशाला २. प्रो0 लावेल की वेधशाला ३. हार्वर्ड विश्वविद्यालयस्थ वेधशाला। अमेरिका के कैलफोर्निया प्रान्त में 'फ्लोमर' पर्वत पर स्थित वेधशाला आधुनिक वेधशालाओं में अग्रणी है। आधुनिक भारतीय वेधशालाओं में मद्रास, तमिलनाडु का कोडाईकनाल वेधशाला, नीलगिरि पर्वत पर स्थित उटकमण्ड वेधशाला, उस्मानिया वेधशाला आदि प्रमुख है।

राजस्थान प्रान्त के उदयपुर नगर में फतेहसागर जलाशय के निकट स्थित उदयपुर वेधशाला और उत्तरांचल प्रदेश के नैनीताल शहर में स्थित नैनीताल वेधशाला भी देश की श्रेष्ठ वेधशालाओं में परिगणित हैं। इन आधुनिक वेधशालाओं के अतिरिक्त राष्ट के अनेक भागों में कृत्रिम तारामण्डल भी स्थापित है।

आधुनिक यन्त्रों में निम्न यन्त्रों के नाम आते हैं - आधुनिक कम्पास यन्त्र, आधुनिक नलिका यन्त्र, आधुनिक तारा मण्डप, आधुनिक ग्लोब यन्त्र, आधुनिक बायनाकूल व चित्रालग्नमापक यन्त्र, आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र।

इसके अतिरिक्त भी कई अत्याधुनिक यन्त्र भी हैं जो ग्रहों की जानकारी अथवा अन्तरिक्ष की जानकारी में नासा द्वारा प्रयोग किये जाते हैं। उन सबका यहाँ उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

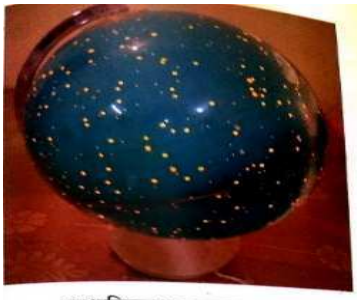

आधुनिकतारामण्डपयन्त्रम्

आधुनिकग्लोबयन्त्रम्

आधुनिकयन्त्राणि
अष्टमांशयन्त्रम् (Octant), गोलयन्त्रम् (Astrolabium),
धूपघटिकायन्त्रम् (Sun Dial)

आप चित्र में आधुनिक तारा मण्डप यन्त्र, आधुनिक ग्लोब यन्त्र, अष्टमांशयन्त्र आदि को देख सकते हैं। इनका उपयोग दिक् साधन, ग्रह-नक्षत्र वेध, भूगोल तथा खगोल की जानकारी हेतु किया जाता है।

आधुनिकबायनाकूलरयन्त्रम्

चित्रालग्नमापकयन्त्रम्

आप यहाँ भी आधुनिक वायनाकूल यन्त्र तथा चित्रालग्नमापक यन्त्र को देख रहे हैं। इसके माध्यम से ग्रहों-तारों का वेध तथा लग्न का मापन किया जाता है। ग्रहण काल में भी आकाशीय बिम्बों को देखने के लिए इनका उपयोग होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. सिद्धान्तदर्पण किसकी रचना है।
   क. केशव ख. गणेश ग. कमलाकर घ. सामन्तचन्द्रशेखर
2. ज्योतिष शास्त्र का सर्वस्वीकृत प्रथम सिद्धान्त कौन सा है?
   क.सूर्यसिद्धान्त ख. आर्यसिद्धान्त ग. ब्राह्मसिद्धान्त घ. कोई नहीं
3. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त किसकी कृति है?
   क. कमलाकर की ख. भास्कर की ग. ब्रह्मगुप्त की घ. गणेश की

4. अमेरिका के कैलफोर्निया प्रान्त में किस पर्वत पर आधुनिक वेधशाला में अग्रणी वेधशाला है?

क. फ्लोमर ख. ग्लोमर ग. साइबर घ. अन्टार्किटका

5. उत्तराखण्ड के किस शहर में वेधशाला है?

क. हरिद्वार ख. नैनीताल ग. देहरादून घ. उत्तरकाशी

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र में ग्रहवेध हेतु यन्त्रों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन व अर्वाचीन आचार्यों ने विविध यन्त्रों का उपयोग अपने-अपने कालखण्डों में विधिवत् किया है। उन यन्त्रों में प्रमुखता के दृष्टिकोण से प्राचीन एवं अर्वाचीन सहित निम्नलिखित यन्त्रों के नाम आते हैं – शंकु यन्त्र, आधुनिक कम्पास यन्त्र, आधुनिक नलिका यन्त्र, कपाल यन्त्र, आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र, आधुनिक तारा मण्डप, आधुनिक ग्लोब यन्त्र, मिश्र यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र, अष्टमांश यन्त्र, गोल यन्त्र एवं धूपघटिका यन्त्र, आधुनिक बायनाकूल व चित्रालग्नमापक यन्त्र, वृहद्सम्राट यन्त्र, लघुसम्राट यन्त्र, नाड़ीवलय यन्त्र, क्रान्ति यन्त्र, जयप्रकाश यन्त्र, षष्ठांश यन्त्र, दिगंश यन्त्र, तुरीय, द्वादश राशि वलय,

धूपघटिका, यन्त्रराज, उन्नतांश, गोल, राम यन्त्र, ध्रुवदर्शक यन्त्र एवं चक्र यन्त्र।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेध – वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना।

यन्त्र – जिन अवयवों के द्वारा ग्रहों का वेध किया जाता है, उसे यन्त्र कहते है।

वेधशाला – वेधानां शाला इति वेधशाला। अर्थात् वह स्थान जहाँ ग्रहों के वेध, वेध-यन्त्रों द्वारा किया जाता जाता है, उसका नाम वेधशाला है।

शंकु यन्त्र – पलभा मापक यन्त्र का नाम शंकु है। इससे दिक्, देश तथा काल का ज्ञान भी सम्यक् रूप से किया जा सकता है।

दिगंश यन्त्र – गोल एवं वर्तुलाकार तीन भित्तियों के रूप में यह यन्त्र ग्रहों की दिशा व दशा जानने के लिए बनाया गया है।

क्रान्ति यन्त्र – सूर्य की स्थिति जानने के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.घ 2. क 3. ग 4. क 5. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

(ग) भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय वेधपथ प्रदर्शक – पं0 गोकुल चन्द्र भावन

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) प्रस्तरवेधशाला – प्रोफेसर भास्कर शर्मा 'श्रोत्रिय'

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सवाईजयसिंहस्यज्योतिषेऽवदानम्– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

वेधशालावैभवम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन वेधशालाओं का वर्णन कीजिये।

2. आर्यभट्ट के काल से जयसिंह के काल पर्यन्त वेध निर्माण की परम्परा का उल्लेख कीजिये।

3. प्राचीन यन्त्रों का नाम लिखते हुए उनका परिचय दीजिये।

4. आधुनिक यन्त्रों एवं वेधशालओं का वर्णन कीजिये।

खण्ड - 4
गोल परिचय

इकाई - 1 गोल परिचय एवं प्रयोजन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 गोल परिचय
1.3.1 गोल प्रयोजन
1.4 वृत्तादि की परिभाषा
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के चतुर्थ खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – गोल परिचय एवं प्रयोजन। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े कई विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसी गणित ज्योतिष से जुड़े 'गोल' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'गोल' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष का ज्ञाता गणितीय विधा में और निपुण हो जाता है। यद्यपि सम्पूर्ण 'गोल शास्त्र' काल्पनिक है। यह बताना कठिन है कि गोल में कौन कहाँ निश्चित रूप से स्थित है। तथापि गोल ज्ञान आकाशीय खगोलपिण्डों की स्थिति को समझने के लिए परमावश्यक है।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'गोल' के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गोल को परिभाषित कर सकेंगे।
- गोल के विभिन्न अवयवों को समझा सकेंगे।
- गोल के प्रयोजन को समझ लेंगे।
- गोल के महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम हो जायेंगे।
- गोल का ज्योतिष में योगदान को समझ लेंगे।

1.3 गोल परिचय

सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के द्वारा मानव आदिकाल से ब्रह्माण्ड के विभिन्न रहस्यों के अन्वेषण में प्रयत्नशील है। मानव की जिज्ञासा से भूगोलीय तथा खगोलीय विभिन्न विषयों के बारे में अनेक प्रकार की शंकाओं तथा उलझे हुए प्रश्नों के सही समाधान भी होते हुए आए है। ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत गोलज्ञान के बिना अन्य ज्ञान सम्भव नहीं है। गोलज्ञान तथा उसकी संरचना आदि सिद्धान्त स्कन्ध का मूल विषय है। इनके ज्ञान के बिना पृथ्वी ग्रह तथा नक्षत्रों के प्रभाव से विश्व मे ंपरिवर्तन की चर्चा करना भी असम्भव है। गोलज्ञान के लिए पाटीगणित, क्षेत्रमिति, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति, गोलीयज्यामिति, गोलीयत्रिकोणमिति, चलनकलनादि का ज्ञान क्रमिक विकास के अनुसार परम आवश्यक है।

खगोलीयपिण्डों की परस्परदूरी के माप के लिए सूर्यादिग्रहों के उदयास्तकाल, सूर्यादि का ग्रहणकाल, ग्रहस्पष्टीकरण, विभिन्नदेशों के अक्षांश, रेखांश आदि के ज्ञान, तथा इसी प्रकार अनेक गोलीयप्रश्नों के समाधान के लिए सर्वप्रथम सुन्दर, सुदृढ़ बॉस या धातु की शलाकाओं से दृष्टान्तगोलानुरूप भूगोल के उपर काल्पनिक खगोल, ग्रहगोल तथा भगोल आदि की रचना की जाती है। दृष्टान्तगोल में ग्रहों के उदयास्तादि ज्ञान के लिए क्षितिज, उन्मण्डलादि वृत्तों की रचना की जाती है। अक्षांशज्ञान के लिए उन्मण्डलक्षितिज, स्वदेशीयक्षितिज तथा याम्योत्तरवृत्त की रचना की जाती है। इनसे ग्रहो की शर, क्रान्ति आदि का ज्ञान किया जाता है।

पृथ्वी के किस स्थान पर दिन और रात्रि पूरे वर्ष पर्यन्त समान होते है? सारे विश्व मे दिन रात की लम्बाई कब–2 बराबर होती है ? उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन कब होता है? राहु और केतु क्या है? अयनांश की प्रवृत्ति कहॉ से होती है? अक्षांश, लम्बांश का ज्ञान कैसे होता है? ग्रहण कब और क्यों होता है? इस प्रकार अनेक प्रश्नों के समाधान के लिए गोलज्ञान अत्यावश्यक है। खगोलीय विभिन्नमान, स्थित्यादि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष सापेक्ष काल्पनिक रेखाओं की रचना की जाती है। **ये सभी तथ्य गोल से सम्बद्ध हैं।**

खगोलज्ञान एक ऐसा समुद्र है, जिसकी जितनी गहराई मे हम पहुॅचते है, वह उतना ही और अधिक गहरा लगता जाता है। गोलज्ञान रूपी महासमुद्र की गहराईयों में जाने के लिए खगोलीयवृत्तों गोलीय परिभाषाओं के साथ–साथ क्षेत्र तथा विभिन्न काल्पनिक रेखाओं से उत्पन्न खगोलीयनियामकों का ज्ञान होना आवश्यक है।

'गुड' शब्द में अच् प्रत्यय से गोलशब्द की उत्पत्ति हुई है। गुढ़ अर्थात् गहन। गहन विषयों की चर्चा जिसमें होती है उसे 'गोलज्ञान' कहते है। इसमें समस्त गोलीय गणितीय विषयों का समावेश है। गोलशब्द गोलाकार घनपिण्ड, भूगोल, दिव्यलोक, आकाशमण्डल आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः गोल, गोलीयपिण्ड तथा विभिन्न गोलीयवृत्तों के नियामकों तथा सम्बन्धों का ज्ञान सुगमता से कराना इस इकाई के अन्तर्गत रखा गया है।

1.3.1 गोलप्रयोजन : –

ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी आदि का यथार्थज्ञान जिस क्षेत्र विशेष से होता है, उसे 'गोल' कहते है। त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र का मूलप्रयोजन भूत–भविष्य एवं वर्तमान का समस्त शुभाशुभ प्रभाव निरूपण करना है। शुभाशुभ प्रभाव निरूपण लग्नकुण्डली के आधार पर होता है। अर्थात् लग्नकुण्डली में स्थित ग्रहों की स्थापना स्पष्टग्रहसाधन से करना होता है। लग्नसाधन

स्पष्टग्रह गणित की गणितीय उपपत्ति, खगोलीयविध तथा गोलीयउपपत्ति के बिना असम्भव है। गणितज्ञान के बिना गोलज्ञान सम्भव नहीं है। अतः सर्वप्रथम गणित का ज्ञान होना चाहिए यह भास्कराचार्य जी का भी मत है।

भूगोल, ग्रहगोल तथा खगोल के सम्यक् ज्ञान के लिए सर्वप्रथम गणित का ज्ञान अंकगणित, ज्यामिति, रेखागणित, बीजगणित आदि का ज्ञान अत्यावश्यक है। यह प्रथम द्वार है।

गोलीयप्रभावज्ञान– शुभकाल में प्रारम्भ किये यज्ञकर्म की निर्विघ्न परिसमाप्ति तथा उससे शुभफल प्राप्ति के लिए ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति हुई। यज्ञकर्म करने के लिए शुभमुहूर्त्तों का निरूपण संहितास्कन्ध के मुहूर्त्तज्योतिष के आधार पर दिव्य तथा भौमान्तरिक्ष के प्रभावादि का निरूपण संहिताशास्त्र के आधार पर तथा यज्ञकुण्ड, पूजावेदी आदि का निर्माण रेखागणित के आधार पर किया जाता है। इसलिए ज्योतिषशास्त्र को वेदांगपुरूष का मुख्य अंग नेत्रस्थानीय माना जाता है।

वैदिककाल में यज्ञकुण्ड, पूजावेदी के निर्माण के लिए ऋषिओं ने सूत्रों का प्रणयन किया था। उसे शुल्वसूत्र कहा जाता है। इस का अर्थ है –''नापने की डोर''। अतः इससे ज्ञात होता है की वैदिककाल से ही ज्यामिति, रेखागणित आदि का प्रयोग होता चला आ रहा है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पासभ्यता में गृह मार्ग आदि के निर्माण में ज्यामिति का व्यवहार होता था। मिश्र के पिरामीड़ आदि भी ज्यामिति के विभिन्न नियम तथा पद्धति की सहायता से बनते थे।

'ज्या' शब्द का अर्थ भूमि वा पृथ्वी तथा 'मिति' शब्द का अर्थ माप होता है। अतः ज्यामिति का अर्थ है भूमि की माप। उसी तरह अंग्रेजी शब्द "Geometry' ग्रीक् शब्द Geo तथा Metron से हुआ। Geo अर्थात् पृथ्वी Metron अर्थात् माप। अतः इसे गणितशास्त्र के प्रधान अंग के रूप में माना जाता है। जिसके सम्पूर्ण ज्ञान के लिए बिन्दु, रेखा, सरलरेखा, समतल, वृत्त, गोल आदि का ज्ञान होना जरूरी है। इससे हम गोलज्ञान सम्यक् प्राप्त कर सकते है। मापन तथा गणना, दो क्रियाविशेष इससे प्रत्यक्ष जुड़ा है। बिन्दुओं के योग से रेखा की उत्पत्ति होती है। इसलिए रेखा को बिन्दुमयी कहा जाता है। कुटिलरेखा से वृत्त की उत्पत्ति और वृत्तों से गोल की उत्पत्ति होती है। अतः इस इकाई मे विभिन्न गोलीयवृत्तों का परिचय प्रदान किया जा रहा है, जिससे पाठक गण गोलतत्व को समझने तथा उसके विभिन्न प्रयोग में समर्थ हो सके।

1.4 वृत्तादि की परिभाषाः–

1. बिन्दु – बिन्दु नियतस्थान मात्र होता है, जो दैर्घ्य, विस्तार उच्चता तथा आयतन रहित है। जैसे एक वस्तु का निर्माण अणु–परमाणुओं से होता है, उसी प्रकार प्रत्येक क्षेत्र का निर्माण अनेक बिन्दओं के योग से उत्पन्न रेखाओं से होता है, परन्तु दोनों में पार्थेक्य है। अणु आदि का भी माप होता है, परन्तु बिन्दु का कोई माप नहीं होता है। इस की स्थिति के विषय मे केवल स्थान नियत होता है। इससे छोटे आकार की कल्पना पार्थिवदृष्टि से असम्भव है। क्षेत्र में बिन्दुओं के मध्य में शून्यस्थान नहीं होता है।

   लेखनी के शीर्षभाग को कागज के उपर दबा देने से जो चिह्न बनता है, उसे बिन्दु कहते है। निम्न अंकित चिह्नों को देखिए। उनमें 1 से लेकर 8 तक के चिह्नों को बिन्दु कहा जा सकता है। परन्तु वे सब अनेक बिन्दुओं के समाहार है। केवल 7 नम्बर के चिह्न को बिन्दु कहेगें। अविभाज्य दैर्घ्यविस्ताररहित स्थान बिन्दु कहलाता है। यथा – क्षेत्र –1

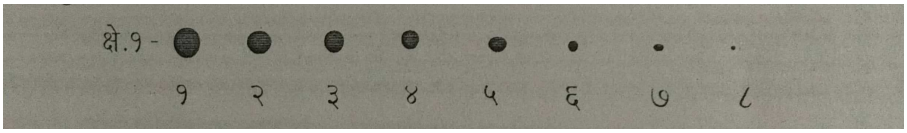

2. रेखा – रेखा बिन्दुओं का समुच्चय होता है। बिन्दु की गतिपथ को रेखा कहते है। रेखा 2 प्रकार की होती है। सरल, वक्र, रेखा। एक बिन्दु को दिग् परिवर्तन न करते हुए आगे बढ़ाया जाए तो वह सरलरेखा बनती है। जो एक दिशा में जाते जाते दूसरी दिशा की ओर मुड़ जाए उसे वक्ररेखा कहते है।

क ——————————— ख (सरल रेखा) क्षेत्र –2

क्षेत्र –3 वृत्त वक्र रेखा का उदाहरण है।

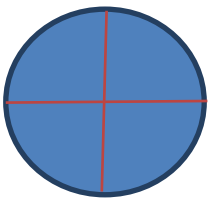

विशेष –

❖ दो बिन्दु के बीच अल्प दूरी तक सरलरेखा होती है। प्रदर्शित चित्र में 'क' तथा ख बिन्दु के मध्य में छोटी रेखा सरलरेखा है। क्योंकि क,ख बिन्दु के मध्य में लघुत्तम रेखा ही दोनों बिन्दु के मध्य की दूरी को दर्शाती है।

क्षेत्र – 4

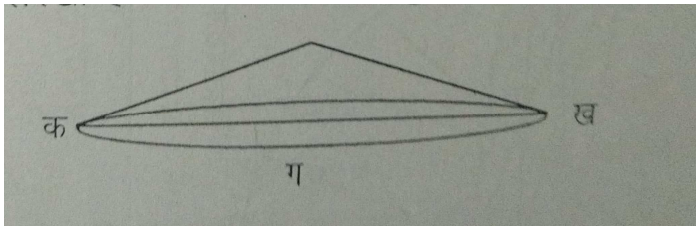

❖ दो समतल बिन्दु को लेकर केवल एकमात्र सरलरेखा का अंकन किया जा सकता है।

❖ दो सरलरेखा केवल एक ही बिन्दु पर परस्पर छेदित करते है। इससे चारकोण बनते है। यथा क्षेत्र – 5

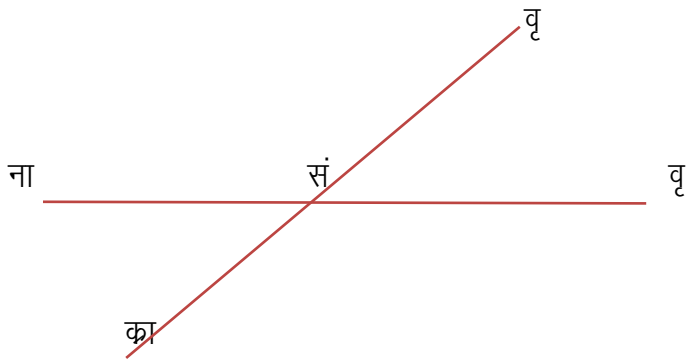

प्रदर्शित चित्र में नावृ और क्रावृ दो सरलरेखा है। दोनों का योग एक मात्र 'सं' बिन्दु में ही हो सकता है।

❖ दो समानान्तर सरलरेखाओं में छेदनबिन्दु नहीं होते है। दो रेखाओं की दूरी सर्वत्र तुल्य होने से समानान्तर कहते हैं।

यथा – क्षेत्र–6 अ वृ

ना वृ

❖ एक ही बिन्दु के मध्य से असंख्य सरलरेखा का अंकन किया जा सकता है। जो प्रदर्शितक्षेत्र में स्पष्ट है। यथा – क्षेत्र. 7 –

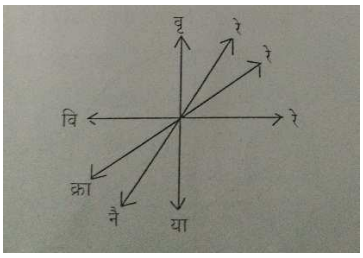

विरे – विषुवत्रेखा
क्रारे – क्रान्तिरेखा
नैरे – कोणरेखा
विरे – विमण्डल रेखा
या वृ – याम्योत्तर रेखा
सरल रेखा को बढ़ाने पर आदि और अन्त नहीं होता है। वे उभय पार्श्व में सीमाहीन विस्तृत होती है।

3. वृत्त – कुटिलरेखा से आबद्धधरातल को वृत्त कहते है। वृत्त के मध्यबिन्दु को केन्द्र कहते है। अर्थात् जो क्षेत्र अपने ही मध्यस्थबिन्दु से चारों और तुल्य अन्तर में स्थित एक अछिन्न अखण्डित कुटिलरेखा से घीरा हो, उसे वृत्त कहते है। उसका मध्यस्थबिन्दु उस वृत्त का केन्द्र होता है। यथा –

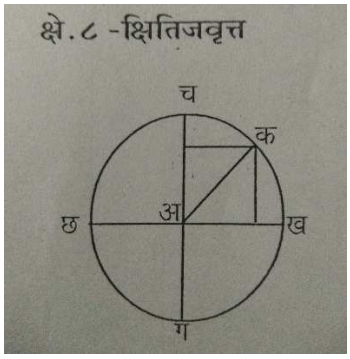

प्रदर्शित क्षेत्र में अ वृत्त का केन्द्रबिन्दुं है। उस मध्यबिन्दु के चारों ओर तुल्य दूरी पर क,ख,ग एवं घ बिन्दु है। इन सभी बिन्दओं के योग से क,ख, चग, गछ, छच कुटिलरेखाओं की उत्पत्ति

हुई। क,ख, गछ अ केन्द्रिकवृत्त की परिधि है। अक = अख=अग=त्रिज्या =90 अंश चाप की ज्या त्रिज्या सरलरेखा है, चाप व्रकरेखा है। प्रत्येक वृत्त में 360^0 अंश का होते है। एक वृत्त में समकोण पर $90^0 \times 4 = 360^0$। 1 पद = 1 समकोण = 90^0 ।

विशेष –

1. एक वृत्त का एक मात्र केन्द्रबिन्दु होता है ।
2. एक वृत्त की एक ही परिधि होती है।
3. एक वृत्त में सभी व्यासार्द्ध एक ही माप के होते है।
4. एक वृत्त में असंख्यव्यासार्द्ध होते है।
5. त्रिज्या + त्रिज्या = व्यास = 2 त्रि = व्यास। एक वृत्त में सभी व्यास एक ही माप के होते है।
6. वृत्त की उभय पालि संलग्न केन्द्रगत रेखा व्यासरेखा है।

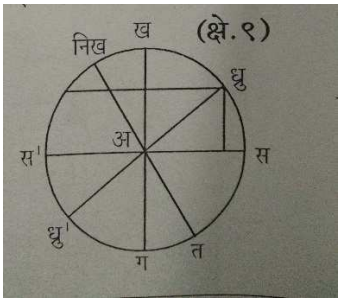

क्षेत्र विवरणः– प्रदर्शित क्षेत्र में अ केन्द्रबिन्दु है तथा ध्रु'ध्रु, गख, तनिख, कच, आदि वृत्त के व्यास रेखा है। अपने क्षितिजवृत्त में विभिन्नपिण्डगतसूत्र तथा रेखाओं के संयोग से रेखागणितीय प्रकार से विभिन्न गोलीयसमीकरण तथा निष्कर्ष सत्यापित होते हैं।

➢ वृत्त के परिमिति दैर्घ्य को परिधि कहते है।

अभ्यास प्रश्न –

1. 'गुड' शब्द में अच् प्रत्यय लगने से कौन सा शब्द बनता है।

   क. वृत्त ख. गोल ग. ज्या घ. खगोल

2. ज्या शब्द का क्या अर्थ है?

   क. पृथ्वी ख. गोल ग. ब्रह्माण्ड घ. ज्यामिति

3. निम्न में नियत स्थान मात्र होता है?

   क. रेखा ख. बिन्दु ग. क्षेत्र घ. गोल

4. बिन्दुओं के समुच्चय को क्या कहते है?

क. गोल ख. रेखा ग. बिन्दु घ. ज्या

5. वृत्त के मध्य बिन्दु को क्या कहते है?

क. परिधि ख. व्यास ग. केन्द्र घ. रेखा

6. एक वृत्त में कितने परिधि होती है?

क. १ ख.२ ग.३ घ.४

4. चाप – वृत्त के परिधिखण्ड को चाप कहते है। प्रदर्शित कखग वृत्त परिधिखण्ड कख, खग, अथवा गक वृत्त खण्ड रूप चाप है – क्षेत्र 10

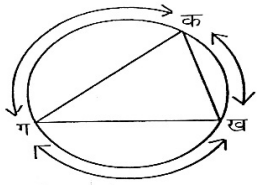

5. पूर्णज्या तथा ज्या – परिधिस्थ किसी भी दो बिन्दु के योगरूप सरलरेखा को पूर्णज्या कहते हैं। वा चाप के दोनों प्रान्त को मिलाने वाली योगरेखा को प्राचीनतम में ज्या कहते हैं। उसके आधे को ज्यार्ध कहते है।

क्षेत्र - ११

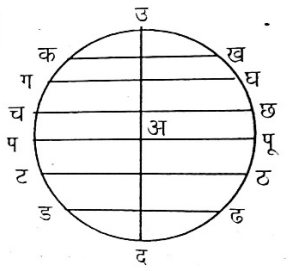

विशेष –

1. एक वृत्त में असंख्य ज्या होती हैं।
2. वृत्त का केन्द्रबिन्दु जिस पूर्णज्या के उपर अवस्थित हो उसे वृत्त की व्यासरेखा कहते हैं।

3. व्यासरेखा वृत्त की सबसे बड़ी पूर्णज्या हैं।
4. प्रदर्शित क्षेत्र में कख, गघ, चछ, पपू, टठ, डढ रेखाएँ सब वृत्त की पूर्णज्यायें हैं। पपू ज्या वृत्तकेन्द्रबिन्दु अ होकर गयी है। अतः पअपू तथा उअद वृत्त की व्यास रेखायें है।

6. अर्धवृत्त – जिस चाप की ज्या व्यास होती है, उसे अर्धवृत्त कहते हैं। व्यासरेखा से वृत्त दो अर्धवृत्त में विभाजित होता है। यथा क्षितिजवृत्त को दक्षिण उत्तर, पूर्वपश्चिमादि क्रम से बांटने पर निम्नांकित क्षेत्र में कगख वृत्तचाप की पूर्णज्या वृत्त व्यासरेखा कख तथा गघ है। दो अर्धवृत्त इससे बनता है। खघक = 180^0 = खगक।

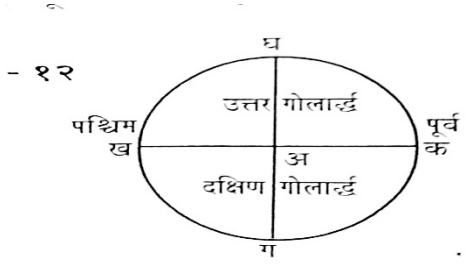

एवं घकग = घखग।

कगख तथा कघख अर्धवृत्त दोनों एक ही वृत्त के कख व्यासरेखा से उत्पन्न है। इसे क्षितिजवृत्त मानने पर कअख विषुवत् रेखा तथा घअग प्रधानमध्याह्नरेखा हैं। इससे क्षितिजवृत्त में दो भाग उत्तरगोलार्ध, दक्षिणगोलार्ध तथा पूर्वगोलार्ध एवं पश्चिमगोलार्ध बनते हैं।

7. वृत्तखण्ड – केन्द्र से निकली हुई दो रेखा यदि चाप के उभयप्रान्त से संलग्न हों तो उस क्षेत्र को वृत्तांशक्षेत्र, या वृत्तखण्ड भी कहते है। अथवा ज्या से वृत्त के छेदित अंश को वृत्तखण्ड कहते है। प्रदर्शित क्षेत्र के कख पूर्णज्या से वृत्त का छेदित अंश द्वय कगख तथा कघख दो वृत्तखण्ड हैं। कघख वृत्तखण्ड तथा कगख लघुवृत्तखण्ड हैं।

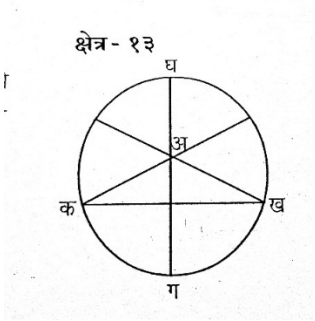

8. वृत्तपाद – केन्द्र से निकली हुई दोनों प्रान्तगत दो रेखा यदि परस्पर लम्ब हो तो उस वृत्तखण्ड को वृत्तपाद कहते हैं। अ केन्द्र से निकली हुई अक, अख, रेखा परस्पर एक दूसरे के उपर लम्ब है। अतः कख वृत्तचाप हैं। इस तरह से एक वृत्त में चार वृत्तपाद होते हैं।

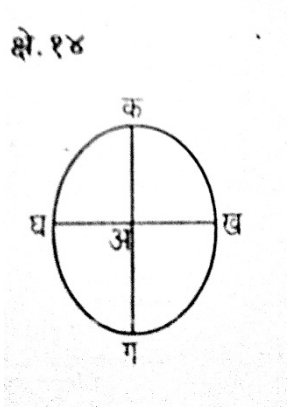

खगोल – खगोल एक काल्पनिक गोल हैं। जिस के केन्द्र में दर्शक रहता है। खगोल में स्थित विभिन्न ग्रहनक्षत्रों की स्थिति, गति, आदि का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से करते हैं। यह खगोल क्या हैं? ख अर्थात् आकाश। आकाश को देखते हैं तो, गोल प्रतीत होता है। हमारे क्षितिज के उपर ग्रहनक्षत्रादि से सुसज्जित अनेक गोल स्थापित है। निरीक्षण से पता चलता है कि गोलार्ध पूर्व से पश्चिम की ओर भ्रमण करता है। अत: इससे ज्ञात होता है की आकाश अर्धगोल नहीं, बल्कि गोल है। जिसे 'खगोल' कहते हैं। दिन में नीलाकाश से आवृत्त क्षितिजाभिप्रायिक विस्तार गोलात्मक है।

भूगोल – भू अर्थात् पृथ्वी। पृथ्वी गोलाकार है। अत: उसे 'भूगोल' कहते है। भूगोल पृथुत्वात् समवद् दिखाई देती है। चल होकर भी अचल प्रतीत होती है। पृथ्वी के गोल होने के अनेक प्रमाण है।

1. सूर्योदय एक ही समय पृथ्वी के हर देश में नहीं होता है। सर्वप्रथम पूर्ववर्ती देशों में सूर्योदय होता है। तत्पश्चात् पश्चिम देशों में। इस से ज्ञात होता है की पृथ्वी समतल नहीं है। पृथुलता हेतु हम एक समय में उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म लघु भाग का ही दर्शन कर सकते हैं। कहा जाता है की वृत्त का ९६ वाँ भाग सरलरेखावत् प्रतीत होता है।

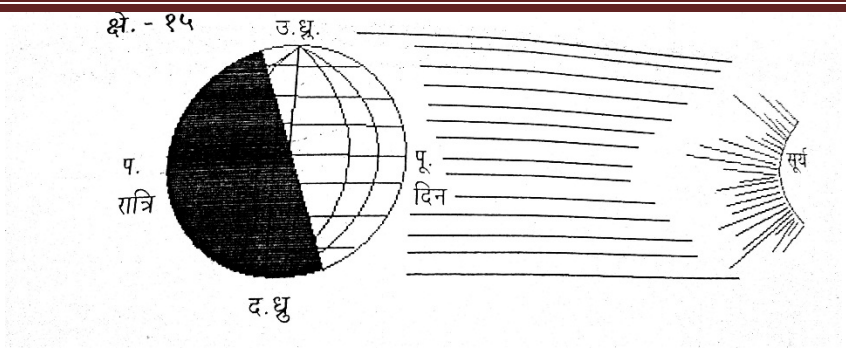

2. चन्द्रग्रहणकाल में सूर्य और चन्द्रमा के मध्य में पृथ्वी के रहने से चन्द्रग्रहण होता है। ग्रहणकाल में चन्द्र का आच्छादित भाग गोलाकार दिखता हैं। क्योंकि गोलाकार वस्तु का प्रतिबिम्ब भी गोल होता है। अत: पृथ्वी गोलाकार है, जिसे 'भूगोल' कहते हैं।

इसके अतिरिक्त गोल में अनेकों आभाषिक वृत्त बनते हैं। उनका विस्तार से अध्ययन आप आगे की इकाई में करेंगे।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के द्वारा मानव आदिकाल से ब्रह्माण्ड के विभिन्न रहस्यों के अन्वेषण में प्रयत्नशील है। मानव की जिज्ञासा से भूगोलीय तथा खगोलीय विभिन्न विषयों के बारे में अनेक प्रकार की शंकाओं तथा उलझे हुए प्रश्नों के सही समाधान भी होते हुए आए है। ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत गोलज्ञान के बिना अन्य ज्ञान सम्भव नहीं है। गोलज्ञान तथा उसकी संरचना आदि सिद्धान्त स्कन्ध का मूल विषय है। इनके ज्ञान के बिना पृथ्वी ग्रह तथा नक्षत्रों के प्रभाव से विश्व मे ंपरिवर्तन की चर्चा करना भी असम्भव है। गोलज्ञान के लिए पाटीगणित, क्षेत्रमिति, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति, गोलीयज्यामिति, गोलीयत्रिकोणमिति, चलनकलनादि का ज्ञान क्रमिक विकास के अनुसार परम आवश्यक है।

खगोलीयपिण्डों की परस्परदूरी के माप के लिए सूर्यादिग्रहों के उदयास्तकाल, सूर्यादि का ग्रहणकाल, ग्रहस्पष्टीकरण, विभिन्नदेशों के अक्षांश, रेखांश आदि के ज्ञान, तथा इसी प्रकार अनेक गोलीयप्रश्नों के समाधान के लिए सर्वप्रथम सुन्दर, सुदृढ़ बॉस या धातु की शलाकाओं से दृष्टान्तगोलानुरूप भूगोल के उपर काल्पनिक खगोल, ग्रहगोल तथा भगोल आदि की रचना की जाती है। दृष्टान्तगोल में ग्रहों के उदयास्तादि ज्ञान के लिए क्षितिज, उन्मण्डलादि वृत्तों की रचना की जाती है। अक्षांशज्ञान के लिए उन्मण्डलक्षितिज, स्वदेशीयक्षितिज तथा

याम्योत्तरवृत्त की रचना की जाती है। इनसे ग्रहो की शर, क्रान्ति आदि का ज्ञान किया जाता है।

पृथ्वी के किस स्थान पर दिन और रात्रि पूरे वर्ष पर्यन्त समान होते है? सारे विश्व मे दिन रात की लम्बाई कब–2 बराबर होती है ? उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन कब होता है? राहु और केतु क्या है? अयनांश की प्रवृत्ति कहॉ से होती है? अक्षांश, लम्बांश का ज्ञान कैसे होता है? ग्रहण कब और क्यों होता है? इस प्रकार अनेक प्रश्नों के समाधान के लिए गोलज्ञान अत्यावश्यक है। खगोलीय विभिन्नमान, स्थित्यादि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष सापेक्ष काल्पनिक रेखाओं की रचना की जाती है। **ये सभी तथ्य गोल से सम्बद्ध हैं।**

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

गोल – गुड में अच् प्रत्यय लगकर गोल शब्द बना है। अर्धवृत्त को स्वव्यासरेखोपरि घूमाने से जो क्षेत्र बनता है, उसका नाम गोल है।

बिन्दु – नियत स्थान चिह्न को बिन्दु कहते है।

रेखा – बिन्दुओं के समुच्चय को रेखा कहते है।

परिधि – वृत्त के चारों ओर के क्षेत्र को परिधि कहते है।

चाप – वृत्त के परिधि खण्ड को चाप कहते है।

पूर्णज्या तथा ज्या – परिधिस्थ किसी भी दो बिन्दु के योगरूप सरलरेखा को पूर्णज्या कहते है। वा चाप के दोनों प्रान्त को मिलाने वाली योगरेखा को प्राचीनतम में ज्या कहते है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.ख 2. क 3. ख 4. ख 5. ग 6. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) गोल परिभाषा – डॉ0 कमलाकान्त पाण्डेय

(ग) गोल परिभाषा – गणपति लाल शर्मा

(घ) गोल परिचय – डॉ. शुभास्मिता मिश्रा

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

गोल परिभाषा – कमलाकान्त पाण्डेय।

गोल परिभाषा – गणपति लाल शर्मा

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गोल से आप क्या समझते है?
2. ज्योतिष शास्त्र में गोल की महत्ता पर प्रकाश डालें।
3. बिन्दु, वृत्त, रेखा तथा गोल की सक्षेत्र परिभाषा लिखिये।
4. चाप, ज्या तथा वृत्तखण्ड को समझाते हुए लिखिये।
5. भूगोल तथा खगोल का उल्लेख कीजिये?

इकाई – 2 विविध आभासिक वृत्तादि की परिभाषा

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विविध आभासिक वृत्तादि की परिभाषा

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के चतुर्थ खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – विविध आभाषिक वृत्तादि की परिभाषा। इससे पूर्व आपने गोल का आरम्भिक परिचय से अवगत हो चुके हैं। अब आप उसी गोल से जुड़े विविध आभाषिक वृत्तादि की परिभाषादि के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'गोल' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष का ज्ञाता गणितीय विधा में और निपुण हो जाता है। यद्यपि सम्पूर्ण 'गोल शास्त्र' काल्पनिक है। यह बताना कठिन है कि गोल में कौन कहाँ निश्चित रूप से स्थित है। तथापि गोल ज्ञान आकाशीय खगोलपिण्डों की स्थिति को समझने के लिए परमावश्यक है।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'विविध वृत्तादि' के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गोल को परिभाषित कर सकेंगे।
- गोल में विविध वृत्तों को समझा सकेंगे।
- विविध वृत्तों को परिभाषित कर सकेंगे।
- गोल के महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम हो जायेंगे।
- विविध वृत्तों के माध्यम से गोल स्वरूप को समझा सकेंगे।

2.3 विविध वृत्तादि की परिभाषा

सिद्धान्त ज्योतिष में 'गोल' का ज्ञान परमावश्यक है। गोलज्ञान के बिना हम ग्रहों की वास्तविक स्थिति को ठीक–ठीक नहीं समझ सकते हैं। विदित हो कि सम्पूर्ण गोल काल्पनिक मानकर आचार्यों ने उसमें वृत्तादि की स्थिति की बात कही है, जो कि किसी स्थान विशेष पर निश्चित रूप में विद्यमान नहीं है। तथापि गोलज्ञान सम्पूर्ण भौगोलिक, आकाशीय स्थिति को समझने के लिए जरूरी है। अतः सर्वप्रथम गोलबन्ध का ज्ञान बतलाते हुए उसके अन्तर्गत आने वाले क्रमशः विविध वृत्तादि की परिभाषा की चर्चा इस इकाई में करेंगे।

1. गोल (Sphere)– बिंदु से रेखा, रेखा से वृत्त तथा वृत्त से गोल की उत्पत्ति होती है। अर्धवृत्त को अपने स्थिर व्यास पर चारों ओर घूमाने से वह जितने घनात्मक स्थान को घेरता है, उसको गोल या गोला कहते है। गोल के प्रत्येक बिन्दु की दूरी उसके एक निश्चित स्थिर केन्द्र बिन्दु से समान रहती है। **गोल के लिए श्लोक है** -

वृत्तार्धे स्वस्थिरव्यास रेखोपरि समन्ततः।
भ्राम्यमाणे घनक्षेत्रं जायते गोल एव सः।।
केन्द्रं तदर्धवृत्तस्य गोलकेन्द्रं च कथ्यते।
भूमिकेन्द्रं तदेवाऽत्र कल्पनीयं विपश्चिता।।

स्वकीय स्थिर व्यास रेखा के ऊपर चारों तरफ वृत्तार्ध में घुमाने (भ्रमण करने) से जो घन क्षेत्र बनता है, उसे गोल कहते हैं। उस अर्धवृत के केन्द्र को गोल केन्द्र कहते हैं और उसी केन्द्र को विद्वानों ने भूमि केन्द्र की कल्पना किया है अर्थात् भूमिकेन्द्र कहा है। अर्धवृत्तं स्वव्यासरेखोपरि भ्राम्यमाणं गोलमुत्पादयति।

2. खगोल (Celesetial Sphere) – उस कल्पित रूप से खोखले गोले को कहते हैं जिसकी भीतरी सतह पर यावत् आकाशीय तारे एवं ग्रह पिण्डादि निरूपित किये जाते हैं और जिसका केन्द्र स्वयं द्रष्टा होता है। द्रष्टा के क्षितिज से उपरवाले खगोल का आधा भाग ही उसे हर एक समय में दृश्य होता है, शेष आधा भाग क्षितिज से नीचे रहने के कारण अदृश्य होता है।
3. धरातल (Plane) – जहॉ केवल दैर्घ्य एवं विस्तार मात्र हो, पिण्ड कुछ भी न हो, उसे धरातल कहते हैं। जिस धरातल को सरल सीधी रेखा सर्वाशतया स्पर्श करे, वह सम धरातल या समतल या केवल तल कहा जाता है, उससे भिन्न विषम धरातल समझना चाहिये।
4. महद्वृत्त एवं लघुवृत्त (Great Circles & Small Circles) – खगोलवर्ती प्रत्येक धरातल वृत्ताकार होता है। और जिस वृत्त का धरातल खगोल के केन्द्र से होकर जाय, वह 'महद्वृत्त' कहा जाता है तथा उसी को त्रिज्या वृत्त भी कहते है, उस महदवृत्त से भिन्न गोलान्तर्गत वृत्त को 'लघुवृत्त' कहा जाता है।
5. खगोलीय वृत्त केन्द्र (Centres of Spherical Circles) – खगोल पृष्ठगत वृत्तों के तीन केन्द्र होते है, एक खगोलान्तर्गत गर्भ–केन्द्र तथा दो पृष्ठ केन्द्र होते है। जैसे, वृत्त के परिधिगत प्रत्येक बिन्दु से तुल्य दूरी पर जो बिन्दू रहता है, वह उस वृत्त का केन्द्र कहलाता है, अतएव वह गोलगर्भ में एक केन्द्र हुआ तथा इस केन्द्र से वाम एवं दक्षिण तरफ जानेवाली सरल रेखा खगोल–पृष्ठ के जिन दो बिन्दुओं को स्पर्श करती है, वे दो पृष्ठ–केन्द्र हुये। इस तरह हर खगोलीय वृत्त के तीन केन्द्र – बिन्दु होते हैं।

6. क्रान्तिवृत्त, नाक्षत्र वर्ष और नाक्षत्र दिन (Ecliptic, sidereal Year & Day)- आकाशीय अन्य ग्रहों की भॉति हमारी पृथ्वी भी एक ग्रह है। ग्रह उस खगोलवर्ती पिण्ड को कहते हैं, जो किसी अन्य स्थिरप्राय खगोलवर्ती पिण्ड के चारों ओर घूमता हो। वह पिण्ड जो स्वयं किसी अन्य पिण्ड की परिक्रमा नहीं करता, तारा कहलाता है। इस दृष्टि से सूर्य भी एक तारा है, जिसके चारों ओर पृथ्वी तथा अन्य ग्रह घूमते रहते हैं। पृथ्वी आदि ग्रहों के सूर्य के चतुर्दिक भ्रमण करने से आकाश में उनके जो भ्रमण–मार्ग बनते हैं, वे उनके कक्षा–पथ या केवल कक्षा कहे जाते हैं। खगोलस्थ पृथ्वी का कक्षा–पथ क्रान्तिवृत्त कहलाता है जिसके पृष्ठ–केन्द्र को 'कदम्ब' कहते हैं। क्रान्तिवृत्त को राशि वलय भी कहते हैं। क्रान्तिवृत्त के किसी स्थिर बिन्दु या नक्षत्र से चलकर पुनः उस बिन्दु आने में पृथ्वी को जितना समय लगता है, वह नाक्षत्र सौरवर्ष कहा जाता है।

पृथ्वी में सूर्य की परिक्रमा के अलावा अन्य गतियॉ भी है। जैसे, पृथ्वी के उत्तर दक्षिण ध्रुवों के बीच में एक सरल रेखा खींची जाय तो वह भूगर्भ –केन्द्र से होती हुई दोनों को मिला देगी। इसी कल्पित रेखा को पृथ्वी का भ्रमणाक्ष या केवल अक्ष कहते हैं। भ्रमणाक्ष कहने का कारण यह है कि पृथ्वी सदैव इस कल्पित रेखा के चारों ओर घूमती रहती है। पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है, इसलिए सूर्य तारे आदि प्रतिदिन पूर्व से पश्चिम की ओर जाते दिखाई देते है, जैसा कि आर्यभट् ने कहा है –

अनुलोम गर्तिर्नौस्थः पश्चत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत समपश्चिमगानि लंकायाम्।।

पृथ्वी को अपने अक्ष पर एक बार घूम जाने में 60 नाक्षत्र घटी या 24 घण्टे लगते हैं। इसको नाक्षत्र अहोरात्र भी कहते हैं।

7. नाड़ीवृत्त, उत्तरगोल और दक्षिणगोल – उपर्युक्त क्रान्तिवृत्त पर हमारी पृथ्वी का अक्ष लम्ब नहीं है, बल्कि कुछ झुका हुआ है जिसके कारण और क्रान्तिवृत्त के समतल में करीब 66 पूर्णांक 1/2 का अन्तर है। इस तरह क्रान्तिवृत्त पर तिर्यक झुकी हुई पृथ्वी के केन्द्र और दक्षिणोत्तर ध्रुवों से जानेवाली सरल रेखा खगोलपृष्ठ के जिन दो बिन्दुओं को स्पर्श करती है, वे क्रमशः खगोलीय दक्षिण एवं उत्तर ध्रुव या ध्रुवस्थान कहे जाते हैं। उत्तर ध्रुव–बिन्दु के समीपस्थ तारे को ध्रुवतारा कहते हैं। ध्रुव बिन्दु से 90 अंश के व्यासार्ध से खींचे गये वृत्त को विषुवद् वृत्त कहते हैं एवं इस विषुवद् वृत्त के पृष्ठ केन्द्र उत्तर, दक्षिण ध्रुव बिन्दु हैं। पृथ्वी के दक्षिणोत्तर ध्रुवस्थान एवं खगोलीय ध्रुवस्थान एक सूत्रगत होने के कारण भूगोल का विषुवद्वृत्त और खगोलीय विषुवद्वृत्त दोनों एक ही धरातल में हैं ओर जिस तरह भौगोलिक विषुवद्वृत्त

भूगोल को उत्तरी भूगोलार्ध एवं दक्षिणी भूगोलार्ध , इन दो भागों में विभाजित करता है, उसी तरह खगोलीय विषुवद्वृत्त खगोल को उत्तर गोल एवं दक्षिण गोल इन दो भागों में विभाजित करता है। खगोलीय विषुवद्वृत्त को भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष में नाड़ीवृत्त अथवा नाडीवलय भी कहा गया है, क्योंकि इसी वृत्त में होरादि या घटयादि काल–गणना की जाती है। घटी का ही दूसरा नाम नाड़ी है। खगोल में यह वृत्त क्रान्तिवृत्त से करीब 23।। अंश का कोण बनाता है, जिसको परम क्रान्ति कोण कहते है।

8. भूगोल स्वरूपम् – गेन्द के समान गोल होने के कारण इस भूपिण्ड को 'भूगोल' कहते हैं। यह भूगोल स्वशक्ति (अपनी शक्ति) से निराधार आकाश में स्थित है। विशाल होने के कारण देखने में समतल एवं चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। यह भूगोल क्रमश: चन्द्र-बुध-शुक्र-रवि- भौम-गुरु-शनि एवं नक्षत्र गोल के द्वारा उर्ध्वोर्ध्वस्थ आवृत्त है अर्थात् पृथ्वी के ऊपर चन्द्र, पुन: ऊपर बुध आदि समझना चाहिए। यथा गोल परिभाषा में इसके लिए श्लोक भी इस प्रकार कहा गया है –

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खे स्थित:।
पृथुत्वात् समवद् भाति चलोऽप्यचलवत् तथा।।
आवृत्तोऽयं क्रमाच्चन्द्र बुध शुक्राऽर्क भूभुवाम्।
गोलैर्जीवार्किभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितै:।।

विशेष – पृथ्वी में स्वल्प गति होने के कारण उसे अचल कहा गया है। 'वृत्तस्य नवतिर्भाग दण्डवत् परिदृश्यते' के आधार पर (अर्थात् पृथुत्वात्) समतल दिखायी पड़ती है। भूगोल के चारों तरफ ऊपर ऊपर क्रमश: भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि और नक्षत्रों के मण्डल हैं।

9. स्वस्थान – भूमि पर जो जहाँ स्थित है, वही उसका पृष्ठस्थान या स्वदेश कहलाता है। यथा-

भूमौ तिष्ठति यो यत्र पृष्ठस्थानं तदुच्यते।
स्वदेशोऽपि स एवास्य कथ्यते गणितागमे।।

अर्थात् भूमिपृष्ठे यो जनो यत्र तिष्ठति तत्तस्य पृष्ठस्थानं स्वदेशो वा उच्यते।

10. खस्वस्तिक - भूमिगर्भात् स्व्देशस्पृक् सूत्रं यत्र नभस्सदाम्।
गोले लग्नं खमध्यं तत् खस्वसितकमपीरितम्।।

अर्थात् भूकेन्द्र से स्वदेश को स्पर्श करता हुआ सूत्र आकाश में जहाँ लगता है, वही उसका खमध्य अथवा खस्वस्तिक कहलाता है। गोलाकार भूपिण्ड के मध्य को भूकेन्द्र कहते है। गोलेलग्न का तात्पर्य चन्द्रादि ग्रहों के गोल पृष्ठ में संलग्न होने से है।

11. ध्रुवस्थान - भूकेन्द्र से ध्रुवनक्षत्रगत सूत्र जिस गोल में जहाँ लगता है, वहाँ उस गोल में वह ध्रुवस्थान कहा जाता है। सौम्य (उत्तर) ध्रुवस्थान को देव खस्वस्तिक एवं याम्य (दक्षिण) ध्रुवस्थान

को दैत्यखस्वस्तिक कहते हैं। यथा –

भूकेन्द्राद् ध्रुवगं सूत्रं यद्गोले यत्र संयुतम्।
तद्गोले तद् ध्रुवस्थानं गोलविज्ञैर्निगद्यते।।
सौम्ययाम्ये ध्रुवस्थाने खमध्ये देवदैत्ययो:।।

उन्मण्डल का याम्योत्तर वृत्त के साथ उत्तरदिशि सम्पात् को उत्तरी ध्रुवस्थान एवं दक्षिणदिशि सम्पात् को दक्षिणध्रुवस्थान कहते हैं। उत्तर ध्रुवस्थान पर देवताओं का एवं दक्षिण ध्रुवस्थान पर दैत्यों का निवास स्थान है।

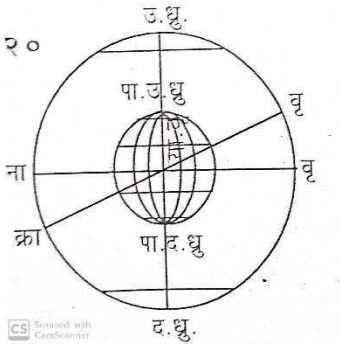

क्षेत्र में,

उ.ध्रु – उत्तरीध्रुवस्थान, द.ध्रु – दक्षिणी ध्रुवस्थान, या.वृ – याम्योत्तर वृत्त, नावृ – नाड़ीवृत्त।

12. गोलरचना प्रकार: - बाँस के इष्ट शलाकाओं से उत्पन्न मजबूत, चिकना (जो देखने में अच्छा लगे) राशि, अंश, कलादि अंकित वृत्त का निर्माण कर तद् वत् गोल रचना विधि से विद्वानों को गोल बनाना चाहिए। यथा –

वंशादिष्ट शलाकोत्थैर्दृढै: श्लक्षणै: सुवृत्तकै:।
अंकितैर्भगणांशाद्यैर्गोलं विरचयेद् बुध:।।

13. याम्योत्तर वृत्त एवं क्षितिज वृत्त – खमध्य और दोनों ध्रुवस्थानों में जाने वाले वृत्त को याम्योत्तर वृत्त कहते हैं। खमध्य से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त को क्षितिजि वृत्त कहते हैं और उसी वृत्त के गर्भीय क्षितिज वृत्त भी कहते हैं। स्वपृष्ठ स्थान से क्षितिज धरातल के समानान्तर धरातल को पृष्ठ क्षितिज कहते हैं। यथा –

खमध्यध्रुवयोर्लग्नं वृत्तं याम्योत्तरं तथा।
खमध्यतो नवत्यंशैर्वृत्तं तत् क्षितिजं स्मृतम्।।
गर्भीयं पण्डितैरेवं तद्भूतलसमान्तरम्।

स्वस्थानाद् भूतलं यच्च तत्पृष्ठक्षितिजं स्मृतम्।।

खमध्यध्रुवयोर्गतं वृत्तं याम्योत्तरवृतम्। खमध्यतोनवत्यंशेन विहितं वृत्तं क्षितिजवृत्तम्।

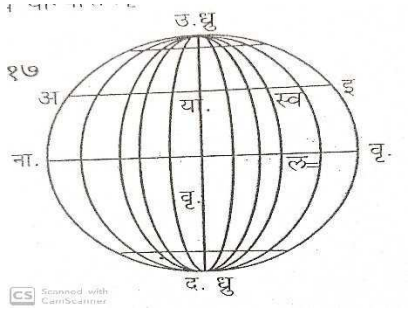

उपर क्षेत्र में - उ.ध्रु = उत्तरी ध्रुवस्थान, द.ध्रु = दक्षिणी ध्रुवस्थान, यावृ = याम्योत्तर वृत्त, नावृ = नाड़ीवृत्त = भूध्यपरिधि, अइ = स्पष्टपरिधि, स्व = स्वदेश, ल = स्वदेशीय निरक्षदेश।

14. समस्थान पूर्वापरवृत्त एवं पूर्वापरस्वस्तिक - याम्योत्तरवृत्त क्षितिजवृत्त में जहाँ लगता है, उसे समस्थान कहते हैं। अर्थात् याम्योत्तर वृत्त एवं क्षितिजवृत्त के सम्पात् बिन्दु को समस्थान कहते हैं। उत्तरदिशि सम्पात् को उत्तरीसमस्थान एवं दक्षिणदिशि सम्पात को दक्षिणसमस्थान कहते हैं। समस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को पूर्वापरवृत्त और सममण्डल (समवृत्त) कहते हैं। पूर्वापरवृत्त क्षितिज वृत्त में जहाँ पूर्वदिशा में लगता है, उसे पूर्वस्वस्तिक एवं पश्चिम दिशा में जहाँ स्पर्श करता है, उसे पश्चिम स्वस्तिक कहते है। यथा –

याम्योत्तरे कुजं यत्र लग्नं तत्समचिह्नकम्।
समस्थानान्नवत्यंशैर्वृत्तं पूर्वापरं हि तत्।।
समवृत्तं च तद्यत्र लग्नं स्थानद्वये कुजे।
तत् पूर्वस्वस्तिकं प्राच्यां पश्चिमस्वस्तिकं परम्।।

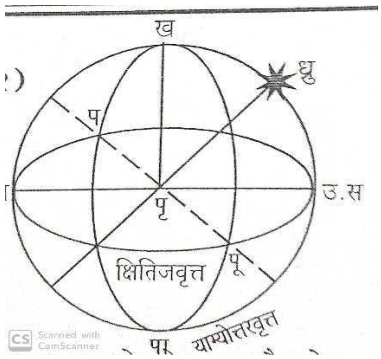

क्षेत्र में, स बिन्दु से 90 अंश की दूरी पर ख, प, पा, पू – पूर्वापर वृत्त, उस – उत्तरीसमस्थान। पू-पूर्वस्वस्तिक, प – पश्चिम स्वस्तिक।

अभ्यास प्रश्न –

1. स्वकीय स्थिर व्यास रेखा के ऊपर चारों तरफ वृत्तार्ध में घुमाने (भ्रमण करने) से जो घन क्षेत्र बनता है, उसे क्या कहते हैं।

क. खगोल ख. गोल ग. भूगोल घ. भगोल

2. जहाँ केवल दैर्घ्य एवं विस्तार मात्र हो, पिण्ड कुछ भी न हो वह क्या कहलाता है।

क. वृत्त ख. धरातल ग. गोल घ. रेखा

3. भूकेन्द्र से ध्रुवनक्षत्रगत सूत्र जिस गोल में जहाँ लगता है, वहाँ उस गोल में वह क्या कहा जाता है।

क. ध्रुवस्थान ख. खमध्य ग. खस्वस्तिक घ. क्षितिजस्थान

4. खमध्य और दोनों ध्रुवस्थानों में जाने वाले वृत्त को क्या कहते हैं।

क. पूर्वापर वृत्त ख. क्षितिज वृत्त ग. याम्योत्तर वृत्त घ. कोण वृत्त

5. ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्या कहते हैं।

क. नाड़ीवृत्त ख. विषुववृत्त ग. कालवृत्त घ. इनमें सभी

6. कदम्ब स्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त को क्या कहते हैं।

क. नाड़ीवृत्त ख. क्रान्तिवृत्त ग. क्षितिज वृत्त घ. कोण वृत्त

15. कोणस्थान एवं कोणवृत्त - पूर्वस्वस्तिक और पश्चिमस्वस्तिक से दोनों तरफ ४५ अंश से अन्तरित चार (४) कोण स्थान होते हैं। उस कोणस्थान और खमध्य में संलग्न महदवृत्त को कोणवृत्त और विदिग् वृत्त कहते हैं।

पूर्वस्वस्तिकतस्तद्वत् पश्चिमस्वस्तिकात् कुजे।
शराब्ध्यंशा ४५ न्तरे ज्ञेयं कोणस्थानचतुष्टयम्।।
कोणस्थाने खमध्ये च यद्बृहन्मण्डलं गतम्।
कोणवृत्तं च तज्ज्ञेयम् विदिगवृत्तं तदेव हि।।

16. नाड़ीवृत्त एवं निरक्षदेश - ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को नाड़ीवृत्त, विषुववृत्त और कालवृत्त कहते हैं। उसके धरातलगत देश को निरक्षदेश कहते हैं और उस देश में अक्ष

से उत्पन्न (अक्षोद्भवा:) ध्रुवतारा के उन्नतांश नहीं होते है। अर्थात् जहाँ का अक्षांश शून्य हो उसे निरक्ष देश कहते हैं। जैसे – लंका आदि।

ध्रुवस्थानान्नवत्यंशै र्नाड़ीवृत्तं तदुच्यते।
तदेव विषुवं वृत्तं कालवृत्तमपीरितम्।।
तद्धरातलगो देशो निरक्ष: कथ्यते यत:।
न सन्त्यक्षभवास्तत्र ध्रुवतारोन्नतांशका:।।

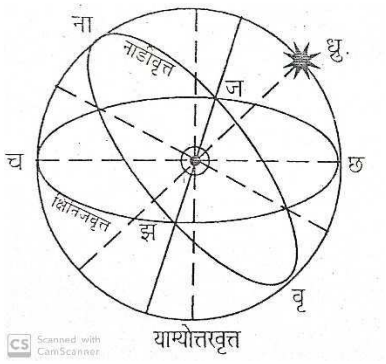

क्षेत्र में, ख – स्वखमध्य, ध्रु – ध्रुवतारा, नावृ – नाड़ीवृत्त, चछजझ- क्षितिजवृत्त।

17. लंका रेखादेश - निरक्ष देश में लंका है अर्थात् लंका का अक्षांश शून्य हैं। याम्योत्तर वृत्त को ही रेखावृत्त कहते हैं तथा उसके धरातल स्थित देश को रेखादेश कहते हैं।

लंका निरक्षदेशेऽस्ति तद्याम्योत्तरमण्डलम्।
रेखाख्यं तत्र यो देशो रेखादेश: स उच्यते।।

18. मध्यरेखा परिभाषा – जो लंका उज्जयिनी के ऊपर से कुरूक्षेत्र आदि देशों को स्पर्श करता हुआ सूत्र मेरु पर्यन्त जाता है, उसे पृथ्वी (भूमण्डल) की मध्यरेखा कहते हैं।

यल्लंकोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुव:।।

19. स्वदेशाभिप्रायेण निरक्षखस्वस्तिक और उन्मण्डल – नाड़ीवृत्त में स्वयाम्योत्तर वृत्त जहाँ लगता है उसे स्वनिरक्षखमध्य कहते हैं। निरक्षखमध्य से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को उन्मण्डल कहते हैं और वह उन्मण्डल पूर्वस्वस्तिक पश्चिम स्वस्तिक के साथ-साथ दोनों ध्रुव स्थानों को भी स्पर्श करता है।

यत्र याम्योत्तरे लग्नं नाडिकामण्डलं च तत्।
निरक्षीयखमध्यं स्यात् नवत्यंशैस्ततो हि यत्।।

वृत्तमुन्मण्डल नाम तत् पूर्वस्वस्तिके गतम्।
ध्रुवस्थानेऽपि संलग्नं पश्चिमस्वस्तिकेऽपि च।।

20. कदम्बवृत और क्रान्तिवृत्त – ध्रुवस्थान से जिनांश २४ अंश त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को कदम्बवृत्त कहते हैं, और कदम्बवृत्त में ही प्रवह वायु के द्वारा कदम्ब ताराभ्रमण करता है। कदम्ब तारा से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्रान्तिवृत्त और भवृत्त कहते हैं। इसी क्रान्तिवृत्त में सूर्य निरन्तर भ्रमण करता है।

जिनांशैर्यद् ध्रुवाद् वृत्तं तत् कदम्बर्क्षमण्डलम्।
यतस्तस्मिन् कदम्बर्क्षं भ्रमति प्रवहेरितम्।।
यत् कदम्बान्नवत्यंशैर्वृतं तत् क्रान्तिमण्डलम्।
भवृत्तं च तदेवाऽत्र भ्रमत्यर्को निरन्तरम्।।

21. गोलीय महदवृत्तों का अन्तर - गोलपृष्ठ पर दो महद्वृत्तों का योग ६ राशि के अन्तर पर दो स्थानों में होता है। दोनों योगों से तीन राशि के अन्तर पर दोनों महद्वृत्तों का परमान्तर होता है।

षड्राश्यन्तरितौ योगौ गोले त्रिज्योत्थवृत्तयो:।
राशित्रये तु योगाभ्यां तयो: स्यात् परमान्तरम्।।

22. गोलसन्धि - नाड़ीवृत्त एवं क्रान्तिवृत्त का दो स्थानों पर योग होता है। उन दोनों योगों के बीच में एक मेषादि और दूसरा तुलादि होता है। इस दोनों योगों को गोलसन्धि कहते हैं। एवं दोनों गोलसन्धियाँ क्रान्तिवृत्त चल होने के कारण चल हैं। मेषादि से क्रान्तिवृत्त के तुल्य द्वादश १२ भाग मेषादि द्वादश राशियाँ कही गयी हैं। उन राशियों में नाड़ीवृत्त से उत्तर में मेषादि षड् राशियाँ एवं दक्षिण में तुलादि षड्राशियाँ स्थित हैं।

नाड़ीभवृत्तयोर्योगौ ज्ञेयौ मेषतुलादिकौ।
गोलसन्धिसमाख्यौ तौ भूगोलचलनाच्चलौ।।
भवृत्तस्य समा भागा राशयो द्वादशस्मृता:।
नाड़ीवृत्तोत्तरेऽजाद्यास्तुलाद्या दक्षिणे स्थिता:।।

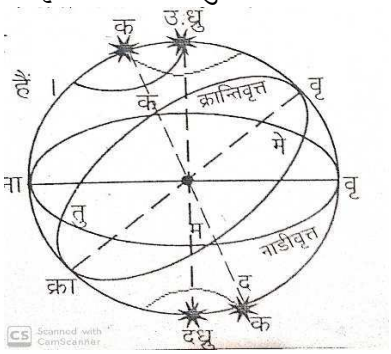

क्षेत्र में, उ.ध्रु – उत्तरध्रुव, द.ध्रु – दक्षिणध्रुव, उ.क. – उत्तरध्रुव से २४ अंश पर कदम्ब स्थन, द.क. –दक्षिण ध्रुव से २४ अंश पर कदम्ब स्थान, मे.तु - नाड़ीक्रान्तिवृत्तों के दो संपात है। क्रा.वृ – क्रान्तिवृत्त, ना.वृ – नाड़ीवृत्त। यह क्रान्तिपात गतिशील है, अत: गोलसन्धि तथा अयनसम्पात भी गतिशील है।

23. अयनवृत्त – गोलसन्धि से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को अयन वृत्त कहते हैं। और वह कर्कादि एवं मकरादि दो बिन्दुओं में तथा कदम्ब और ध्रवस्थानों में जाता है। यथा –

गोलसन्धेर्नवत्यंशे वृत्तं कर्क मृगादिकम्।
आयनं मण्डलं तत् स्यात् कदम्बध्रुवयोर्गतम्।।

24. चन्द्रादि ग्रहों के विमण्डल - अपनी-अपनी गति अनुसार (चन्द्र, भौम, बुध आदि) ग्रह जिस वृत्त में घूमते हैं, उस वृत्त को चन्द्रादि ग्रहों का विमण्डल कहते हैं। प्रत्येक ग्रहों के अलग-अलग विमण्डल होते हैं। विमण्डल के केन्द्र को विकदम्ब कहते हैं। विमण्डल और क्रान्तिवृत्त के सम्पात को 'पात' कहते हैं।

यत्र गच्छन्ति चन्द्राद्यास्तद्विमण्डलमुच्यते।
तत्तु चन्द्रादिखेटानामूहनीयं पृथक् पृथक्।।
विकदम्बाभिधं तस्य पृष्ठकेन्द्रमुदाहृतम्।
विमण्डले भवृत्तस्य सम्पात: पात उच्यते।।

25. राहु एवं केतु – चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं।

एवं चन्द्रस्य यौ पातौ तत्राद्यो राहुसंज्ञक:।
द्वितीय: केतुसंज्ञस्तौ ग्राहकौ चन्द्र-सूर्ययो:।।

26. दृग्मण्डल, उन्नतांश, शंकु, दृगज्या एवं दिगंश – ग्रहस्थान और खमध्य में जाने वाले वृत्त को दृग्वृत्त कहते हैं। दृग्वृत्त में क्षितिज से ग्रहपर्यन्त उन्नतांश और खमध्य से ग्रहावधि नतांश होता है। उन्नतांश की जीवा को शंकु और नतांश की जीवा को नतांशज्या कहते हैं। क्षितिजवृत्त में दृगवृत्त और पूर्वापर वृत्त के अन्तर को दिगंश कहते हैं। तथा दिगंश की जीवा को दृग्ज्या कहते हैं।

ग्रहस्थानादिसंलग्नं वृत्तं यच्च खमध्यगम्।
दृगवृत्तं कथ्यते तत्र ग्रहस्थानादिकावधि।।
क्षितिजादुन्नतांशा: स्यु: खमध्याच्च नतांशका:।

उन्नतांशज्यका शंकुर्नतांशज्या च दृग्ज्यका।।
दृग्वृत्तसमवृत्तान्त: क्षितिजे च दिगंशका:।
तज्या दिग्ज्या समाख्याता गोलविद्याविचक्षणै:।।

खमध्योर्गत वृत्तं दृग्वृत्तं तच्चलम्। खमध्याद् ग्रहावधिर्दृग्वृत्ते नतांशा:। नतांशोननवत्यंशा ९०- नतांशा: = उन्नतांशा:।

27. लग्न-चतुर्थ-सप्तम एवं दशम लग्न - उदयक्षितिज वृत्त (पूर्व) में क्रान्तिवृत्त लगता है, उसे लग्न कहते हैं। अस्तक्षितिजवृत्त (पश्चिम) में जहाँ क्रान्ति वृत्त लगता है, उसे सप्तम लग्न कहते हैं। याम्योत्तर वृत्त (उर्ध्व) में जहाँ क्रान्ति वृत्त लगता है, उसे दशम तथा याम्योत्तर वृत्त (अध:) में क्रान्ति वृत्त जहाँ लगता है, उसे चतुर्थ लग्न कहते है।

भवृत्तं प्राककुजे यत्र लग्नं लग्नं तदुच्यते।
पश्चात् कुजेऽस्तलग्नं स्यात् तुर्यं याम्योत्तरे त्वध:।।
उर्ध्वं याम्योत्तरे यत्र लग्नं तद्दशमाभिधम्।
राश्याद्यं जातकादौ तद् गृह्यते व्ययनांशकम्।।

28. दृक्क्षेपवृत्त, वित्रिभ, दृक्क्षेप एवं दृग्गति – लग्न बिन्दु से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को दृक्क्षेपवृत्त कहते हैं। दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा उर्ध्वसम्पात को वित्रिभ वित्रिभ लग्न कहते हैं। वित्रिभ के नतांशज्या को दृक्क्षेप तथा उसके उन्नतांशज्या को दृग्गति कहते हैं।

लग्नबिन्दोर्नवत्यंशै र्वृत्तं दृक्क्षेपमण्डल।
तद्भवृत्ते युतं यत्र कुजोर्ध्वं वित्रिभं हि तत्।।
वित्रिभस्य नतांशज्या दृक्क्षेप: कथ्यते बुधै:।
तथा तस्योन्नतांशज्या या सा दृग्गतिरूच्यते।।

लग्नस्थानान्नवत्यंशेन विहितं वृत्तं दृक्क्षेपवृत्तम्। दृक्क्षेपवृत्ते क्रान्तिवृत्तेनोर्ध्वसम्पातो वित्रिभलग्नम्। खमध्याद् वित्रिभावाधिर्दृक्क्षेपचापांशा: दृक्क्षेपवृत्ते। तेषां ज्या दृक्क्षेप:। दृक्क्षेपचापकोटि ज्या दृग्गति:।

29. वृत्त विशेषसंज्ञा, द्युज्या एवं क्रान्ति – जिन बिन्दुओं से जो वृत्त जाता हैं, उसकी उस बिन्दु से प्रोतवृत्त संज्ञा होती है। जैसे – कदम्ब स्थान में जाने वाले वृत्त को कदम्बप्रोत एवं ध्रुवस्थान से जाने वाले वृत्त को ध्रुवप्रोत वृत्त कहते हैं। ग्रहगतध्रुवप्रोत वृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते हैं तथा उसकी जीवा को द्युज्या कहते हैं। नाड़ीवृत्त से ग्रहपर्यन्त को क्रान्ति कहते हें।

यच्च यद्विन्दुगं वृत्तं तत्तु तत्प्रोतमुच्यते।
कदम्बर्क्षगतं यद्वत् कदम्बप्रोतमुच्यते।।
ध्रुवर्क्षगं ध्रुवप्रोतमेवं ज्ञेयं स्वबुद्धित:।
ग्रहोपरि ध्रुवप्रोते ग्रहस्थानाद् ध्रुवावधि।।
द्युज्याचापांशका ज्ञेयास्तज्ज्या द्युज्याभिधीयते।
नाड़ीवृत्ताद ग्रहं यावत् क्रान्ति: सैवाऽपम: स्मृत:।।

30. अहोरात्रवृत्त, उन्नतघटी, नतघटी, दिनार्धमान, कुज्या एवं चरज्या - ध्रुवस्थान से द्युज्याचापांश द्वारा निर्मित वृत्त को अहोरात्र वृत्त कहते हैं और एक केन्द्र होने के कारण वह नाड़ीवृत्त के समानान्तर होता है। ग्रहस्थान से याम्योत्तरवृत्त पर्यन्त नतघटी तथा ग्रहस्थान से क्षितिजपर्यन्त उन्नत घटी होती है। अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्र वृत्त में चरखण्ड होता है। उसकी ज्या (चरखण्डज्या) को कुज्या कहते हैं। वही त्रिज्यावृत्त में परिणत होने पर चरज्या होती है, अर्थात् द्युज्यावृत्त में यदि कुज्या मिलता है तो त्रिज्या वृत्त में क्या?

$$\frac{\text{कुज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{चरज्या।}$$

अहोरात्राख्यवृत्तं यद् द्युज्याचापांशकैर्ध्रुवात्।
तद्भवत्येककेन्द्रत्वान्नाड़ीवृत्तसमान्तरम्।।
तत्र खेटात् कुजं यावदुन्नता घटिका: स्मृता।
खेटाद्याम्योत्तरं यावन्नतघटय: स्मृता बुधै:।।
याम्योत्तरात् कुजं यावद् दिनार्धघटिकास्तथा।
कुज्योन्मण्डलयोर्मध्ये चरखण्डं द्युरात्रके।
तज्ज्या कुज्या चरज्या तु त्रिज्यापरिणता हि सा।।

ध्रुवस्थानाद द्युज्याचापांशेन विहितं वृत्तमहोरात्रवृत्तम्। षड्होरात्र वृत्तानि भवन्ति।

31. अग्रा, क्रान्त्यंश, अक्षांश एवं लम्बांश – क्षितिजवृत्त में पूर्वापरवृत्त और अहोरात्रवृत्त के अन्तर को अग्रा तथा उन्मण्डल वृत्त में पूर्वापरवृत्त और अहोरात्र के अन्तर को क्रान्त्यंश कहते हैं। याम्योत्तर वृत्त में समस्थान और ध्रुवस्थान के अन्तर को तथा खमध्य और निरक्षखमध्य के अन्तर को (याम्योत्तर वृत्त में) अक्षांश कहते हैं। खमध्य और ध्रुवस्थान के अन्तर को लम्बांश (याम्योत्तर वृत्त में) कहते हैं।

समस्थानाद् ध्रुवावधिरथवा खमध्यान्निरक्षखमध्यावधिर्याम्योत्तर वृत्तेऽक्षांशा:। ९०° – अक्षांशा: = लम्बांशा:।

पूर्वापरद्युरात्रान्त: क्षितिजऽग्रांशकास्तथा।
याम्योत्तरे तथाऽक्षांशा: समस्थानध्रुवान्तरे।।
खमध्यध्रुवयोर्मध्ये लम्बांशा दक्षिणोत्तरे।
निरक्षीयखमध्याच्च यावद्याम्यकुजं तथा।।

32. ग्रहस्थान, शर, क्रान्तिमान – ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, अर्थात् जिस बिन्दु पर स्पर्श करता है, उसे ग्रहस्थान कहते हैं। कदम्बप्रोतवृत्त में बिम्ब से स्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते हैं। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर को ध्रुवप्रोतवृत्त में स्पष्ट शर कहते हैं। स्थान से नाड़ीवृत्तावधि ध्रुवप्रोतवृत्त में मध्यमा क्रान्ति होती है। मध्यमाक्रान्ति और स्पष्टशर के द्वारा संस्कार करने से बिम्ब से नाड़ीवृत्त पर्यन्त ध्रुवप्रोतवृत्त में स्पष्टाक्रान्ति होती है।

ग्रहबिम्बकदम्बर्क्षगतं वृत्तं भमण्डले।
यत्र बिन्दौ युतं तत्र तद्ग्रहस्थानमुच्यते।।
बिम्बस्थानान्तरं तत्र मण्डले मध्यम: शर:।
स्थानबिम्बद्युरात्रान्तध्रुवप्रोते स्फुट: शर:।।
नाड़ीवृत्तावधि: स्थानान्मध्यमा क्रान्तिरूच्यते।
संस्कृता स्फुटबाणेन सा क्रान्तिर्भवति स्फुटा।
ग्रहबिम्बाद् ध्रुवप्रोते नाडिकामण्डालवधि:।।

ग्रहगतकदम्बप्रोतवृत्ते ग्रहबिम्बात् क्रान्तिवृत्तावधि: शर:। ग्रहबिम्बान्नाड़ीवृत्तावधि: ध्रुवप्रोतवृत्ते स्पष्टाक्रान्ति:। ग्रहबिम्बात् क्रान्तिवृत्तपर्यन्तं ध्रुवप्रोतवृत्ते स्पष्टशर:।

33. उपवृत्त, भुज एवं कोटि – ग्रहोरपरि समप्रोत वृत्त में ग्रह से पूर्वापरवृत्त पर्यन्त को भुजचाप और उसकी ज्या को भुज कहते है। तथा ग्रह से समस्थान पर्यन्त को कोटिचाप एवं समस्थान से कोटि चाप की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को उपवृत्त कहते हैं।

समस्थानात् कोटि चापांशेन निर्मितं वृत्तमुपवृत्तम्।।

34. विषुवांश एवं क्षेत्रांश - ग्रहस्थान पर गया हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त को जहाँ स्पर्श करता है, उसे विद्वानों ने विषुवांशाग्रह बिन्दु कहा है। विषुवांशाग्र बिन्दु से गोलसन्धि पर्यन्त नाड़ीवृत्त में ९० अंश से अल्प चाप को विषुवांश कहते है। गोलसन्धि से ग्रहस्थान पर्यन्त क्रान्तिवृत्त के क्षेत्रांश को

भुजांश या ग्रहभुजांश कहते हैं। जिस क्षेत्र में क्रान्त्यंश भुज, विषुवांश कोटि, भुजांश कर्ण होता है, उसे चापजात्य त्रिभुज कहते हैं।

35. फलवृत्त एवं हार - ग्रहोपरिगत पूर्वापरस्वस्तिकप्रोतवृत्त (पूर्व एवं पश्चिम स्वस्तिक में जाने वाले वृत्त) को फलवृत्त कहते हैं। पूर्वापरवृत्त और फलवृत्त के अन्तर को फलचाप कहते हैं। फलचाप की जीवा को फलज्या कहते है। पूर्वकपालस्थग्रह हो तो पूर्वस्वस्तिक से ग्रहपर्यन्त तथा पश्चिमकपालस्थग्रह हो, तो पश्चिमस्वस्तिक से ग्रहपर्यन्त फलवृत्त में हारचाप होता है। हारचाप की जीवा को फलानयन के प्रसंग में हार कहते है।

36. सूत्र एवं चर चाप – ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोत नाड़ीवृत्त में जहाँ लगता है, वहाँ से क्षितिजपर्यन्त नाड़ीवृत्त में सूत्रचाप होता है एवं सूत्रचाप की जीवा को सूत्र कहते हैं। क्षितिजवृत्त अहोरात्रवृत्तसम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त में जहाँ लगता है, वहाँ से क्षितिज वृत्त पर्यन्त नाड़ीवृत्त में चर एवं की जीवा को चरज्या कहते हैं।

37. बलन – जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धि क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मितवृत्त को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे। ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिजवृत्त में ही नाड़ीवृत्त और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्ट बलन कहते हैं।

यस्मात् खांकैस्तु यद् वृत्तं तस्य तत् क्षितिजं स्मृतम्।
ग्रहात् खाकांशकैर्यद्वद् ग्रहक्षितिजमुच्यते।।
आयनं बलनं ज्ञेयं ग्रहजक्षितिजेऽन्तरम्।
ग्रहोपरि ध्रुवप्रोत- कदम्बप्रोतवृत्तयो:।
नाड़ीभवृत्तयोरेवमन्तरं तावदेव हि।।
अक्षजं बलनं तद्वन् नाडिका समवृत्तयो:।
अन्तरं तु ग्रहोत्पनक्षितिजे वा ग्रहोपरि।।
समप्रोतध्रुवप्रोत वृत्योरन्तरं च तत्।।
स्पष्टा तत्रान्तरं ज्ञेयं पूर्वापर भवृत्तयो:।
ग्रहोपरि समप्रोत कदम्ब प्रोतयोस्तथा।।

वलतीतिवलनम्। वलनं त्रिविधम्। ग्रहक्षितिजे नाड़ीक्रान्तिवृत्योरन्तरमायनवलनम्। तत्रैव ग्रहक्षितिजे नाड़ीपूर्वापरवृत्योरन्तरमाक्षवलनम्। अनयोसंस्कारेण स्फुटबलनं जायते। अर्थात् ग्रहक्षितिजे पूर्वापरक्रान्तिवृत्तान्त स्पष्टबलनम्।। आयनवलनं ± आक्षवलनं = स्पष्टवलनम्।।

38. दृग्लम्बन एवं स्फुटलम्बन एवं नति – दृष्टिस्थान के भेद से ग्रह आकाश में अलग देखे जाते हैं। गर्भस्थान की दृष्टि से गर्भीय एवं पृष्ठस्थान की दृष्टि से देखे जाने पर पृष्ठीय ग्रह दिखाई पड़ता है। गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों के अन्तर को दृग्वृत्त में दृग्लम्बन और गर्भीयपृष्ठीय ग्रहगतकदम्बप्रोतवृत्त के अन्तर को क्रान्तिवृत्त में स्फुटलम्बन कहते हैं। तथा गर्भीयपृष्ठीय ग्रहों के शरान्तर को कदम्बप्रोतवृत्त में नति कहते हैं। इसका व्यवहार ग्रहणादि साधन में होता है।

विशेष – लम्बनं द्विविधम्। एक दृग्वृत्तीयं दृग्लम्बनम्। अर्थात् दृग्वृत्ते गर्भीयपृष्ठीयग्रहयोरन्तरं दृग्लम्बनम्। क्रान्तिवृत्ते स्पष्टलम्बनं द्वितीयम्। अर्थात् क्रान्तिवृत्ते गर्भीयपृष्ठीयसूर्ययोरन्तरं स्पष्टलम्बनम्। अस्य स्फुट लम्बनस्य वित्रिभेऽभाव:। पृष्ठक्षितिजे परमत्वम्। खमध्येऽपि अस्याभाव:।

लम्बनोत्पत्तौ यातायं लम्बितपृष्ठीयग्रहयोर्याभ्योत्तरमन्तरं नति:। कदम्बप्रोतवृत्तेनतिर्जायते। नते: परमत्वं वित्रिभे। पृष्ठक्षितिजे तु परमाल्का: नति:। खमध्येऽस्याभाव:।।

दृष्टिस्थनवशात् खेटो भगोले दृश्यते पृथक्।
गर्भदृष्ट्या स गर्भीय: पृष्ठीय: पृष्ठदृग्वशात्।।
कुगर्भीयकुपृष्ठीय खेटयोरन्तरं हि यत्।
दृङ्मण्डलगतत्वातत्त दृग्लम्बनमिहोच्यते।।
तद्ग्रहद्वयसंलग्न कदम्ब प्रोत वृत्तयो:।
क्रान्तिवृत्तेऽन्तरं यत् स्यात् तत्स्फुटं लम्बनं स्मृतम्।।
कुगर्भी कुपृष्ठीय खेटयोर्यत् शरान्तरम्।
सा नति: कथ्यते प्राज्ञैर्ग्रहणादि प्रसाधने।।

39. दृक्कर्म - क्रान्तिवृत्त में बिम्बपरिगतकदम्बप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्ट दृक्कर्म कहते हैं। क्रान्ति वृत्त में ही बिम्बोपरिगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को आयन दृक्कर्म तथा बिम्बगतसमप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्ष दृक्कर्म कहते हैं।

बिम्बोपरि समप्रोतकदम्बप्रोतवृत्तयो:।
अन्तरं क्रान्तिवृत्तीयं स्फुटं दृक्कर्म कथ्यते।।
आयनं तु ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोत मध्यगम्।
समप्रोत ध्रुवप्रोतान्तरं दृक्कर्म चाक्षजम्।।

40. शंकु - याम्योत्तरवृत के खेट (सूर्य) से क्षितिजवृत्त के ऊपर लम्ब को मध्यशंकु और पूर्वापर वृत्तस्थित सूर्य से क्षितिजवृत्त के ऊपर लम्ब को समशंकु कहते हैं। उन्मण्डलस्थ सूर्य से क्षितिजोपरि लम्ब को उन्मण्डलशंकु, कोणवृत्तस्थ सूर्य से क्षितिजोपरि लम्ब को कोणशंकु और इष्टस्थान सूर्य से क्षितिजोपरिलम्ब को इष्टशंकु कहते हैं।

41. हृति एवं अन्त्या – याम्योत्तर और अहोरात्रवृत्त के सम्पात से उदयास्तसूत्र पर की गयी लम्ब रेखा को हृतिसूत्र कहते हैं। यह हृतिसूत्र उत्तरगोल में द्युज्या और कुज्या के योग तुल्य तथा दक्षिणगोल में द्युज्या और कुज्या के अन्तर तुल्य होती है। पूर्वापरवृत्त से उदयास्तसूत्र पर लम्बरेखा को तदहृति तथा इष्ट स्थान से की गयी लम्बी रेखा को इष्ट हृति कहते हैं। द्युज्यावृत्त में स्थित हृति को ही त्रिज्यावृत्त में अन्त्या कहते हैं। द्युज्यावृत्त स्थित इष्ट हृति को त्रिज्यावृत्त में इष्ट अन्त्या कहते हैं।

याम्योत्तरस्थितात् खेटाल्लमब: स्वीयोदयास्तके।
हृति: सा गोलयोर्योगोन्तरं द्युज्याकुजीवयो:।।
पूर्वापरस्थितात् खेटात् तद्धृति: सा निगद्यते।
तदन्यत्रस्थितात् खेटात् सैवेष्ट हृतिरूच्यते।।
द्युज्यावृत्ते हृतिर्या सा त्रिज्यावृत्तेऽन्त्यका स्मृता।

42. पलभा – जिस दिन सायनसूर्य मेषादि (क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के सम्पात्) में प्रवेश करता है, उस दिन के मध्याह्नकालिक द्वादशांगुलशंकु की छाया स्व-स्व स्थान में पलभा होती है।

सायनाजतुलादिस्थे सूर्य छाया दिनार्धजा।
द्वादशांगुलशंकारोया सा तत्र पलभा स्मृता।।

43. अक्षक्षेत्र - पलभा भुज और द्वादशांगुलशंकु कोटि, इन दोनों के वर्गयोगमूल को पलकर्ण या अक्षकर्ण कहते हैं। पलभाजन्य जात्यत्रिभुज को अक्षक्षेत्र कहते है। अक्षक्षेत्र में एक कोण अक्षांश तुल्य होता है।

सा भुज: कोटिरित्यत्र द्वादशांगुलसम्मिता।
तयोवर्गयुतेर्मूलं पलकर्ण: स कथ्यते।।
जात्यत्रयस्रमिदं प्राज्ञैरक्षक्षेत्रमुदीरितम्।
यतोऽक्षांशसमश्चैक: कोणोऽस्त्यिस्मिन् त्रिबाहुके।।

अक्षक्षेत्राणि – नीचे अक्षक्षेत्र का परिचय दिया जा रहा है -

	भुज	कोटि	कर्ण
१.	अक्षज्या	लम्बज्या	त्रिज्या
२.	पलभा	द्वांदशांगुलशंकु	पलकर्ण
३.	शंकुतल	मध्यमशंकु	हृति:
४.	कुज्या	क्रान्तिज्या	अग्रा
५.	अग्रा	समशंकु	तदहृति
६.	अग्राखण्ड	उन्मण्डलशंकु	कुज्या
७.	उन्मण्डलशंकु	अग्रादिखण्ड	क्रान्तिज्या
८.	इष्टशंकुतल	इष्टशंकु	इष्टहृति

44. भूपरिधि एवं देशान्तर –

भूपृष्ठीय ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को भुपृष्ठीय नाडी वृत्त और मध्यमभूपरिधि कहते हैं। इसी प्रकार ध्रुवस्थान से लम्बांश त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को अपना स्पष्ट भूपरिधि कहते हैं। रेखादेश से स्वस्थान तक पूर्वापर अन्तर को देशान्तर कहते हैं।

भूपृष्ठीय ध्रुवस्थानात् खांकांशैवृत्तमुच्यते।
भूपृष्ठे नाडिकावृत्तं मध्यभूपरिधिस्तथा।।
ध्रुवाल्लंबांशकैवृत्तं स्फुटो भूपरिधि: स्वक:।
देशान्तरं पूर्वापरं तत्र रेखाख्यदेशत:।।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सिद्धान्त ज्योतिष में गोल का ज्ञान अत्यावश्यक है। खगोलीय ग्रहपिण्डों की स्थिति के साथ-साथ भूगोलीय स्थिति का भी ज्ञान हमें गोल से ही प्राप्त होता है। यद्यपि सम्पूर्ण गोल आभाषिक वृत्तों पर आधारित है अर्थात् काल्पनिक है। तथापि इसकी महत्ता ज्योतिष शास्त्र के अध्येताओं के लिए व्यापक है। भास्कराचार्य जी कहते है कि – भोज्यं यथासर्वरसं विनाज्ज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च। सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्थात्र।। अर्थात् गोल से अनभिज्ञ गणक (ज्योतिषी) नहीं हो सकता। अर्थात् ज्योतिषी के लिए गोल ज्ञान परमावश्यक है। इस इकाई में गोल, वृत्त की परिभाषा के साथ-साथ प्रमुख सभी आभाषिक वृतों की परिभाषा से आप सभी अवगत हो गये होंगे।

वृत्तों को कहीं-कहीं क्षेत्र द्वारा स्पष्ट भी कर दिया गया है। जिससे आप सभी को सरलता से समझने में आसानी होगी।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

गोल – अर्धवृत्तं स्वव्यासरेखोपरि भ्राम्यमाणं गोलमुत्पादयति।

महद वृत्त – भूकेन्द्रगामिना यानि वृत्तानि तानि सर्वाणि महद्वृत्तानि कथ्यन्ते।

स्वस्थान – भूमिपृष्ठे यो जनो यत्र तिष्ठति तत् पृष्ठस्थानं व स्वस्थानं कथ्यते।

याम्योत्तर वृत्त – खमध्य और दोनों ध्रुव स्थानों में जाने वाला वृत्त याम्योत्तर वृत्त कहलाता है।

क्षितिज वृत्त – खमध्य से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्षितिज वृत्त कहते हैं।

क्रान्ति वृत्त – कदम्ब से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्रान्ति वृत्त कहते हैं।

नाड़ी वृत्त – ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को नाड़ी वृत्त कहते हैं।

पूर्वापर वृत्त – समस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को पूर्वापर वृत्त कहते हैं।

निरक्ष देश – जिस देश का अक्षांश शून्य हो उसे निरक्ष देश कहते हैं।

दृक्क्षेप वृत्तम - लग्न स्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को दृक्क्षेप वृत्त कहते हैं।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.ख 2. ख 3. क 4. ग 5. क 6. ख

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) गोल परिचय – डॉ0 शुभास्मिता मिश्र

(ग) गोल परिभाषा – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) गोल परिभाषा – डॉ. गणपति लाल शर्मा

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

गोल परिभाषा– डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय।

गोल परिभाषा – डॉ0 गणपति लाल शर्मा

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम् – रघुनाथ सहाय

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गोल को परिभाषित करते हुए उसकी महत्ता बतलाइये।
2. याम्योत्तरवृत्त, क्षितिजवृत्त, नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त को सक्षेत्र परिभाषित कीजिये।
3. भूगोल स्वरूप, स्वस्थान, खस्वस्तिक, समस्थान तथा पूर्वापरवृत्त को परिभाषा लिखिये।
4. लग्न, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम लग्न तथा दृक्क्षेप, वित्रिभ तथा सत्रिभ को परिभाषित कीजिये।
5. अक्षांश, लम्बांश, अग्रा, लम्बन तथा नति का परिचय दीजिये?

इकाई - 3 क्रान्ति एवं परम क्रान्ति विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 क्रान्ति परिचय एवं परिभाषा

3.4 परम क्रान्ति विवेचन

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के चतुर्थ खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – क्रान्ति एवं परमक्रान्ति विवेचन। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े कई विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसी क्रान्ति से जुड़े विषय के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'क्रान्ति' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से सूर्य की नाड़ीवृत्तीय स्थिति का पता लग पाता है। परमक्रान्ति का मान आचार्यों ने २४ अंश बतलाया है। क्रान्ति गतिशील है।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'क्रान्ति एवं परमक्रान्ति' के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- क्रान्ति को परिभाषित कर सकेंगे।
- क्रान्ति के विभिन्न अवयवों को समझा सकेंगे।
- परमक्रान्ति को समझ लेंगे।
- क्रान्ति के महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम हो जायेंगे।
- क्रान्ति के गणितीय तथ्यों को समझा सकेंगे।

3.2 क्रान्ति परिचय एवं परिभाषा

भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर

हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है।

जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

मेषादि 12 राशियों में रहते हुए दीवाल घड़ी के पेण्डुलम की तरह सूर्य मेष से कन्याराशि तक 6 राशियों में नाडी वृत्त (विषुवद्वृत्त) से निरन्तर उत्तर की ओर बढ़कर पुनः नाडीवृत्त पर लौटता है। यह स्थिति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक रहती है। 23 सितम्बर से, मीन राशि पर्यन्त सूर्य क्रमशः दक्षिण दिशा में बढ़ता हुआ पुनः लौट कर 21 मार्च को नाड़ी वृत्त पर आ जाता है।

पुनरावृत्ति के रूप में आप इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं-

सायन मेष प्रवेश (21 मार्च के लगभग) काल पर (नाड़ी वृत्त पर) सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है। 21 मार्च से सायन मेष, वृष, मिथुन राशि में सूर्य निरन्तर उत्तर दिशा में बढ़ता हुआ नाडी वृत्त से उत्तर की ओर जितना हटता है, उतनी ही उत्तराक्रान्ति बढ़ती रहती है। सायनमिथुनराशि के अन्त (21 जून के लगभग) में सूर्य अधिकतम $32^0/27$। के लगभग नाडीवृत से उत्तर जाता है। पुनः सायन कर्क प्रवेश काल (22 जून) से वापिस लौटकर धीरे धीरे 22 सितम्बर (सायन कन्या राशि की समाप्ति) तक नाड़ी वृत्त पर आ जाता है। तुलाराशि के प्रारम्भ (23 सितम्बर) को क्रान्ति शून्य होकर सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध

में प्रवेश कर जाता है। उत्तर की भांति सायन-तुला-वृश्चिक एवं धनुराशि में (23 सितबर से 21 दिसम्बर तक) सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति अधिकतम 23^0/27। तक होती है। सायन मकर प्रवेश से सायन कन्यान्त तक (22 दिसम्बर से 20 मार्च तक) दक्षिणाक्रान्ति घटती रहती है। सायन तुलाप्रवेश (21 मार्च) को क्रान्ति पुनः शून्य हो जाती है। पूरे वर्ष यह क्रम चलता ही रहता है -

चित्र सं.- 4

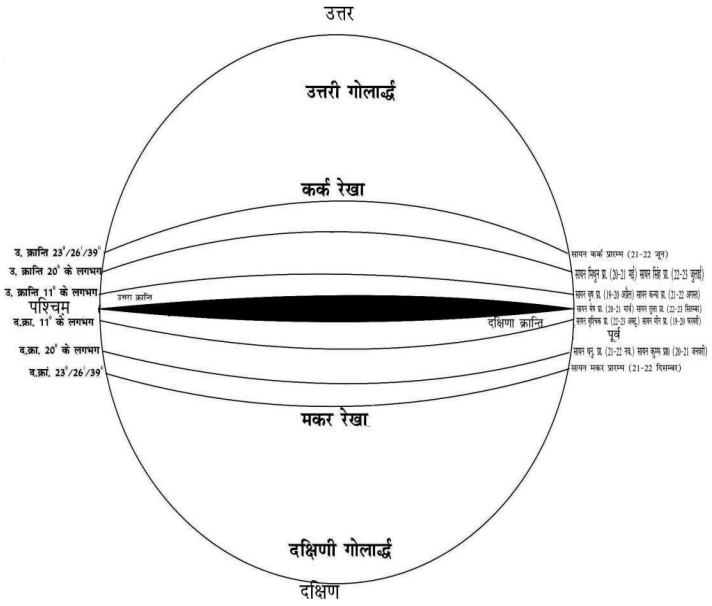

आप चित्र के माध्यम से क्रान्ति का बोध भली प्रकार कर सकते हैं। खगोल के मध्य पूर्व-पश्चिम में गया हुआ विषुवद् वृत्त आकाश मण्डल को उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्ध के रूप में दो भागों में विभाजित करता है। नाडीवृत्त (विषुवद् वृत्त) पर सूर्य प्रतिवर्ष सायन मेषएवं सायनतुलाराशि प्रवेश के समय (21-22मार्च एवं 22-23 सितम्बर को) आता है। नाडीवृत्त पर सूर्य की क्रान्ति 0 शून्य रहती है। 21 मार्च से प्रतिदिन उत्तरदिशा की ओर अग्रसर होता हुआ सूर्य विषुवद वृत्त से जितना हटता जायगा, उतने ही अंश-कला उत्तरा क्रान्ति में वृद्धि होती जायगी। 21 जून को यह सर्वाधिक दूरी विषुवद् से बनाता है। 21 जून को कर्क रेखा को स्पर्श करते हुए सूर्य की परम क्रान्ति 23^0/26/39 होती है। (प्राचीन काल में यह परम क्रान्ति 24^0 अंश मानी गई थी) ज्योतिषशास्त्र के प्रायः सभी मानकग्रन्थों में परमक्रान्ति के 24^0 होने का उल्लेख मिलता है। किन्तु आजकल वेधद्वारा सूर्य की परमक्रान्ति

$23^0/26/39$ उपलब्ध है। सूर्य 21 जून से नाडी वृत्त की ओर लौटना प्रारम्भ करते हुए 22-23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त पर आने के साथ क्रान्ति 0 शून्य हो जाती है। 23 सितम्बर से सूर्य दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके दक्षिण दिशा मे अग्रसर होता हुआ 21 दिसम्बर के लगभग मकर रेखा को स्पर्श करता है। तब भी सूर्य की परमाधिक दक्षिणाक्रान्ति $23^0/26/39$ होती है। (प्राचीनकाल में यह भी 24^0 अंश थी) 22 दिसम्बर से सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति में ह्रास प्रारम्भ होता है, 21 मार्च को नाडीवृत्त पर सूर्य के स्पर्श करने के कारण क्रान्ति पुनः 0 अंश पर आजाती है। यह क्रम पूरे वर्ष इसी तरह चलता रहता है।

संक्षेप में 21 मार्च से 21 जून तक क्रमशः 0 से $23^0/26/39$ तक उत्तरा क्रान्ति उपचीयमान होती है। 21 जून को कर्क रेखा से सूर्य दक्षिणामुखी होकर अपचीयमान उत्तरा क्रान्ति के साथ 23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त के स्पर्श करते ही 0 शून्य क्रान्ति पर आ जाता है। 23 सितम्बर से दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ 21 दिसम्बर तक मकर रेखा को स्पर्श करते ही परमक्रान्ति $23^0/26/39$ प्राप्त कर लेता है। मकर रेखा को स्पर्श करने के पश्चात् सूर्य उत्तराभिमुखी होकर अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ पुनः 21 मार्च को नाडी वृत्त पर आ जाता है।

- 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य उत्तगोल में रहता है।
- 23 सितम्बर से 20 मार्च तक सूर्य दक्षिण गोल में रहता है।
- 21 मार्च से 20 जून तक उपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 21 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 23 सितम्बर से 21 दिसम्बर तक उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।
- 22 दिसम्बर से 20 मार्च तक अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।

सूर्य 21 जून से दक्षिणायन (कर्क रेखा से लौटने पर) एवं 22 दिसम्बर से (मकर रेखा से लौटने पर) उत्तरायण प्रारम्भ हो जाता है। गणितीय प्रक्रिया द्वारा सूक्ष्म क्रान्ति का साधन त्रिकोणमिति की सहायता से किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ - 6 जुलाई 2012 शुक्रवार को विद्यापीठ पंचांग में स्पष्ट सूर्य = $2/20^0/20/20$ तथा केतकी अयनांश = $24^0/00/53$ है। स्पष्ट सूर्य में अयनांश जोड़ने पर सायन सूर्य = राश्यादि सूर्य

$$\begin{array}{rl} & 2/20^0/20/20 \\ \text{अंशादि} & +\ \underline{24^0/00/53} \\ & 3\text{-}14\text{-}21\text{-}13 \text{ रा. सायनसूर्य} \end{array}$$

राशि संख्या को 30 से गुणा कर अंशादि सायन सूर्य = 104^0/21/13 सुविधा की दृष्टि से अंशादि को दशमलव में परिणत करने पर = 104^0, 3537 = अंशादि सायन सूर्य हुआ। साइन्टिपिफक कैलुकेलेटर (संगणक) की सहायता से, सूक्ष्मक्रान्ति का साधन अनुपात द्वारा किया जाता है- 90^0 अंशकी ज्या अर्थात् त्रिज्या (नोट-यहाँ पर त्रिज्या का मान 1 होता है) में परमक्रान्तिज्या (ज्या 23.4442) प्राप्त होती है। तो अभीष्ट सायन सूर्य की ज्या (ज्या 104^0.3537) में क्या?

$$= \frac{\text{परमक्रान्तिज्या} \times \text{सायनसूर्यभुजज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रांतिज्या} = \text{ज्या (23.4442)} \times \text{ज्या (104.3537)}}{1}$$

= .385436219 = अभीष्ट क्रान्तिज्या । कैलकुलेटर द्वारा चाप लेने पर = 220.6708 = 220 अंश 40। कला अभीष्ट क्रान्ति। क्रान्तिसारिणी में 6 जुलाई को क्रान्ति 260/40 लिखी हुई है। त्रिकोणमिति से परिचित लोग बगैर सारिणी के कैलकुलेटर (संगणक) की सहायता से सूक्ष्म क्रान्ति प्राप्त कर सकते हैं। सामान्यलोग क्रान्तिसारिणी में अभीष्ट दिनाङ्क की क्रान्ति लेकर आगे चर साधन की प्रक्रिया सम्पन्न कर सकते हैं। जैसा कि आप जान चुके हैं क्षितिज के ऊपर स्थित सूर्यादि ग्रहों के बिम्बो का दर्शन होता है। क्षितिज

के नीचे स्थित बिम्बों का दर्शन नहीं होता। प्रत्येक स्थान का क्षितिज भिन्न-भिन्न होने के कारण एक समय पर सभी बिम्ब सभी स्थानों पर दिखलाई नहीं दे सकते हैं। जितने समय सूर्य का दर्शन होता रहे उतने समय का दिन, सूर्य के दिखलाई न देने पर रात्रि की परिभाषा भी आपलोग जानते ही हैं। किसी

क्रान्ति- सारिणी

दिनाङ्क → / माह ↓	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31
जनवरी +	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18	17	17
	4	59	54	48	42	36	28	21	13	4	16	47	37	27	16	05	54	12	30	18	5	51	38	24	10	55	40	24	9	53	36
फरवरी +	17	17	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	10	9	9	9	8	8	07	x	x
	20	02	45	28	10	52	33	15	56	37	17	57	37	17	57	36	16	55	34	13	51	29	07	45	23	1	39	16	53	x	x
मार्च +	07	07	6	6	5	5	5	4	4	4	3	3	2	2	2	1	1	0	0	+0	0	0	1	1	1	2	2	3	3	3	4
	30	07	45	22	58	35	12	49	25	02	38	14	51	27	03	40	16	52	29	05	−19	43	06	30	54	17	41	04	27	51	14
अप्रैल -	4	5	5	5	6	6	6	7	7	8	8	8	9	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14	14	14	x
	37	00	23	46	09	32	55	17	39	02	24	45	07	29	51	12	33	54	15	35	56	16	36	56	16	35	54	13	32	50	x
मई -	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	21	21	21
	09	27	44	03	19	36	52	09	25	41	56	12	27	41	55	09	23	36	49	02	14	26	38	49	00	10	20	30	39	48	57
जून -	22	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	x
	05	13	21	28	34	41	47	52	57	02	06	10	14	17	19	22	23	25	26	26	26	26	26	25	23	21	19	16	13	10	x
जुलाई -	23	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18
	06	02	57	51	46	40	34	27	20	13	05	57	48	39	30	20	10	59	49	38	26	14	02	49	36	23	10	15	42	28	12
अगस्त -	17	17	17	17	16	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	9	9	9	8	8
	58	43	27	11	55	38	22	05	48	30	12	54	36	18	59	40	21	02	42	23	03	42	22	02	41	20	59	38	17	55	34
सितम्बर -	8	7	7	7	6	6	6	5	4	4	4	4	3	2	2	2	1	1	1	0	0	0	0	0	0	1	1	2	2	2	x
	12	50	28	06	44	22	00	37	14	52	29	06	43	20	57	34	11	47	4	01	37	−14	+09	33	56	19	43	06	29	53	x
अक्टूबर +	3	3	4	4	4	5	5	5	6	6	7	7	7	8	8	8	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14
	16	39	02	26	49	12	35	58	20	43	06	28	51	13	35	59	19	42	03	25	46	07	28	49	10	30	51	11	31	51	10
नवम्बर +	14	14	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	x
	30	49	08	26	45	03	20	38	55	12	29	45	01	17	32	47	02	16	30	44	58	11	23	35	47	59	10	20	31	41	x
दिसम्बर +	21	21	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23
	50	59	08	16	24	31	38	44	50	56	01	06	10	14	17	20	22	24	25	26	26	26	26	25	24	22	19	17	13	10	05

नोट :- सूर्य की क्रान्ति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक उत्तरा (-) तथा 23 सितम्बर से 20 मार्च तक दक्षिणा (+) होती है। क्रान्ति अंश एवं कला में है।

भी वृत्त (गोल) के आधे भाग में 180^0 अंश अथवा 30 घटी अर्थात् 12 घण्टे होते हैं। चित्र के माध्यम से स्पष्ट दिखलाई दे रहा है, कि विषुवद् वृत्त पर सूर्य रहने की स्थिति में (21 मार्च और 23 सितम्बर को) उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज अथवा दक्षिणी अक्षांश वालों के क्षितिज में ठीक आधे भाग में अर्थात् 12 घण्टे सूर्य के दर्शन होने से 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। निरक्षदेशीय क्षितिज में प्रतिदिन 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। उत्तर एवं दक्षिणी क्षितिज के अन्दर उससे या कम समय सूर्य के दिखलाई देने पर दिनरात्रिमान में ह्रास वृद्धि दिखलाई देगी। 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध में रहने की स्थिति में चित्र में उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज में निरक्ष क्षितिज के आधेभाग + चर + चर । तुल्य सूर्य दर्शन होने से दिनमान में वृद्धि तथा रात्रिमान में ह्रास स्पष्ट दिखलाई दे रहा है। उसी समय (21 मार्च से 22 सितबर) दक्षिणक्षितिज वृत्त के अन्तर्गत द द। भाग में ही सूर्य का दक्षिण अक्षांश वालों को दर्शन हो रहा है। जो कि आधेवृत्त से बहुत कम है। अतः सिद्ध हुआ कि सूर्य के उत्तर गोल में रहने पर दक्षिण अक्षांश वाले स्थानों पर दिन का मान 12 घण्टे से न्यून एव रात्रिमान 12 घण्टे से अधिक होता है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में (23 सितम्बर से 21 मार्च) सूर्य के जाने पर दक्षिणी अक्षांश पर चित्र में नीचे 12 घंटे +चर + चर। अर्थात् 12 घण्टे से अधिक समय का दिन एवं 12 घण्टे से कम समय की रात्रि स्पष्ट दिखलाई दे रही है।

3.4 परमक्रान्ति विवेचन

परमक्रान्ति को समझने के पूर्व क्रान्ति का ज्ञान आवश्यक है। अब प्रश्न उठता है कि क्रान्ति क्या है? तो गोलीय दृष्टिकोण से ग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्त में नाड़ी और क्रान्तिमण्डल के दक्षिणोत्तर अन्तर का नाम क्रान्ति है। अथवा सामान्य भाषा में सूर्य नाड़ी वृत्त से कितना अंश उत्तर या दक्षिण में स्थित है। इसका नाम क्रान्ति है। कहा भी गया है –

नाड़ीवृत्ताद् ग्रहं यावत् क्रान्ति सैवाऽपम स्मृत:।।

क्रान्ति को ही 'अपम' भी कहा जाता है। अत: यहाँ अपम का अर्थ क्रान्ति से है। यही क्रान्ति नाड़ी वृत्त से क्रान्तिवृत्त में जिस दिशा में (दक्षिणोत्तर) जहाँ तक ग्रह गया हो। इस प्रकार नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्त के सम्पात स्थान में उनका अन्तर के अभाव से क्रान्ति का भी अभाव होता है। वही परमान्तर में परमक्रान्ति के नाम से जाना जाता है। परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला तुल्य माना गया है। इसी के आधार पर इष्टक्रान्ति का भी ज्ञान किया जाता है। सूर्यसिद्धान्त में परमक्रान्तिज्या के मान से इष्टक्रान्ति साधन इस प्रकार कहा गया है –

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दव:।

तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरूच्यते।।

अर्थात् परमक्रान्तिज्या का मान सप्तरन्ध्रगुणेन्दव: (१३९७) कला है। इसको ज्या से गुणा करके, फल को त्रिज्या से भाग देने पर जो आए वह जिस धनु (कोण) की ज्या हो वही क्रान्ति का मान होता है। वस्तुत: यहाँ यह बतलाया गया है कि 'ज्या' का व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। साथ ही यह भी बतलाया गया है कि किसी समकोण गोलीय त्रिभुज के भुजों और कोणों में परस्पर क्या सम्बन्ध होता है। परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला बतलाया गया है, जिससे जान पड़ता है कि परमक्रान्ति का मान २४ अंश है, क्योंकि २४ अंश का ज्या मान ही १३९७ कला होता है। यद्यपि शुद्ध गणना से वह २३ अंश ५८ कला ३१ विकला की ज्या है।

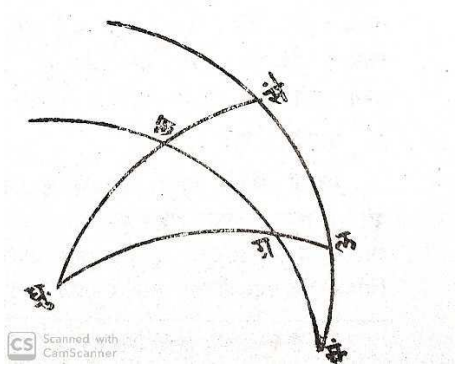

आप उपर दिए गए क्षेत्र को भी देखकर क्रान्ति को समझ सकते हैं। क्षेत्र में –

सं = नाड़ीक्रान्तिमण्डल का सम्पात बिन्दु 'गोलसन्धि' है।

ध्रु = ध्रुवस्थान

ध्रुग्रल = ग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्त

ध्रु असं = अयनप्रोतवृत्त नाड़ीक्रान्तिवृत्त का परमान्तर

असं = क्रान्तिवृत्त में नवत्यंशा = ९० अंश स सं = नाड़ीवृत्त में ९० अंश

अस = परमक्रान्त्यंश = २४ अंश। १

ग्रसं = इष्टग्रहभुजांश, लसं = विषुवांश

ग्रल = इष्टक्रान्ति:। २

यहाँ १, एवं २समीकरण से ज्याक्षेत्र की साजात्यता से

$$\frac{\text{ज्या असं} \times \text{ज्या ग्र सं}}{\text{ज्या अ सं}} = \frac{\text{ज्या } २४^{\circ} \times \text{ज्या ग्र भु}}{\text{त्रिज्या}}$$

= इष्टक्रान्तिज्या

= ज्या ग्रल इसकी चाप इष्टक्रान्ति होती है।

अभ्यास प्रश्न –

1. नाड़ीवृत्त से सूर्य का दक्षिणोत्तर अन्तर क्या कहलाता है।

क. क्रान्ति ख. शर ग. विक्षेप घ. परमाक्रान्ति

2. सायन मेष राशि में सूर्य का प्रवेश कब होता है।

क. २२ मार्च ख. २१ मार्च ग. २३ सितम्बर घ. कोई नहीं

3. नाड़ीवृत्त पर क्रान्ति शून्य कब रहती है।

क. २२ सितम्बर ख. २३ सितम्बर ग. २१ मार्च घ. १४ जनवरी

4. परमक्रान्ति का मान कितना होता है।

क. २४ अंश ख. २२ अंश ग. १३९७ कला घ. कोई नहीं

5. क्रान्ति से किसका सम्बन्ध है।

क. चन्द्र का ख. सूर्य का ग. भौम का घ. बुध का

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर

शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है।

जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

क्रान्ति – नाड़ीवृत्त से सूर्य का दक्षिणोत्तर अन्तर का नाम क्रान्ति है।

परमक्रान्ति – क्रान्ति की परमावस्था का नाम परमक्रान्ति है। इसका मान २४ अंश होता है।

नाड़ीवृत्त – ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त का नाम नाड़ीवृत्त है।

क्रान्तिवृत्त – सूर्य का भ्रमण पथ का नाम क्रान्विृत्त है।

भूमध्यरेखा – विषुवद् रेखा को ही भूमध्यरेखा कहते है।

उत्तर गोल – सूर्य का मेषादि छ: राशियों में स्थिति को उत्तरगोल के नाम से जानते है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.क 2. ख 3. ग 4. क 5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ग) गोल परिभाषा – टिका – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

ग्रहलाघवम् – टिका – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

केतकीग्रहगणितम् – मूल लेखक - आचार्य वेंकट

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्रान्ति से क्या तात्पर्य है। स्पष्ट कीजिये।
2. क्रान्ति साधन कीजिये।
3. परमक्रान्ति से आप क्या समझते है।
4. परमक्रान्ति का साधन कीजिये।
5. गणित ज्योतिष में क्रान्ति एवं परमक्रान्ति की उपयोगिता बतलाइये?

इकाई – 4 द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, सूत्र, वित्रिभ, सत्रिभ आदि का विवेचन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 द्युज्या, कुज्या एवं त्रिज्या की परिभाषा

4.4 सूत्र, वित्रिभ एवं सत्रिभ

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -104 के चतुर्थ खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, सूत्र, वित्रिभ, सत्रिभ आदि का विवेचन। इससे पूर्व आपने गोल में विविध वृत्तादि की परिभाषाओं के साथ-साथ क्रान्ति एवं परमक्रान्ति से जुड़े कई विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप गोल से ही जुड़े विषय के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, सूत्र, वित्रिभ, सत्रिभ आदि सभी विषय 'गोल' के ही महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से 'गोल शास्त्र' में और निपुणता आयेगी।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, सूत्र, वित्रिभ, सत्रिभ आदि के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- द्युज्या, कुज्या तथा त्रिज्या को परिभाषित कर सकेंगे।
- वित्रिभ तथा सत्रिभ को समझा सकेंगे।
- त्रिज्या क्या है। यह बता सकेंगे।
- गोल ज्ञान में और निपुण हो सकेंगे।

4.3 द्युज्या, कुज्या तथा त्रिज्या परिभाषा

गोल में 'द्यु' का अर्थ अहोरात्र वृत्त होता है। द्युज्या को परिभाषित करते हुए गोल में कहा गया है कि – ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते है, तथा उसकी जीवा अर्थात् ज्या को 'द्युज्या' कहते हैं। इसका श्लोक भी इस प्रकार है –

ग्रहोपरि ध्रुवप्रोते ग्रहस्थानाद् ध्रुवावधि।
द्युज्या चापांशका ज्ञेयास्तज्ज्या द्युज्याभिधीयते।।

'कु' का अर्थ पृथ्वी या क्षितिज से है। तत्सम्बन्धित ज्या कुज्या या क्षितिज्या कहलाती है। ग्रहगत ध्रुवप्रोतवृत्त में ध्रुव से ग्रह पर्यन्त द्युज्या चाप है। नाड़ीवृत्त से ग्रहबिम्ब तक ध्रुवप्रोतवृत्त में क्रान्तिचाप है। अत: ९० अंश – क्रान्त्यंश = द्युज्याचापांश होता है। ध्रुवबिन्दु से द्युज्याचाप की दूरी पर जो वृत्त बनता है, उसे अहोरात्रवृत्त कहते है।

कुज्या की परिभाषा –

अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध (दिनार्धघटी) तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्रवृत्त में चरखण्ड (चरकाल) होता है। उसकी ज्या चरखण्डज्या को 'कुज्या' कहते है। वही त्रिज्यावृत्त में परिणत होने पर चरज्या होती है। इसका मूल श्लोक है –

याम्योत्तरात् कुजं यावद् दिनार्धघटिकास्तथा।
कुज्योन्मण्डलयोर्मध्ये चरखण्डं द्युरात्रके।।
तज्ज्या कुज्या चरज्या तु त्रिज्यापरिणता हि सा।।

सूत्र --

$$\frac{\text{कुज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{चरज्या}।।$$

आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी जहाँ पंचज्या साधन की बात कही है, वहीं इनका वर्णन किया है –

युतांयनांशादपम: प्रसाध्य:।
कालौ च खेटात् खलु भुक्तभोग्यौ।।
जिनांशमौर्व्या गुणितार्कदोर्ज्या।
त्रिज्यो द्धृता क्रान्तिगुणोऽस्य वर्गम्।।
त्रिज्याकृते: प्रोह्य पदं द्युजीवा।
क्रान्तिर्भवेत् क्रान्तिगुणस्य चापम्।।
अक्षप्रभासंगुणितापमज्या।
तद्वद्वादशांशो भवति क्षितिज्या।।
सा त्रिज्यकाघ्नी विहृता द्युमौर्व्या चरज्यकास्याश्च धनुश्चरं स्यात्।।

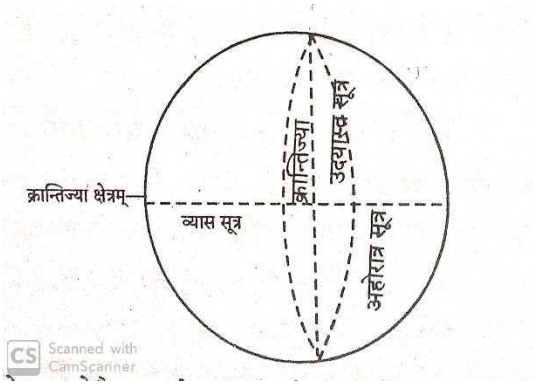

आप उपर के क्षेत्र में भी क्रान्तिज्या को देखकर समझ सकते हैं।

पांच ज्या साधन—

सूर्यप्रभा टीका— जहाँ ग्रह होता है वहाँ उसकी क्रांति साधन करने के लिए उसके भुक्तांश (Longitude) तथा अयनांश के योग तुल्य (अर्थात् सायन) ग्रह लेते हैं। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त पर ग्रह के उदय से पूर्व अथवा पश्चात् का समय ज्ञात करने के लिए सायन ग्रह (ज्ञात करते हैं) लेते हैं।

सायन रवि की भुजज्या को परमक्रांति ज्या १३९७ से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से रवि की इष्ट क्रांतिज्या होती है। इसका चाप क्रांति होती है। त्रिज्यावर्ग (=११८१९८४४) में से इष्ट क्रांतिज्या के वर्ग को घटा कर शेष का मूल लेने से द्युज्या (अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध) प्राप्त होती है। इसकी दिशा क्रांति ज्या की दिशा के अनुरूप होती है।

क्रांतिज्या को पलभा से गुणा करके बारह से भाग देने से क्षितिज्या (कुज्या) होती है। इस क्षितिज्या को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है तथा चरज्या का चाप चर कला (असु) होता है।

उपपत्ति— विषुवद् तथा क्रांतिवृत्त का याम्योत्तर अंतर क्रांति होता है। इनके संपात बिंदु (मेष तथा तुला) पर क्रांति का अभाव होता है। संपात से तीन राशि अंतर (कर्क तथा मकर) पर परम क्रांति २४ अंश तुल्य होती है। अतः संपात बिन्दु से आरंभ करके क्रांतिसाधन करते हैं। राशि का उदयास्त मेषारंभ से पूर्व अयनांश तुल्य अंतर पर होता है। अतः सायन अंश युक्त ग्रह की भुक्त भोग्य क्रांति काल के लिए कहा गया है। यदि त्रिज्या तुल्य भुजज्या में (२४ अंश) जिनांश ज्या तुल्य क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो इष्ट ज्या में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से प्राप्तफल क्रांतिज्या, विषुवद् वृत्त में तिर्यगरूप में होती है। क्रांतिज्या भुज तथा त्रिज्याकर्ण के वर्गों का अंतर का मूल अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध साधित होता है। इसको द्युज्या कहते हैं। कुज्या के लिए द्वादश अंगुल कोटि में पलभा तुल्य भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या कोटि में कितनी होगी? प्राप्तफल क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्र वृत्त की ज्या रूप कुज्या होती है। इसका धनु बनाने के लिए इसको त्रिज्या वृत्त में परिणित करते हैं। यदि द्युज्याव्यासार्ध में इतनी कुज्या होती है तो त्रिज्याव्यासार्ध में कितनी होगी? प्राप्तफल चरज्या होती है। इसका धनु चर होता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

Scanned with CamScanner

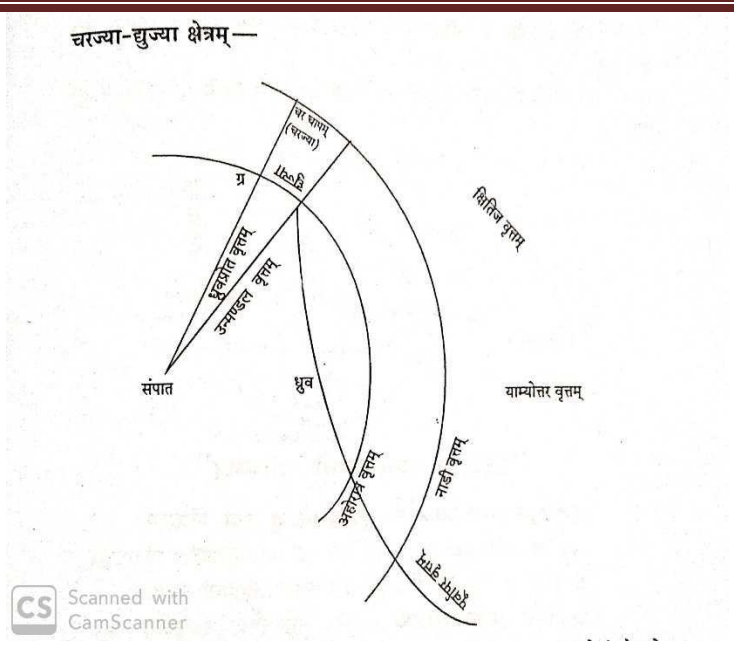

आप उपर के क्षेत्र में चर, चरज्या आदि को देखकर समझ सकते हैं।

सूत्र, वित्रिभ तथा सत्रिभ

सूत्र परिभाषा –

सूत्रमूर्ध्वाधरं नाम यद्भूगर्भखमध्यगम्।
निरक्षोध्वा्रधरं यद् भूकेन्द्राद् व्यक्षखमध्यगम्।।
सूत्र पूर्वापरं यच्च प्राक्परस्वस्तिके गतम्।
समस्थानद्वये लग्नं समसूत्रं निगद्यते।।
ध्रुवाख्य ध्रुवयोलग्नं कोणसूत्रं च कोणगम्।।
दृगवृत्तकुजवृत्तैक्य गतं दृक्कुजमुच्यते।
स्वोदयास्तं त्वहोरात्रकुजैक्यद्वयसंयुतम्।।
व्सक्षोदयास्तसूत्रं यद् द्युरात्रोदवृत्तयोगगम्।।

अर्थात् भूगर्भ और खमध्य में अथवा उर्ध्व खमध्य और अध: खमध्य में जाने वाली सूत्र को उर्ध्वाधर सूत्र कहते हैं। उर्ध्वनिरक्षखमध्य एवं अधोनिरक्ष खमध्य में जाने वाले सूत्र को निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र कहते

है। पूर्वस्वस्तिक एवं पश्चिमस्वस्तिक से जाने वाले सूत्र को पूर्वापर सूत्र और दोनों समस्थानों अर्थात् उत्तरी एवं दक्षिणी समस्थान में जाने वाले सूत्र को समसूत्र कहते है। दोनों ध्रुवों में जाने वाले सूत्र को ध्रुवसूत्र तथा कोणों में जाने वाले सूत्र को कोणसूत्र कहते हैं। दृगवृत्त और क्षितिजवृत्त सम्पात में जाने वाले सूत्र को स्वोदयास्तसूत्र तथा अहोरात्र एवं उन्मण्डल सम्पातद्वयगत सूत्र को निरक्षोदयास्तसूत्र या उदयास्तसूत्र कहते हैं।

उर्ध्वाधरखमध्यगतं सूत्रमूर्ध्वाधरसूत्रम्। निरक्षोर्ध्वाधरखमध्यगतं सूत्रं निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रम्।।

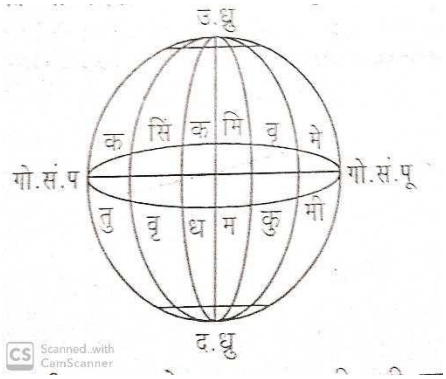

क्रान्तिवृत्त का राश्यात्मक जो प्रदेश पूर्वक्षितिज में लगता है, उसे उदयलग्न कहते है। उससे १८० अंश के अन्तर पर क्रान्तिवृत्त का राश्यात्मक प्रदेश पश्चिमक्षितिज में जहाँ लगता है उसे अस्त लग्न कहते है। एवं क्रान्तिवृत्त का राश्यात्मकप्रदेश उर्ध्व याम्योतृतरवृत्त में जहाँ लगता है वह राश्यात्मक दशम लग्न वा मध्य लग्न होता है। उदयलग्न को प्रथमलग्न वा इष्टकालिकलग्न कहते है। अस्तलग्न को सप्तमलग्न कहते हैं। क्रान्तिवृत्त का जो प्रदेश अध: याम्योत्तर वृत्त में लगता है, वह राश्यात्मक चतुर्थ लग्न है।

क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर दृक्क्षेप बनता है। दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे **वित्रिभलग्न** कहते हैं। दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे **सत्रिभ** लग्न कहते है।

लग्न से प्राप्त ९० अंश वृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है वही वित्रिभ लग्न होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. द्युज्याचापांश की ज्या को क्या कहते हैं।
   क. द्युज्या ख. क्षितिज्या ग. क्रान्तिज्या घ. ज्या
2. कुज्या का अपर नाम क्या है?

क. क्रान्तिज्या ख. क्षितिज्या ग. द्युज्या घ. ज्या

3. क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर क्या बनता है।

क. दृक्क्षेप ख. अयन ग. उन्मण्डल घ. क्रान्ति

4. दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे क्या कहते हैं।

क. वित्रिभलग्न ख. सत्रिभ लग्न ग. अयन घ. दृक्मण्डल

5. दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे क्या कहते है।

क. वित्रिभलग्न ख. सत्रिभ लग्न ग. अयन घ. दृक्मण्डल

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना गोल में 'द्यु' का अर्थ अहोरात्र वृत्त होता है। द्युज्या को परिभाषित करते हुए गोल में कहा गया है कि – ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते है, तथा उसकी जीवा अर्थात् ज्या को 'द्युज्या' कहते हैं। इसका श्लोक भी इस प्रकार है –

ग्रहोपरि ध्रुवप्रोते ग्रहस्थानाद् ध्रुवावधि।
द्युज्या चापांशका ज्ञेयास्तज्ज्या द्युज्याभिधीयते।।

'कु' का अर्थ पृथ्वी या क्षितिज से है। तत्सम्बन्धित ज्या कुज्या या क्षितिज्या कहलाती है। ग्रहगत ध्रुवप्रोतवृत्त में ध्रुव से ग्रह पर्यन्त द्युज्या चाप है। नाड़ीवृत्त से ग्रहबिम्ब तक ध्रुवप्रोतवृत्त में क्रान्तिचाप है। अत: ९० अंश – क्रान्त्यंश = द्युज्याचापांश होता है। ध्रुवबिन्दु से द्युज्याचाप की दूरी पर जो वृत्त बनता है, उसे अहोरात्रवृत्त कहते है।

कुज्या की परिभाषा –

अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध (दिनार्धघटी) तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्रवृत्त में चरखण्ड (चरकाल) होता है। उसकी ज्या चरखण्डज्या को 'कुज्या' कहते है। वही त्रिज्यावृत्त में परिणत होने पर चरज्या होती है।

क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर दृक्क्षेप बनता है। दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे **वित्रिभलग्न** कहते हैं। दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे **सत्रिभ** लग्न कहते है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

द्युज्या – गोल में 'द्यु' का अर्थ अहोरात्र वृत्त होता है। द्युज्या को परिभाषित करते हुए गोल में कहा गया है कि – ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते है, तथा उसकी जीवा अर्थात् ज्या को 'द्युज्या' कहते हैं।

कुज्या – अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध (दिनार्धघटी) तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्रवृत्त में चरखण्ड (चरकाल) होता है। उसकी ज्या चरखण्डज्या को 'कुज्या' कहते है।

वित्रिभ – क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर दृक्क्षेप बनता है। दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे **वित्रिभलग्न** कहते हैं।

सत्रिभ – दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे **सत्रिभ** लग्न कहते है।

भूमध्यरेखा – विषुवद् रेखा को ही भूमध्यरेखा कहते है।

उत्तर गोल – सूर्य का मेषादि छ: राशियों में स्थिति को उत्तरगोल के नाम से जानते है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.क 2. ख 3. क 4. क 5. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ग) गोल परिभाषा – टिका – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

ग्रहलाघवम् – टिका – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

केतकीग्रहगणितम् – मूल लेखक - आचार्य वेंकट

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्युज्या, कुज्या एवं त्रिज्या को परिभाषित करते हुए स्पष्ट कीजिये।
2. वित्रिभ एवं सत्रिभ से आप क्या समझते है।
3. गोल में वित्रिभ एवं सत्रिभ को समझाइयें।
4. गणित ज्योतिष में द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, वित्रिभ एवं सत्रिभ की उपयोगिता बतलाइये।